हैं, सब वर्णों विशेष करके ब्राह्मणके पक्षमें दम गुण ही परम श्रेष्ठ है। अदान्त पुरुषोंको यथा रीतिसे क्रियासिद्धि पूर्ण नहीं होती। तपस्या और सत्य कहनेका नाम क्रिया है, वे सब क्रिया ही दमगुणमें प्रतिष्ठित होरही हैं; दमगुण तेजकी वृद्धि करता है, दमकोही पण्डित लोग पवित्र कहा करते हैं; पापरहित निर्भय दान्त पुरुष महत् सुखभोग करते हैं। दान्त पुरुष ही परम सुखसे सोते हैं, परम सुखसे जाग्रत हुआ करते हैं और अनायास ही जनसमाजमें विचरते हैं, उनका मन भी सदा प्रसन्न रहता है। दमगुणके जरिये तेज बढ़ता है, तामस प्रकृतिवाले पुरुष उसमें अधिकार नहीं कर सकते। दान्त पुरुष काम आदि शत्रुओंको शरीरमें सदा पृथक् देखते हैं, जैसे बाघ आदि हिंसक जन्तुओंसे जीवोंको सदा भय हुआ करता है, वैसेही अदान्त पुरुषोंसे मनुष्योंको सदा ही भय होता है। उन अदान्तोंको शासन करनेके लिये विधाताने राजाको उत्पन्न किया है। सब आश्रमोंके बीच दमगुण ही श्रेष्ठ है, सब आश्रमोंमें धर्म्मोपार्ज्जनसे जो फल हुआ करता है, दान्त पुरुषोंमें उससे भी अधिक फल दीखता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। अब जिसे दम कहते हैं, उसका स्वरूप कहता हूं।

अदीनता, अभिनिवेश, सन्तोष, सर्द्धानता, अक्रोध, सरलता, सदा अलौकिक अर्थ कहना, राज आदिकी वार्त्ता कहनी, गुरुपूजा, अनसूया सब भूतोंमें दया और अखलता, लोकापवाद, मिथ्या वचन तथा स्तुति निन्दाका परित्याग ही दमगुणका लक्षण है। जो मोक्षार्थी होकर सुख दुःख आदिके अनुभव विषयमें उत्तर कालमें स्पृहा नहीं करते, जो वैर करनेवाले नहीं हैं और शठतारहित होकर समादर किया करते हैं; निन्दा और प्रशंसामें जिन्हें समज्ञान है वे सच्चरित्र, सदाचार युक्त, प्रसन्नचित्त बुद्धिमान् मनुष्य इस लोकमें सत्कार लाभ करके अन्तकालमें स्वर्गमें जाते हैं और सर्व्वभूतोंसे दुर्लभ अन्नादि लाभ करते हुए सुखी और आनन्दित होते हैं। जो सब भूतोंके हितकर विषयमें रत होकर किसीसे भी द्वेष नहीं करते, महाह्रदकी भांति अक्षोभ्य वे प्रज्ञातृप्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं। सब प्राणियोंसे जिसे भय नहीं है और जिससे सब भूतोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती वेही बुद्धिमान् दान्त पुरुष सब प्राणियोंके नमस्य होते हैं। जो बहुतसे धन पानेपर भी हर्षित नहीं होते और विपद उपस्थित होनेपर भी शोक नहीं करते, उन्हीं परिमित प्राज्ञ दान्त पुरुषोंको ब्राह्मण कहा जाता है। जो शास्त्र ज्ञानसे युक्त होकर भी कर्म्मानुष्ठान करते हैं, साधुओंके आचरित पथमें निवास करते हुए पवित्र हुआ करते हैं, और सदाही वाह्येन्द्रिय निग्रहमें रत रहते हैं, उन्हें महत् फलका भोग प्राप्त होता है। अनसूया क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवादिता, सत्य, दान और अनायस दुरात्माओंकी पदवी नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, दूसरेके विषयमें ईर्षा और अपनी बड़ाई करनीही दुरात्माओंको स्पृहणीय है। ब्रह्मचारी मनुष्य काम और क्रोधको वशमें करके जितेन्द्रिय होवें। संशितव्रती ब्राह्मण घोर तपस्याचरण रूपी विक्रम प्रकाश करके कालकी आकांक्षा करते हुए अपाय विरहित और सन्तोष युक्त होकर सब लोकोंमें विचरण किया करते हैं।

२२० अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यज्ञदीक्षित और मन्त्रदीक्षित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग देवताओंको बलिसे बचे हुए भक्षणीय मांस और मद्य आदिको जो स्वर्ग वा पुत्रादिकी कामनासे भक्षण किया करते हैं, वह उचित है, वा नहीं?

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज ! जो लोग वेदविहित व्रताचरण न करके अभक्ष्य मांस आदि भोजन करते हैं, वे इस लोकमेंही पतित होते हैं, और जो लोग दीक्षा लेके फलानुरागी होकर वैध मांस आदि भक्षण करते हैं, वे यज्ञ आदिसे स्वर्ग फल भोग करके भोगके समाप्त होनेपर पतित हुआ करते हैं ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! साधारण लोग जो देह पीड़ाकर उपवासको तपस्या कहा करते हैं, क्या यही तपस्या है, अथवा दूसरे प्रकारकी कोई तपस्या है ?

भीष्म बोले, साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं, कि एक महीना वा एक पक्ष उपवास करनेसे तपस्या होती है, आत्मविद्याकी विघ्न स्वरूप वह तपस्या साधुसम्मत नहीं है । भूत भयङ्कर कर्म्म सन्न्यास और भूताराधनही श्रेष्ठ तपस्या है, जो लोग इसी प्रकार तपस्या किया करते हैं, परिवार समूहके सहित सदा वर्त्तमान रहने पर भी उन्हें उपवासी और ब्रह्मचारी कहा जाता है । हे भारत ! कुटुम्बयुक्त ब्राह्मण धर्म्मकाम होने पर सदा मुनि वा देव तुल्य हो सकते हैं, और वे स्वप्न रहित अमांसाशी सदा पवित्र अमृताशी, देवता और अतिथियोंकी पूजा करनेवाले, विघसाशी, अतिथिव्रती, श्रद्धावान् और सदा देवताकीभांति अतिथि पूजक होते हैं ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! ब्राह्मण किस प्रकार सदा उपवासी होते हैं, किस प्रकार ब्रह्मचारी हो सकते हैं, किस प्रकार भोजन करनेसे विघसाशी होते हैं ?

भीष्म बोले, दिन और रात्रिकालमें भोजनके विहित समयमें भोजनसे भिन्न जो लोग भोजन नहीं करते वेही सदा उपवासी होते हैं ; जो ब्राह्मण केवल ऋतुकालमेंही भार्य्यासङ्ग करते हैं, उन्हेंही ब्रह्मचारी कहा जाता है ; जो सदा ध्यानमें रत रहते वेही सत्यवादी होते हैं । देवता और पितरोंके भोगसे बचे हुए मांसके अतिरिक्त जो वृथा मांस भक्षण नहीं करते, उन्हें अमांसाशी कहा जाता है । जो सदा दानमें रत रहते, वेही पवित्र होते हैं ; जो दिनमें नहीं सोते ; उन्हें अस्वप्न कहा जाता है । हे धर्म्मराज ! प्रतिदिन सेवकों और अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर जो लोग भोजन करते हैं, उन्हेंही केवल अमृताशी जानो । अतिथि आदिके भूखे रहनेपर सदा जो भूखे रहते हैं, उनका उसही अनशन व्रतसे स्वर्गलोक जय होता है । देवता, पितर, अतिथि और सेवकोंसे बचे हुए अन्नको जो लोग भोजन करते हैं । उन्हेंही पण्डित लोग विघसाशी कहा करते हैं । इन सब ब्राह्मणोंके शुभ लोकोंकी सीमा नहीं है, इनके गृहमें ब्रह्मा और अप्सराओंके सहित देवता लोग उपस्थित हुआ करते हैं । जो देवताओं और पितरोंके सहित अन्नादि उपभोग करते हैं, वे पुत्र पौत्रोंके सहित आनन्दित होते हैं और उन लोगोंकी सबसे श्रेष्ठ उत्तम गति हुआ करती है ।

२२१ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम पितामह ! इसलोकमें शुभ वा अशुभ कर्म्म जो कि अवश्यही पुरुषोंको फलभागी करते हैं, पुरुष उन शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता होता है, वा नहीं ; उस विषयमें मुझे सन्देह है, इसलिये आपके समीप इस विषयको यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज ! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रह्लाद और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं । किसी समय फलकी अभिलाषासे रहित पापहीन, बहुशास्त्रदर्शी, निरालसी, निरहङ्कारी, सत्गुणावलम्बी, निज योग्य शम दम आदि गुणोंमें अनुरक्त स्तुति निन्दामें तुल्यबुद्धि दान्त, सूने

रहमें बैठे हुए जिन्होंने स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको जाना है; जो अप्रिय विषयसे क्रुद्ध और प्रिय विषयलाभमें हर्षित नहीं होते, सुवर्ण और मट्टीके ढेलेमें जिसकी समदृष्टि है, जिन्होंने आनन्दरूप चिन्मात्र आत्मविषयका कुतकनभिभूत होकर निश्चय किया है और जीवोंके बीच श्रेष्ठ हिरण्यगर्भ अपकृष्ट कीट आदि पर्यन्त जाना है; जो सर्व्वज्ञ समदर्शी और संयतेन्द्रिय हैं, उस एकान्तमें बैठे हुए प्रह्लादके समीप इन्द्र उपस्थित होके उनके बुद्धिकी परीक्षा करनेकी इच्छासे यह वचन बोले, हे प्रह्लाद! इस लोकमें जिन गुणोंके रहनेसे लोगोंके बीच पुरुष सबसे ही सम्मत होता है, वे सब स्थिर गुण तुममें दीखते हैं और तुम्हारी बुद्धि बालककी भांति राग द्वेषसे रहित दीख पड़ती है। तुम आत्माको मनन करते हुए आत्मज्ञानका श्रेष्ठ साधन क्या समझते हो? हे प्रह्लाद! तुम पाशबद्ध स्थानच्युत और श्रीहीन होने पर भी शोचनीय विषयमें शोक नहीं करते हो। हे दैत्यवंशप्रसूत प्रह्लाद! तुम बुद्धिलाभ वा सन्तोषसेही अपनी विपद देखकर भी स्वस्थचित्त हो रहे हो, निश्चितबुद्धि धैर्य्यशाली प्रह्लाद देवराजका ऐसा वचन सुनके निज प्रज्ञा वर्णन करते हुए मनोहर वचनसे कहने लगे।

प्रह्लाद बोले, जो जीवोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति गतिको नहीं जानते अर्थात् पुरुषोंके भोग और अपवर्ग साधनके निमित्त अनुलोम प्रतिलोम परिणामवती मूलप्रकृतिमें जिन्हें आत्म भिन्न ज्ञान नहीं है, आत्मामें बुद्धि धर्म्म कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व आदि आरोपित करनेवाले उन पुरुषोंकी बुद्धि मूढ़ताके कारण स्तम्भित होती है, और जिसे जीव ब्रह्ममें ऐक्य ज्ञान है; उसकी बुद्धि स्तम्भ नहीं होती। भाव और अभाव सब पदार्थोंमें स्वभावसेही प्रवृत्त और निवृत्त होता है अर्थात् जैसे बछड़ा उत्पन्न होनेके पहलेही गौवोंके रुधिरपूरित स्तनमें दूध उत्पन्न होता है, उस समय उसके प्रवर्त्तक वात्सल्य न रहने पर भी जैसे स्वाभाविक क्षीरोत्पत्ति होती है, वैसे ही सब पदार्थ स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं, उनमें प्रवर्त्तककी अपेक्षा नहीं है; इसलिये पुरुषार्थका भी प्रयोजन नहीं है। यदि पुरुषार्थ अथवा भोग और अपवर्ग न रहे, तब कोई जगत्कर्त्ताकी आवश्यकता नहीं होती है; इसलिये आत्मा यदि अकर्त्ता हो, तो इस शरीरमें "मैं" यह अभिमान अविद्यासे स्वयं उत्पन्न हो सकता है। जो पुरुष साधु वा असाधु, होके आत्माको कर्त्ता समझे सुझे बोध होता है, उसकी दोषवती बुद्धि तत्त्वपथको नहीं जान सकती। हे देवेश! यदि पुरुषही कर्त्ता हो, तो उसके आत्म कल्याणके निमित्त अवश्यही सब कार्य्य सिद्ध हों, और पुरुष कदापि पराभूत न होवे। जब कि हितके वास्ते यत्नवान् मनुष्योंकी अनिष्ट सिद्ध और अर्थनिरोध दीखता है, तब किस लिये पुरुषार्थ स्वीकार किया जा सकता है। अदृष्टकी अनुकूलता न रहने पर यदि कार्य्यमें व्याघात हो, तब आत्महितमें यत्नवान् मनुष्योंके अनिष्ट अदृष्टकी उत्पत्ति युक्तिसङ्गत नहीं है, क्यों कि भोक्ताके समान नियत कर्त्ता न रहने पर भोक्ता भी नहीं रहता। ईश्वर और काल स्वभावकाही नामान्तर है, क्योंकि कोई कोई पुरुषके प्रयत्न न रहने पर भी स्वाभाविक अनिष्ट सिद्धि और इष्ट तिरोधान होते दीख पड़ता है। कोई कोई केवल स्वरूप बनाके कोई कोई अत्यन्त बुद्धियुक्त होकर अल्पबुद्धि कुरूप लोगोंसे धनागम लाभकी इच्छा करते हुए दिखाई देते हैं। जब कि सुख दुःख आदि सब शुभाशुभ गुण स्वभाव प्रेरित होकर पुरुषोंमें निविष्ट होते हैं, तब मैं सुखी हूं, मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, इत्यादि अभिमानके कारण कुछ भी नहीं हैं। सुख दुःख आदि सब विषय

स्वाभाविक हुआ करते हैं, ऐसा मेरे मनमें निश्चय है और क्या कहूं, मेरे मतमें युक्ति और आत्मज्ञान स्वभावसे स्वतन्त्र नहीं है. इस लोकमें कर्म्म जनित शुभाशुभ फल भोग प्राप्त हुआ करता है, इसे सब कोई स्वीकार करते हैं, इसलिये अब मैं सब कर्म्मोंका विशेष विवरण कहता हूं सुनो। जैसे अन्न भाजी वायस उसे प्रकाश करना जानता है, वैसेही सब कर्म्म स्वभावकेही असाधारण धर्म्म हैं, अर्थात् सब कर्म्मही स्वभावको प्रकाश करते हैं। जैसे तागे पाटके कारण होनेसे तन्तुनिष्ठ शुक्लादि गुण पटगत विचित्रतामें कारण होते हैं, वैसेही स्वभावही जन्मादि मात्रका हेतु है। जो पुरुष धर्म्माधर्म्म आदि सब विकारोंको जानते हैं, और त्रिगुणमयी प्रकृतिसे श्रेष्ठ उपादान प्रकृति अर्थात् ब्रह्मको नहीं जानते, उन कर्म्म और प्रकृतिके भेददर्शी पुरुषोंमें मूढ़तासे जड़ता हुआ करती है, और जो दोनोंकी ऐक्यता अवलोकन करते हैं, उनमें जड़ता नहीं होती स्वभावसे उत्पन्न हुए सब पदार्थोंको जिन्होंने निश्चय रूपसे जाना है दर्प वा अभिमान उनका क्या करेगा। हे देवराज! मैं सब धर्म्म, विधि और सब भूतोंको अनित्यता विशेष रूपसे जानता हूं, सब वस्तुही अनित्य हैं, इसही निमित्त शोक नहीं करता। मैं ममता हीन, निरहङ्कार, वासना रहित, बन्धनसे मुक्त, स्वरूप और देह आदिमें अनभिमानके कारण स्वरूपसे अप्रच्युत होकर जीवोंको उत्पत्ति और प्रलयके कारण परब्रह्मको अवलोकन करता हूं। हे शक्र! जो लोग शुद्धबुद्धि जितेन्द्रिय, परितृप्त और वासना रहित होकर आत्मविद्याके सहारे सब विषयोंको देखते हैं, उन्हें कुछ क्लेश नहीं है। विश्वकर्त्री प्रकृति वा धर्म्माधर्म्मके फल सुख दुःखमें मुझे प्रीति वा द्वेष नहीं है; मैं इस समय किसीको भी द्वेष्टा नहीं देखता हूं और पुत्र, मित्र आदिकी भांति ममता करनेवाले किसी पुरुषको भी अवलोकन नहीं करता हूं। हे इन्द्र! मैं कभी स्वर्ग पाताल अथवा मर्त्त्यलोककी कामना नहीं करता। ऐसा नहीं कह सकते, ज्ञानके विषय विज्ञान अर्थात् बुद्धि तत्त्वमें और आत्मा स्वरूप चिदात्मामें कुछ सुख नहीं है, आत्मा धर्म्माधर्म्म और उसके फल सुख दुःखका आश्रय नहीं है, इसही लिये मैं कुछ कामना नहीं करता, केवल ज्ञानसे तृप्त होकर निवास करता हूं।

इन्द्र बोले, हे प्रह्लाद! मैं पूछता हूं, कि जिस उपायसे ऐसा ज्ञान और शान्ति लाभ हो उसे तुम यथार्थ रीतिसे मेरे समीप वर्णन करो।

प्रह्लाद बोले, हे सुरराज! सरलता, सावधानता, प्रसन्नता, जितेन्द्रियता और वृद्धोंकी सेवासे पुरुष मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होता है। पुरुष स्वभावसेही ज्ञान लाभ करता है, और स्वभावसेही शान्ति प्राप्त होती है; आप जो कुछ देखते हैं, वे सब स्वभाविकही सिद्ध होते हैं। हे महाराज! दैत्यपति प्रह्लादने जब ऐसा कहा, तब त्रिलोकेश्वर देवराज विस्मययुक्त हुए और उस समय वह प्रसन्न होकर प्रह्लादके वचनका समादर करके उनका सत्कार और आमन्त्रण करके निज स्थानपर चले गये।

२२२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा जैसी बुद्धिके सहारे विपदग्रस्त और श्रीभ्रष्ट होकर महीमण्डलमें विचरते हैं; आप मेरे समीप उस विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें विरोचनपुत्र बलि और देवराज इन्द्रके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। देवराज इन्द्रने सब असुरोंको जीतके सर्व्व लोक पितामह ब्रह्माके पास जाके प्रणाम करनेके अनन्तर हाथ जोड़के बलिका विषय पूछा।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्! सदा धन दान करनेपर भी जिसका धन कभी नहीं घटता, मैं उस बलिको नहीं जानता; इसलिये आप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही वायु, बलिही वरुण, बलिही सूर्य्य, बलिही चन्द्रमा और बलिही अग्नि होकर सब जीवोंको ताप देता है, तथा वह बलिही जल स्वरूप हुआ करता है, मैं उस बलिको नहीं जानता। हे ब्रह्मन्! इसलिये आप मेरे समीप उस बलिका विषय वर्णन करिये। वह बलिही अस्तमय होता है, बलिही सब दिशाओंको प्रकाशित करता है, बलिही अतन्द्रित होकर यथाकालमें जलकी वर्षा किया करता है। हे ब्रह्मन्! मैं उस बलिको नहीं जानता इसलिये आप मेरे समीप उसका विषय वर्णन करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र! तुम जो बलिका विषय पूछते हो, वह तुम्हारे पक्षमें कल्याणकारी नहीं है, तब पूछनेपर झूठ न कहना चाहिये, इसही लिये मैं तुम्हारे निकट बलिका विषय वर्णन करता हूं। हे शचीश्वर! ऊंट, बैल, गधे और घोड़ोंमेंसे कोई एक रूपधरके सूने स्थानमें जो वरिष्ट होकर वास करे, वही बलि है।

इन्द्र बोले, हे ब्रह्मन्! यदि मैं सूने स्थानमें बलिके साथ मिलूं, तो उसे मारूंगा; वा नहीं? उस विषयमें आप मुझे आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्र! तुम बलिकी हिंसा न करना, बलि वध्य नहीं है। हे देवराज! तुम इच्छानुसार बलिके निकट नीति पूछना।

भीष्म बोले, जब भगवान् ब्रह्माने महेन्द्रसे ऐसा कहा, तब वह उसही समय ऐरावतपर चढ़के शोभायुक्त होकर पृथ्वीमण्डलपर विचरने लगे, अनन्तर भगवान् पितामहने जिस प्रकार कहा था, उसके अनुसार ही उन्होंने सूने स्थानमें स्थित खर-वेषधारी बलिको अवलोकन किया। इन्द्र उसे देखकर बोले, हे दानव! तुम खरयोनिमें प्राप्त होकर तुष भक्षण कर रहे हो, इस अधम योनिमें प्राप्त होनेसे तुम्हें दुःख होता है, वा नहीं? मैं देखता हूं, तुम्हारा शत्रुओंके वशीभूत, श्रीहीन, मित्ररहित, भ्रष्टवीर्य्य और नष्ट पराक्रम हुआ है। तुम जो स्वजनोंमें घिरकर सब लोकोंको परितापित करते हुए हम लोगोंको अग्राह्य करके सहस्रों भांतिके यानोंके जरिये गमन करते थे दैत्यलोग तुम्हारे मुखापेक्षी होकर तुम्हारे ही शासनमें निवास करते थे पृथ्वीमें तुम्हारे ही ऐश्वर्य्यसे बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते थे; अब तुम समुद्रके पूरब किनारे बिलमें वास करते हो इससे तुम्हें जो दुःख होता है, उसके लिये तुम शोक करते हो, वा नहीं? पहिले जब तुम स्वजनोंको धन बांटके देते थे, उस समय तुम्हारा मन कैसा हुआ था। अनेक वर्ष पर्य्यन्त, श्रीयुक्त रहके जब तुम विहार करते थे, उस समय पुष्कर मालिनी सुवर्णके समान रूपवाली सहस्रों सुरकामिनी तुम्हारे समीप उपस्थित होकर नृत्य करती थीं। हे दानवेश्वर! तुम्हारा मन उस समयमें कैसा था और इस समयमें ही किस प्रकार है? पहिले तुम्हारा महारत्नोंसे भूषित सुवर्णमय छत्र था, उस समय तुम्हारे समीप छःहजार गन्धर्व्व सात प्रकार नृत्य करते थे। तुमने जब यज्ञ किये थे उस समय तुम्हारे सब यज्ञयूप सुवर्णमय थे; जिस यज्ञसे तुमने पहिले दश अयुत अनन्तर दश हजार और उसके बाद सहस्र गोदान किया था, हे दैत्यराज! उस समय तुम्हारी बुद्धि किस प्रकार थी। जब तुमने यज्ञ करनेमें रत होकर सब पृथ्वी मण्डलको यज्ञकार्य्यमें अपर्य्याप्त समझके उसे परित्याग करके गमन किया था; उस समय तुम्हारे अन्तःकरणमें कैसे भाव उदय हुए थे? हे असुरेश्वर! अब तुम्हारे सुवर्णमय जलपात्र, छत्र और दोनों चमर नहीं दीखते हैं तथा ब्रह्माने तुम्हें जो माला प्रदान की थी, उसे भी नहीं देखता हूं।

बलि बोले, हे इन्द्र ! तुम मेरे छत्र, चमर और सुवर्णमय जलपात्र नहीं देखते हो; मेरे सब रत्न मूलप्रकृतिके बीच अन्तर्हित होरहे हैं, इसहीसे तुम उस विषयको पूछते हो; जब मेरा समय होगा, तब तुम मेरे उक्त रत्नोंको देखोगे। इस समय तुम समृद्धियुक्त और मैं असमृद्ध हूं, इसलिये तुम जो मेरे समीप बड़ाई करते हो, वह तुम्हारी कीर्त्ति और कुलके अनुरूप नहीं है। बुद्धिमान, ज्ञानतृप्त, क्षमाशील, साधु मनीषि पुरुष दुःखके समय शोक नहीं करते और समृद्धिकालमें भी हर्षित नहीं होते। हे पुरन्दर ! तुम तुच्छबुद्धिके कारण ऐसा बचन कहते हो। जब तुम मेरे समान होगे, तब ऐसा न कह सकोगे।

२२३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भरतकुल प्रदीप ! बलि जब प्रत्युत्तर देनेके लिये सर्पकी तरह गर्ज्जने लगा, तब देवराज हंसके फिर उससे यह बचन बोले।

इन्द्र बोले, हे बलिराज ! तुम जो स्वजनोंके बीच घिरके सब लोकोंको परितापित और हम लोगोंकी अवज्ञा करते हुए सहस्र प्रकारके यानोंसे गमन करते थे, इस समय उन स्वजनोंसे और मित्रोंसे परित्यक्त होकर अपनी यह अत्यन्त दीनदशा देखकर शोक करते हो, वा नहीं ? पहले अतुलप्रीति लाभ करके तथा सब लोकोंको अपने वशमें रखके इस समय यह वाह्य विनिपात लाभ करके दुःखित होते हो, वा नहीं ?

बलि बोले, हे देवराज ! इस जगत्में कालक्रमसे सब वस्तु अनित्य होती हैं, उसे देखकर मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता; क्यों कि जगत्में जो कुछ है, वह सभी विनश्वर है। हे सुरराज ! जीवोंके इन सब शरीरोंका अन्त होगा, इसहीसे मैं किसी विषयमें शोक नहीं करता; मैं यह नहीं कहता, कि मेरी यह दशा मेरे अपराधसे ही हुई है। जीवन और शरीर एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं, दोनो एकत्र वर्द्धित और एकत्र ही विनष्ट हुआ करते हैं। मैं ऐसा शरीर पाके केवल अवश हुआ हूं, सो मत समझो; मैं इस विषयके तत्वोंको जानता हूं और जाननेसे ही मुझे किसी विषयमें क्लेश नहीं है। जैसे प्रवाह समुद्रमें जाके लीन होता है, वैसे ही जीवोंकी मृत्यु होनेसे ही निष्पत्ति हुई। हे वज्रधर ! जो लोग इसे पूरी रीतिसे जानते हैं, वे सब मनुष्य शोक नहीं करते और जो लोग रजोगुणसे ग्रस्त और मोहयुक्त होकर इस विषयमें मूर्ख रहते हैं, और जिनकी बुद्धि नष्ट होजाती है वेही कृच्छ्रताको प्राप्त होके दुःखित हुआ करते हैं। मनुष्य ज्ञानलाभसेही सब पापोंको खण्डन करता है। पापरहित मनुष्य सतोगुण लाभ किया करता है, सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य पूर्णरूपसे प्रसन्न होते हैं। जो लोग सतोगुणसे निवृत्त होते हैं, वे बार बार जन्म ग्रहण किया करते हैं, और काम आदिके वशमें होकर जन्म जरा प्रभृति विविध दुःखोंको भोगते हुए दीन भावसे परिताप करते हैं। मैं कामादि विषय सिद्धि, अनर्थ, जीवन, मरण, सुख और दुःखके फलमें द्वेष और कामना नहीं करता। निर्जीव शरीरकाही नाश होता है, जीवका कदापि नाश नहीं होता। जो मनुष्य जिस किसी जीवका बध करता है, वह अर्थात् "मैं हन्ता हूं," ऐसा अभिमानी पुरुष भी मरता है, जो मारता है, और जो मरता है, वे दोनोंही कौन कर्त्ता है, उसे नहीं जानते। हे इन्द्र ! मारके वा जय करके जो कोई पुरुष पुरुषत्व प्रकाशित करता है, वास्तवमें वह कर्त्ता नहीं है, जो कर्त्ता है, वही उस कार्य्यको किया करता है। लोकोंकी उत्पत्ति और नाशका कर्त्ता कौन है, ऐसा संशय उपस्थित होनेपर

उस समय यह बोध होता है, कि उत्पत्तियुक्त मनही उसे सिद्ध करता है; परन्तु मनका भी दूसरा कर्ता है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि ये पांचो जीवोंकी उत्पत्तिके विषयमें कारण हैं; इसलिये उस विषयमें शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। चाहे मनुष्य विविध विद्यासे युक्त हो, अथवा अविद्वान् ही हो; बलवान् हो वा निर्ब्बल ही होवे; सुन्दर हो, वा कुरूपही हो; सुभग हो अथवा दुर्भगही होवे, अत्यन्त गम्भीर काल निज तेजके सहारे सब-कोही संग्रह कर रहा है, जब कि जानता हूं, किसीभी कालके वशीभूत होते हैं, तब मुझे किसी विषयमें दुःख नहीं है। जब काल स्वरूप ईश्वर पहले जलाता है, तब अग्नि पीछे भस्म करती है; ईश्वरके जरिये मृत शरीरको मनुष्य पीछे नष्ट किया करता है। ईश्वर जिसे पहले नष्ट करता है, वही पीछे नष्ट होता है; ईश्वर जो दान करता है, मनुष्य उसही प्राप्त होनेवाले विषयको पाता है; इस पुण्य पापसे रहित कालरूपी विधाताका पार नहीं है, इससे परम्पार भी दृष्टिगोचर नहीं होता; मैं चिन्ता करनेपर भी कालका अन्त नहीं देखता, हे शचिपति! मेरे प्रत्यक्षमें यदि काल सब भूतोंका नाश न करता, तो अवश्यही मुझे हर्ष, दर्प और क्रोध हो सकता। मैं गर्द्दभरूप धरके निर्ज्जन स्थानमें तृष भक्षण करता हूं, उसे जानके तुम आके मेरी निन्दा करते हो; परन्तु जिन सब भयानक रूपोंको देखकर तुम भी भागनेका मार्ग देखने लगते हो, मैं इच्छा करनेसे अनायासही वैसे अनेक प्रकारके भय-ङ्कररूप धारण कर सकता हूं। हे शक्र! कालही सबका संहार करता है, कालही सब प्रदान करता है, सभी कालका विधान है; इसलिये तुम पौरुष प्रकाश मत करो। हे पुर-न्दर! जब मैं पहले क्रुद्ध हुआ था, उस समय सचराचर समस्त लोक व्यथित हुए थे; हे शक्र! इससे मैंने इस जगत्को ह्रास वृद्धि रूप सनातन धर्म्मको विशेष रूपसे जाना है; तुम इसे जान नेसे स्वयंही विस्मययुक्त होगे ऐश्वर्य्य और ऐश्वर्य्यका आविष्कार कदापि अपने अधीन नहीं है।

हे मघवन्! कौमार अवस्थामें तुम्हारा चित्त जैसा था, इस समय भी वैसा ही है, उसे देखकर तुम नैष्टिक बुद्धि लाभ करो। हे वासव! तुम सब जानतेही हो, कि देव मनुष्य पितर, गन्धर्व्व, राक्षस, और सर्प भी मेरे वशमें थे। "वैरोचन बलि जिस दिशामें है, उस दिशा-कोही नमस्कार है," बुद्धि, मत्सरतासे मोहित मनुष्य मुझे ऐसाही समझते थे। हे शचिपति! इस समय मैं उसके लिये वा आत्मभ्रंशके निमित्त शोक नहीं करता; मेरी बुद्धिमें यही निश्चय हुआ है कि मैं ईश्वरके वशमें निवास करता हूं। हे शक्र! जब देखता हूं, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सुन्दर रूपवाले प्रतापवान् मनुष्य दुःखसे जीवन बिता रहे हैं, तब कहना पड़ेगा, कि उनका भवितव्य वैसाही है और नीचवंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त मूढ़ अशुभजन्मा मनुष्य कुटुम्बके सहित परम सुखसे जीवनयात्राका निर्व्वाह कर रहे हैं, उनकीभी होतव्यता वैसी ही है। हे वासव! देखा जाता है, उत्तम लक्षणवाली सुन्दरतायुक्त स्त्रियां दुर्भगा होती हैं और कुलक्षणसे युक्त कुरूपवाली स्त्री भी सुभगा होती हैं। हे वज्रधर! तुम इस प्रकार समृद्धियुक्त होरहे हो और मैं ऐसी अवस्थामें पड़ा हूं, यह तुम्हारा भी कृत नहीं है, और मेरा भी कृत नहीं है। हे देवराज! तुमने ऐसी समृद्धिके लिये कोई कर्म्म नहीं किये और मैंने भी ऐसी अवस्थाके निमित्त कोई कर्म्म नहीं किया है, समृद्धि वा असमृद्धि कालक्रमसे हुआ करती है। तुम श्रीमान् द्युतिमान और देव-राज होकर बिराजते हुए मेरे विषयमें गर्ज्ज रहे हो परन्तु काल मुझे यदि आक्रमण न

किये होता और मैं इस प्रकार गधेका रूप धारण न किये होता, तो इसही समय मुष्टिक प्रहारसे तुम्हें बज्रके सहित गिरा सकता। जो हो, यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, शान्ति काल उपस्थित हुआ है ; कालही सबको स्थापित करता है, कालही सबको पकाया करता है। मैंने दानवोंका राजा और पूजनीय होकर सबके विषयमें तर्ज्जन गर्ज्जन और प्रताप प्रकाश किया था ; काल यदि मेरे निकट न आवेगा, तो और किसके समीप जायगा।

हे देवराज मैंने अकेलेही तुम्हारे महानुभाव द्वादश- आदित्योंके तेजको धारण किया था, मैंनेही मेघ रूप धरके जलको वर्षा करता था, मैंही सूर्य्यरूप धरके तीनों लोकोंको सन्तापित और विद्योतित करता था, मैंही तीनों लोकोंकी रक्षा करता था, और इच्छा करनेसेही नष्ट कर सकता था, मैंही दान और प्रदान करता था, मैंही सबको स्थिर और नियमित करता था ; तीनों लोकोंके बीच मैंही सबके निग्रहानिग्रहमें समर्थ शासनकर्त्ता था। हे देवराज! इस समय मेरा वह सब प्रभुत्व निवृत्त हुआ है, मैं काल सैन्यसे आक्रान्त हुआ हूं, इसलिये वह सब मुझे अब मालूम नहीं होता है। हे शचिपति! मैं कर्त्ता नहीं हूं, और तुम भी कर्त्ता नहीं हो तथा दूसरे कोई भी कर्त्ता नहीं हैं। सब लोक स्वभावसेही कालक्रमसे पालित और संहृत होरहे हैं। मास और पक्षही जिसके अधिष्ठान जो अहोरात्रिके जरिये सब तरहसे परिपूरित होरहा है, बसन्त आदि ऋतुओंमें ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके सहारे जिसे जाना जाता है, वही एकमात्र निर्व्विषय ध्यानगम्य कालको वेद जाननेवाले पुरुष ब्रह्म कहा करते हैं। कोई कोई बुद्धिबल अवलम्बन करके इस समस्त कालात्मक जगत्को ब्रह्मरूपसे विचारनेको कहते हैं। इस चिन्ताके पांच विषय हैं ; अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोश, ये प्रत्येक वाम वा दक्षिण पार्श्व, शिर, मध्य देश और पश्चाद्भाग इन पञ्च-अवयव विशिष्ट हैं, ऐसा श्रुतिसे जाना जाता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, पारावार रहित समुद्रके समान ब्रह्म अत्यन्त गम्भीर वा अगम अर्थात् तर्कसे अगम्य है, और शास्त्रके अनुसार मालूम होनेपर भी अत्यन्त दुःखसे उसमें प्रवेश किया जाता है। उसका न आदि है, न अन्त है; वह जीव रूपसे अक्षर अर्थात् निर्व्विशेष वस्तु है, और जैसे शुक्ति स्वयं रजत रूपसे जन्म नाश रहित हुआ करती है, वैसेही जन्म नाशसे रहित होके भी जगत् रूपसे क्षर अर्थात् बिनश्वर है। वह स्वयं उपाधिरहित है, परन्तु बुद्धि तत्वमें प्रवेश करके सोपाधिक होता है, तत्वदर्शी लोग उसे उपाधि धर्म्म स्पर्श रहित समझते हैं और चैतन्य रूपसे परिणत पञ्चमहाभूत सम्बन्धीय सत्, चित्, आनन्द और अनन्तके बिपरीत धर्म्म, अनृत, जड़, दुःख और परिच्छिन्नाख्य दुर्गमत्व भगवान् वा अविद्याके जरिये आत्मामें समझा करते हैं ; परन्तु ये अविद्यासे प्रकाशित दुःख आदि आत्माके गम्य नहीं हैं। ब्रह्मा, रुद्र अथवा विष्णु आदि अन्य कोई भी जिसका प्रभु नहीं है वही आत्माका स्वरूप है, इससे आत्मासे बढ़के दूसरा अधिपति कोई भी नहीं है।

हे इन्द्र! सब भूतोंकी जो गति होती है, उसे प्राप्त न करके तुम कहां जाओगे? भागनेपर भी उसे परित्याग नहीं किया जा सकता और स्थित रहनेपर भी वह परित्यक्त नहीं होती। इन्द्रियें इस आत्माको देखनेमें समर्थ नहीं हैं ; कोई इस आत्माको अग्नि कहा करते हैं, कर्म्मपरायण मनुष्य इस आत्माको सर्व्वकर्म्म समर्पणीय प्रजापति समझते हैं। आत्माके एक होनेपर भी लोग उसे ऋतु, महीना, पक्ष,

दिवस, क्षण, पूर्व्वान्ह, अपरान्ह, मध्यान्ह और मुहूर्त्तादि भेदसे अनेक प्रकार कहा करते हैं। हे देवराज! यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् जिसके वशमें है, उसे ही कालरूपसे मालूम करो।

हे शचिपति! तुम्हारे समान बलवीर्य्यसे युक्त कई हजार इन्द्र गुजर गये, तुम प्रबल बलदर्पित देवताओंके राजा हुए हो; परन्तु समय उपस्थित होनेपर महाबलवान् काल तुम्हें शान्तिके स्थानमें भेजेगा। हे शक्र! जो काल इन सबको संहार कर रहा है, तुम उसका भय करके स्थिर रहो, मैं अथवा तुम तथा पूर्व्व पुरुषोंमेंसे कोई भी कालको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है। यह जो तुम उत्तम राजश्री लाभ करके "राजश्री मुझमेंही है," ऐसा समझ रहे हो, वह मिथ्या है; क्यों कि यह राजलक्ष्मी एक स्थानमें निवास नहीं करती। हे देवराज! यह चपला राजलक्ष्मी तुमसे भी श्रेष्ठ हजारों इन्द्रके निकट और मेरे समीप निवास करती थी; अब मुझे छोड़के तुम्हें अवलम्बन किया है; हे देवेश! इससे तुम फिर ऐसा अहंकार मत करना; तुम्हें अवश्य शान्त होना चाहिये। चपला राजलक्ष्मी तुम्हें भी इसही प्रकार अहंकारी जानके शीघ्रही दूसरेके निकट गमन करेगी।

२२४ अध्याय समाप्त।

—— ——

अनन्तर देवराजने उस समय महात्मा बलिके शरीरसे साक्षात् लक्ष्मीको निकलती हुई देखा। भगवान् पाकशासन इन्द्र विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे उस प्रभापुञ्जसे जलती हुई लक्ष्मीको देखकर बलिसे उसका विषय पूछने लगे।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज! यह जो निज तेजसे प्रकाशमान केयूरवती दर्शनीय रूपवाली शिखण्डशालिनी स्त्री तुम्हारे देहसे निकली, वह कौन है?

बलि बोले, हे इन्द्र मैं नहीं जानता, कि यह आसुरी, दैवी अथवा मानवी है। तुम्हारी इच्छा हो, इससे पूछो, वा मत पूछो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुम कौन हो, मनोहर रूप और केशपाश धारण करके बलिके शरीरसे क्यों निकली; तुम्हारा क्या नाम है, उसे मैं नहीं जानता; इससे मेरे समीप अपना नाम कहो। हे सुभ्रु! तुम कौन हो, दैत्येश्वर बलिको परित्याग करके निज तेजसे प्रकाशित होकर मायाकी भांति क्यों खड़ी होरही हो? मैं पूछता हूं, तुम मुझसे वही कहो।

लक्ष्मी बोली, हे वासव! विरोचन मुझे नहीं जानते थे और यह विरोचनपुत्र बलि भी मुझे नहीं जानता; लोग मुझे दुःसहा और विधित्सा समझते हैं, मुझे कोई भूति, कोई लक्ष्मी और कोई कोई श्री कहा करते हैं। हे देवराज! तुम मुझे नहीं जानते और सब देवता भी मुझे नहीं जानते।

इन्द्र बोले, हे दुःसहे! बहुत समय तक बलिके स्थानमें वास करके अब मेरे निमित्त अथवा बलिके ही वास्ते इन्हें परित्याग करती हो, उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे शक्र! धाता वा विधाता मुझे किसी प्रकार स्थिर नहीं रख सकते, काल ही मुझे परिवर्तित करता है; हे देवराज! इसलिये तुम कालकी अवज्ञा मत करो।

इन्द्र बोले, हे शुचिस्मिते! तुमने किस कारणसे बलिको परित्याग किया और मुझे किसलिये परित्याग नहीं करती हो, मेरे समीप उसे कहो।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! मैं सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम और धर्म्ममें निवास करती हूं; बलि इन सब विषयोंसे परांमुख हुए हैं। ये पहले ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर अन्तमें ब्राह्मणोंकी असूया

करते और जूठे रहके घृत छूते थे। पहिले यज्ञशील होकर पीछे यह मूढ़बुद्धि कालसे अत्यन्त पीड़ित होकर "मेरी ही पूजा करो" सब लोगोंसे ऐसा ही वचन कहता था। हे देवराज! इसही लिये मैं इसे त्यागके तुम्हारे समीप वास करती हूं; तुम सावधान होकर तपस्या और विक्रमके सहारे मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, हे कमलालये! देवता, मनुष्य अथवा सब प्राणियोंके बीच ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो अकेला तुम्हें धारण करनेमें समर्थ हो।

लक्ष्मी बोली, हे पुरन्दर! यह सत्य है, कि देवता, गन्धर्व्व, असुर वा राक्षसोंमें ऐसा कोई भी नहीं है, जो अकेला मुझे सह्य कर सके।

इन्द्र बोले, हे शुभे! तुम कहो, किस प्रकार मेरे समीप निवास करोगी, मैं वैसाही करूंगा; यह सत्य वचन कहना तुम्हें उचित है।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र। मैं तुम्हारे समीप सदा जिस प्रकार निवास करूंगी, उसे सुनो। तुम वेद विहित विधिके अनुसार मुझे चार हिस्से में विभक्त करो।

इन्द्र बोले, हे कमले! मैं यथा शक्तिसे बलके अनुसार तुम्हें सदा धारण करूंगा, तुम्हारे निकट मेरा कुछ भी व्यतिक्रम न होगा। भूतभाविनी धरणी ही मनुष्योंको धारण किया करती है; इससे धरती तुम्हारा एक पद धारण करे, मुझे बोध होता है, वह तुम्हारा एक चरण धारण करनेमें समर्थ होगी।

लक्ष्मी बोली, यह मैंने भूमिमें एक चरण अर्पण किया, यह भूतलमें प्रतिष्ठित रहेगा। हे इन्द्र! अब मेरे दूसरे चरणका स्थान वर्णन करो।

इन्द्र बोले, जल सब द्रवमय मनुष्योंको पार-वर्य्या किया करता है, इससे जल ही तुम्हारा दूसरा चरण धारण करे; क्यों कि जल तुम्हारे चरणका सहनेमें समर्थ होगा।

लक्ष्मी बोली, हे देवेन्द्र! यह मैंने दूसरा चरण जलके बीच अर्पण किया, यह जलमें ही प्रतिष्ठित रहेगा अब तीसरे चरणके स्थापित करनेका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, वेद, यज्ञ और समस्त देवता जिसमें प्रतिष्ठित हैं वह अग्नि तुम्हारे तीसरे चरणको उत्तम रीतिसे धारण करेगी।

लक्ष्मी बोली, हे इन्द्र! यह जो चरण मैंने अर्पण किया, वह अग्निके बीच प्रतिष्ठित हुआ, अब चौथे चरणके स्थापनका स्थान बतलाओ।

इन्द्र बोले, मनुष्योंके बीच जो साधु पुरुष सत्यवादी और ब्रह्मनिष्ठ हैं, वेही तुम्हारे चौथे चरणको धारण करेंगे, क्यों कि साधु लोग तुम्हारे चरणको धारण करनेमें समर्थ हैं।

लक्ष्मी बोली, हे देवराज! यह जो चरण निक्षेप किया, वह साधुओंके बीच प्रतिष्ठित हुआ; भूतोंके बीच इसी प्रकार मेरे चारों चरण निहित रहे; तुम इसी भांति मुझे धारण करो।

इन्द्र बोले, मैंने सर्व्व भूतोंके ऊपर तुम्हें स्थापित किया; अर्थात् वित्त, तीर्थादि पुण्य यज्ञ आदि धर्म्म और विद्या, ये तुम्हारे चारों चरण भूमि, अग्नि, जल और साधुओंमें प्रतिष्ठित हुए। मेरा यह वचन सब कोई सुने, जीवोंके बीच जो पुरुष स्तेय, काम, अशौच अथवा अशान्तिसे तुम्हें आहत करेगा, मैं उसे धर्षण करूंगा। अनन्तर लक्ष्मीसे परित्यक्त दैत्यराज बलि कहने लगे।

बलि बोले, सुमेरु पर्व्वतकी प्रदक्षिणा करनेवाले सूर्य्य जैसे पूर्व्वदिशाको प्रकाशित करता है वैसेही उत्तर पश्चिम और दक्षिण दिशाको भी प्रकाशित किया करता है; परन्तु जिस समय क्रमसे सब दिशा नष्ट होंगी और आदित्यमण्डल केवल सुमेरुपृष्ठके मध्यवर्त्ती ब्रह्मलोकको दिवसके मध्य भागमें प्रकाशित करेगा, तब वर्त्तमान वैवस्वत-मनुका अधिकार च्युत होनेपर सावर्णिक मनुके भावी-अधिकारके समय

देवताओं और असुरोंमें युद्ध होगा; उस युद्धमें मैं तुमको फिर जीतूंगा। हे देवराज! जब सूर्य केवल ब्रह्मलोकमें स्थिति करके सब लोकोंको सन्तापित करेगा, उस समय देवासुर संग्राममें मैं तुम्हें जय करूंगा।

इन्द्र बोले, हे दैत्यराज! "तुम्हें मारना उचित नहीं है," ब्रह्माने मुझे ऐसीही आज्ञा दी है, इसहीसे मैंने तुम्हारे शिरपर वज्र नहीं चलाया। हे दैत्येन्द्र! तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां जाओ, तुम्हारा कल्याण हो; सूर्य मध्य-स्थलमें रहके कभी ताप प्रदान न करेगा, स्वय-म्भूने पहले ही इसका समय निरूपण किया है, यह सदा सत्य पथमें निवास करते और प्रजाको ताप दान करते हुए भ्रमण करता है; छःमहीनेके अनन्तर इसकी गति परिवर्त्तित होती है, उसेही अयन कहते हैं; अयन दो प्रकारके हैं, उत्तरायण और दक्षिणायन। यह सब लोकोंमें उक्त दो प्रकारके अयनके सहारे सूर्यगर्म्मी और शीतकी वर्षा करते हुए भ्रमण कर रहा है।

भीष्म बोले, हे भारत! दैत्यराज बलि महे-न्द्रका ऐसा वचन सुनके दक्षिण तरफ चले गये इन्द्रने भी पूर्वदिशाकी ओर प्रस्थान किया। सहस्रलोचन इन्द्र बलिके कहे हुए यह अहङ्कार रहित वचन सुनके शून्य मार्गसे स्वर्गमें गये।

२२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्मराज! इस विषयमें शत-क्रतु और नमुचिके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका भी प्रमाण दिया जाता है। एक समय इन्द्रने श्रीहीन होनेपर भी समुद्रकी भांति गम्भीरभावसे बैठे हुए भूतोंकी उत्पत्ति और नाशकी जाननेवाले नमुचिके समीप आके यह वचन कहा, हे नमुचि! तुम पाशावद्ध पदच्युत शत्रुओंके वशीभूत और श्रीहीन हुए हो, इस-लिये ऐसी अवस्थामें पड़के शोक करते हो, वा नहीं?

नमुचि बोला, हे देवराज! अनिवार्य्य शोकसे शरीर सन्तापित होता है, शत्रु लोग सन्तुष्ट हुआ करते हैं, शोक कभी दुःखमण्डनका कारण नहीं होता; इसही लिये मैं शोक नहीं करता। जगत्में जो कुछ वस्तु हैं, सभी विन-श्वर हैं। हे सुरेश्वर! शोक करनेसे रूप नष्ट होता है, शोक करनेसे श्रीहीन होना पड़ता है, सन्तापसे परमायु और धर्म्म नष्ट हुआ करता है; इसलिये ज्ञानवान् मनुष्योंको उचित है, शोकसे उपस्थित दुःखको त्यागके मनहीमन हृदयके प्रीतिकर कल्याणकी चिन्ता करें। मनुष्य जिस समय कल्याण विषयमें मन लगाता है, तभी उसके सब प्रयोजन निःसन्देह सिद्ध होते हैं। अन्तर्य्यामी रूपसे एकमात्र शासन-कर्त्ता वर्त्तमान है, दूसरा कोई भी शास्ता नहीं है। जो गर्भशय्यामें सोये हुए पुरुषको शासित करता है, मैं उसहीके जरिये नियुक्त हुआ हूं, और जैसे जल नीचेकीही ओर जाता है, वैसेही जिस भांति नियुक्त हुआ हूं, उसही प्रकार कार्य्यभार ढोता हूं। वह और मोक्ष इन दोनोंमें तत्वज्ञानसे मोक्षही श्रेष्ठ और गरिष्ठ है, इसे जानकर भी मोक्ष और साधनके लिये शमदम आदि विषयोंमें यत्न नहीं कर सकता; धर्म्मयुक्त और अधर्म्म विहित आशामें वशीभूत होकर समय बिताते हुए शास्ताके जरिये जिस प्रकार नियुक्त हुआ हूं, उसही भांत कार्य्यभार ढोया करता हूं। मनुष्योंको जो जिस प्रकारसे प्राप्त होनेवाला है, वह उसही भांतिसे प्राप्त होता है; होनहार विषय जो जिस प्रकारसे होनेवाला होता है, वह उसही प्रकार हुआ करता विधाता जिन जिन गर्भोंमें जीवोंको बार बार नियुक्त करता है, जीव उसमेंही निवास करते हैं स्वयं जिसकी इच्छा करते हैं, वह सिद्ध नहीं होता। "मेरा

ऐसाही भवितव्य था, ऐसाही होगा," जिनके अन्तःकरणमें ऐसे भाव सदा जाग्रत होरहे हैं, वे कभी मोहित नहीं होते, कालक्रमसे उपस्थित दुःख सुखके जरिये हन्यमान मनुष्योंका अभियोग कर्त्ता कोई भी नहीं है। मनुष्य दुःखके विषयमें द्वेष करते हुए "मैंही कर्त्ता हूं।" इस प्रकार जो अभिमान किया करते हैं, वही दुःख है। ऋषि, देवता, महासुर, तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और वनवासी मुनियोंके निकट भी सब आपदा उपस्थित होती हैं, जिन्होंने सदसत् वस्तुओंको विशेष रूपसे जाना है, वेही भयभीत नहीं होते। पण्डित पुरुष क्रुद्ध नहीं होते, विषयोंमें आसक्त नहीं होते; विपदमें दुःखी सम्पत्में सन्तुष्ट और अर्थकृच्छ्रात विपद उपस्थित होनेपर शोक नहीं करते; वे स्वभावसेही हिमाचलकी तरह अटलभावसे स्थित रहते हैं। सब प्रयोजनोंकी सिद्धि जिसे हर्षित नहीं कर सकती, और समय पर उपस्थित हुई विरुद्ध भी जिसे दुःखित नहीं कर सकती; जो सुख दुःखको समान भावसे सेवन करते हैं, उन्हीं मनुष्योंको धुरन्धर कहा जाता है। पुरुषको जिस समय जो अवस्था प्राप्त होवे, शोक न करके उसमेंही सन्तुष्ट रहे और सन्तापकारी आयासकर प्रवृद्ध कामको शरीरसे दूर करे। शौत, स्मार्त्त, लौकिक न्याय अन्यायको विचारनेवाली ऐसी कोई जनसमाज नहीं है जिसमें प्रवेश करके मनुष्य सदा भयभीत न हो; इससे जो पुरुष दुरवगाह धर्म्मतत्वमें स्नान करते हुए उसे प्राप्त करे, उसीही सभ्य समाजके बीच धुरन्धर कहना चाहिये। धर्म्मतत्त्व, जो अत्यन्त दुरवगाह है, तब इसमें सन्देहही क्या है, कि ब्रह्मतत्व उससे भी दुष्प्रवेश्य है। बुद्धिमान् पुरुषोंके सब कार्य्य परिणाममें भी दुर्ज्ञेय हैं, जो बुद्धिमान् होते हैं, वे कभी मोहके समयमें मुग्ध नहीं होते। हे अहल्यापति वृद्ध गौतम! यदि तुम कष्टकारी विषम विपदमें पड़ते और पदच्युत होते, तो क्या मुग्ध न होते? मन्त्र, बल, बुद्धि, वीर्य्य पौरुष, शीलता, सदाचार और अर्थसम्पत्तिसे मनुष्य कभी अलभ्य वस्तु प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, इसलिये उसके लिये शोकका क्या प्रयोजन है। विधाताने पहले मनुष्यके सम्बन्धमें जो विधान किया है, उसे वही भोग करना पड़ेगा, मैं भी विधिकृत कार्य्यका अनुसरण करूंगा, मृत्यु मेरा क्या करेगी, मनुष्य प्राप्त होनेवाली वस्तुओंकोही पाता है, जाने योग्य स्थानमें ही जाता है और प्राप्त होनेवाले सुख दुःखही प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य इन सब विषयोंको पूर्ण रीतिसे जानके मोहित नहीं होते, वे सब दुःखदायक विषयोंमें भी सुखी और सर्व्वप्रधान करके विख्यात हुआ करते हैं।

२२६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलप्रवर पितामह! वस्तुनाश अथवा राज्य नाश रूप कष्टकारी विपदमें पड़े हुए पुरुषके पक्षमें कल्याण क्या है। आपही इस लोकमें हम लोगोंके बीच परमवक्ता हैं, इसलिये मैं आपसे यह विषय पूछता हूं आप विस्तारपूर्व्वक बयान करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! स्त्री, पुत्र, सुख और वित्तहीन मनुष्योंके कष्ट करी विपदमें पड़नेसे धीरज ही उनके लिये कल्याणकारी होता है, सदा धैर्य्ययुक्त शरीर कदापि विशीर्ण नहीं होता, शोकरहित सुख भी आरोग्यतामें श्रेष्ठ कारण है, शरीर आरोग्य रहनेपर मनुष्य फिर धन प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जो बुद्धिमान् मनुष्य सात्विकी वृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनके ऐश्वर्य्य धीरज और सब कार्य्य सिद्ध होते हैं। हे धर्म्मराज! इस

विषयमें फिर बलि और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया जाता है। दैत्य दानवोंके नाशक देवासुर संग्राम समाप्त होनेपर सब लोक विष्णुसे आक्रान्त और शत-क्रतु देवराज हुए, देवताओंके यज्ञ करनेसे ब्राह्मण आदि चारों वर्ण व्यवस्थापित हुए, तीनों लोक समृद्धिवान और स्वयम्भू ब्रह्मा प्रीतियुक्त हुए; रुद्रगण, वसुवृन्द, दोनों अश्वि-नीकुमार, देवर्षि, गन्धर्व्व, भुजगेन्द्र और सिद्ध समूहोंसे घिरे हुए देवराजने चार दांतवाले अत्यन्त दान्त शोभायुक्त ऐरावत गजराजपर चढ़के तीनों लोकमें घूमनेके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने किसी समय समुद्रके किनारे किसी पहाड़की गुफामें विरोचनपुत्र बलिको देखा और देखते ही उसके निकट उपस्थित हुए। राजा बलि सुरराज इन्द्रको ऐरावतपर चढ़े और देवताओंमें घिरे देखकर शोकार्त्त वा व्यथित नहीं हुए। इन्द्र ऐरावतपर चढ़े रहके अविकृत और अभीतभावसे स्थित बलिको देखकर यह वचन बोले कि, हे दैत्यराज! तुम जो ऐसी अवस्थामें भी व्यथित नहीं होते हो, उसमें शूरता अथवा वृद्धसेवा तथा तपस्यासे प्राप्त हुआ तत्वज्ञान कारण हुआ है। जो हो, यह सब तरहसे अत्यन्त दुष्कर कार्य्य है। हे विरोचनपुत्र! तुम शत्रुओंके वशीभूत और परम श्रेष्ठ पदसे भ्रष्ट होकर किसका सहारा करके शोचितव्य विषयोंमें शोक नहीं करते हो। तुमने स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता और अत्यन्त उत्कृष्ट भोगोंको प्राप्त किया था, फिर शत्रु-ओंके जरिये तुम्हारा धन, रत्न और राज्य छीना गया, तौभी तुम किस लिये शोक नहीं करते हो उसे कहो। पहले तुम पिता पिता-मह पदके ईश्वर हुए थे, अब शत्रुओंके जरिये उस पैतृकपदके छीने जानेपर क्यों नहीं शोक करते हो। तुम वरुण-पाशसे बद्ध, वज्रसे घायल, स्त्री और रत्न हरे जानेपर भी किस कारण शोक रहित होरहे हो, उसे कहो। तुम श्रीहीन और विभवसे भ्रष्ट होके भी जो शोकरहित होरहे हो, यह अत्यन्त दुष्कर कार्य्य है। क्यों कि तीनों लोकका राज्य नष्ट होनेपर तुम्हारे बिना दूसरा कौन पुरुष जीवित रहनेका उत्साह करेगा। इन्द्र बलिको परा-जित करके इसी प्रकार तथा दूसरी भांति कहुए वचन कह रहे थे, उस समय विरोचन-पुत्र बलि ऊपर कहे हुए वचनको अनायास ही सुनके निर्भय होकर कहने लगे।

बलि बोले, हे इन्द्र! मैं जब निग्रहीत हुआ हूं तब तुम्हें अब विकत्थना करनेका क्या प्रयोजन है; तुम वज्र लेके खड़े हो, उसे मैं देखता हूं। पहले तुम असमर्थ थे, इस समय कुछ समर्थ हुए हो, तुम्हारे अतिरिक्त कौन पुरुष इस प्रकार अत्यन्त निठुर वचन कह सकता है। जो पुरुष समर्थ होके भी शत्रुके वशमें पड़े हुए करतलगत वीरके ऊपर दया करता है, बुद्धिमान लोग उसे ही पुरुष समझते हैं। युद्ध करनेमें तत्पर दोनोंके बीच जयका निश्चय नहीं है, क्यों कि दोनोंके बीच एकको विजय और एक पुरुषको पराजय हुआ करती है। हे सुरेश्वर! "सर्व्वभूतोंके ईश्वरको मैंने जय किया है,"—तुम्हारा ऐसा स्वभाव न होवे। हे वज्रधर! तुम जो ऐसी अवस्था युक्त हुए हो, वह तुम्हारा कृत नहीं है और मैं जो ऐसी अवस्थामें निवास करता हूं, यह भी मेरा कृत नहीं है, इस समय तुम जैसी अवस्थामें हो, मैं पहले वैसाही था और इस समय मैं जिस प्रकार निवास करता हूं, भविष्यकालमें तुम उस ही प्रकार होगे! मुझसे कुछ पापकर्म्म हुआ है, ऐसा समझके तुम मेरी अवज्ञा मत करो, हे देवराज! पुरुष कालक्रमसे सुख दुःख भोग करता है, काल-क्रमसे ही तुमने इन्द्रत्व प्राप्त किया है, कर्म्मके जरिये तुम्हें इस इन्द्रत्व पदकी प्राप्ति नहीं हुई है। कालने मुझे

वशीभूत किया है, इसहीसे मैं इस समय तुम्हारी भांति समृद्धिशाली नहीं हूं, तुम भी मेरे समान अवस्थामें नहीं पड़े हो।

माता पिताकी सेवा, देवताओंकी पूजा और दूसरे गुण पुरुषके विषयमें सुखदायक नहीं हैं; विद्या, तपस्या, दान, मित्र और बान्धव लोग कालपीड़ित पुरुषको परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। मनुष्य लोग बुद्धि-बलके अतिरिक्त सैकड़ों उपायसे भी आनेवाली विपदको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। कालक्रमसे हन्यमान मनुष्योंको परि-त्राण करनेवाला कोई भी नहीं है। हे इन्द्र! तुम जो ऐसा अभिमान करते हो, कि "मैं कर्त्ता हूं" यही दुःख है। पुरुष यदि कर्त्ता हो, तो वह कभी किसीका कृत न होसके; इसलिये कर्त्ता जब कृत होता है, तब ईश्वरके अतिरिक्त और कोई भी कर्त्ता नहीं है। कालक्रमसे मैंने तुम्हें जीता था, और कालके अनुसार तुमने मुझे जय किया है। कालही सबकी गति है, और कालनेही सब प्रजाको सङ्कलन कर रखा, हे देवराज! तुम साधारण बुद्धिके वशमें होकर प्रलयके विषयको नहीं मालूम करते हो; तुमने निज कर्म्मसे उत्कर्ष लाभ किया है, ऐसा जानके कोई कोई तुम्हारा अत्यन्त आदर किया करते हैं, मेरे समान पुरुष लोक प्रवृत्तिको जानके कालपीड़ित होनेपर क्यों शोक करेंगे; किस लिये वे मुग्ध होंगे। किस कारणसे ही व्याकुल हुआ करेंगे, मैं अथवा मेरे समान पुरुष यदि सदा ही काल पीड़ित हों, तो मैं अथवा मेरे समान पुरुषोंकी बुद्धि भिन्न नौकाकी भांति अवसन्न हो सकती है। हे वासव! मैं, वा तुम अथवा दूसरे जो सुराधिपत्य लाभ करेंगे, सैकड़ों इन्द्र जिस मार्गसे गये हैं, उन्हें भी वही मार्ग अवलम्बन करना पड़ेगा। तुम परम श्रीस म्पन्न होकर इस समय ऐसे दुर्द्धर्ष होरहे हो, समय उपस्थित होनेपर काल मेरी भांति तुम्हें भी वशीभूत करेगा युग युगमें कई हजार इन्द्र हुए थे, वे भी कालके वशमें होकर समाप्त हो गये, इसलिये कालको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता काल अत्यन्त दुरतिक्रम है। तुम यह सम्पति पाके अपनेको सर्व्व भूत भावन ब्रह्माके समान समझ रहे हो; परन्तु यह इन्द्रत्व पद किसीके पक्षमें अचल और अनन्त नहीं है; तुम मूढ़तासे ही ऐसा समझते हो कि "यह मेरा है"। तुम अविश्वस्त विषयमें विश्वास करते हो, और अनित्य वस्तुको नित्य समझते हो।

हे सुरेश्वर! कालसे आक्रान्त पुरुष सदा इस ही प्रकार हुआ करते हैं। "यह राजश्री मेरी है" ऐसा समझके तुम मोहके वशमें होकर कामना करते हो, परन्तु यह श्री तुम्हारे वा हमारे अथवा किसीके भी निकट स्थिर नहीं रहती। हे वासव! इस चञ्चला श्रीने बहुतेरे पुरुषोंको अतिक्रम करके इस समय तुम्हें अवलम्बन किया है, परन्तु कुछ समय तुम्हारे निकट रहके फिर इस प्रकार दूसरेके समीप चली जायगी, जैसे गऊ एक निपानको त्यागके निपा-नान्तरमें गमन करती है। हे पुरन्दर! कई सौ राजा गुजर गये, उनको गिनती करनेकी सामर्थ नहीं है, तुमसे भी श्रेष्ठ बहुतेरे पुरुष भविष्यमें इन्द्रत्व लाभ करेंगे। वृक्ष, ओषधी, रत्न, जीव जन्तु, वन और आकर (खान) युक्त इस पृथ्वीको पहले जिन्होंने भोग किया था, इस समय उन्हें नहीं देखता हूं। पृथु, ऐल, मय, भीम, नरक, शम्बर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्रीनिसेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान्, वृष, सत्येप्स, ऋषभ, बाहु, कपि-लाश्व, विरूपक, बाण, कार्त्तस्वर, वह्नि, विश्व-दंष्ट्र, नैऋति, सङ्कोच, वरीताक्ष, वराह, अश्व, रुचिप्रभ विश्वजित् प्रतिरूप, वृषाण्ड, विष्कर, मधु, हिरण्यकशिपु और कैटभ आदि ये समस्त

दैत्य दानव और राक्षस लोग तथा इनके अतिरिक्त दूसरे बहुतेरे प्राचीन दैत्येन्द्र वा दानवेन्द्र जिनका कि नाममात्र सुना करता हूं; वैसे बहुतेरे पहले समयके दानवेन्द्र लोग काल पीड़ित होकर पृथ्वी त्यागके चले गये ; इसलिये कालही बलवान् है। इन सबने ही एक एक सौ अश्वमेध यज्ञ की थीं, तुम्हीं केवल शतक्रतु नहीं हो, ये सभी धर्मपरायण थे, सभी सदा यज्ञ करते और वे सब कोई आकाशमें बिचर सकते थे, वे सब कोई सम्मुख युद्धमें समर्थ थे ; सभी समरसंयुक्त, परिघबाहु, मायावी और कामरूपी थे। सुना जाता है, ये सब कोई युद्धमें उपस्थित होकर पराजित नहीं होते थे, सब ही सत्यव्रतसे युक्त, कामविहारी, वेदव्रतानिष्ट और बहुश्रुत थे; सबने ही राजश्वर होकर योग्य ऐश्वर्य्य प्राप्त किये थे ; परन्तु उन महानुभावोंको पहले कभी ऐश्वर्य्यका मद नहीं हुआ था। वे सब कोई यथायोग्य याचकोंको दान करते थे, सभी सब प्राणियोंके विषयमें यथा उचित करुणा करते थे। वे सब कोई दाक्षायणी दिति और दनु तथा प्रजापति कश्यपके पुत्र थे ; वे लोग तेज और प्रतापयुक्त रहनेपर भी कालसे प्रतिसंहृत हुए हैं।

हे देवराज ! जब तुम इस पृथ्वीको भोग करके फिर परित्याग करोगे, तब निज शोक रोकनेमें समर्थ न होगे, इसलिये अभीसे कामभोग विषयकी वासना त्याग दो ; इस ऐश्वर्य्यका गर्व्व मत करो ; ऐसा करनेसे तुम निज राज्य नाश होनेके समय शोकको सहनेमें समर्थ होगे। तुम शोकके समय शोक मत करो और हर्षके समय हर्षित न होना ; अतीत और अनागत विषयोंको त्यागके प्रत्युत्पन्न विषयके सहारे जीवन बिताओ।

हे देवेन्द्र ! यदि अतन्द्रित काल मेरे सदा योगमें रत रहने पर भी हमारे निकट आया है, तो शीघ्रही थोड़ेही समयके बीच तुम्हारे समीप भी उपस्थित होगा ; तुम समयकी उपेक्षा करो। हे देवेन्द्र ! इस समय तुम वचनव्यूहके जरिये मानो मुझे डराते हुए गर्ज्ज रहे हो, मैं संयत हुआ हूं इसहीसे तुम अपनी बड़ाई करते हो, कालने पहले मुझे आक्रमण किया है, अब तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है, हे देवराज ! मैं अगाड़ी कालसे पीड़ित हुआ हूं, इसही कारण तुम गर्ज्ज रहे हो।

हे वासव ! मेरे संग्राममें क्रुद्ध होनेपर कौन मेरे सम्मुख निवास करनेमें समर्थ होता, बलवान कालने मुझे आक्रमण किया है, इसही कारणसे तुम मेरे सम्मुखमें खड़े होरहे हो। यह सहस्र वर्ष प्रायः पूर्ण हुआ, पर मेरा सब शरीर तबतक अच्छी तरह सुस्थ नहीं हुआ। मैं इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ हूं, तुम सुरलोकमें प्रकृत इन्द्र हुए हो, यही विचित्र है ; जीवलोकके बीच काल क्रमसे तुम उपास्य होरहे हो। तुम क्या कर्म्म करके इस समय इन्द्र हुए और मैं ही कौनसे कर्म्मके जरिये इन्द्रत्व पदसे च्युत हुआ। कालही कर्त्ता और विकारकर्त्ता है, दूसरा कोई भी कारण नहीं है, विद्वान् पुरुष नाश, विनाश, ऐश्वर्य्य, सुख, दुःख, जन्म और मृत्यु लाभसे अत्यन्त हर्षित और दुःखित नहीं होते। हे वासव ! तुम मुझे जानते हो, मैंभी तुम्हें जानता हूं। हे निर्लज्ज ! इससे तुम कालक्रमसे उन्नत होकर क्यों मेरी निन्दा कर रहे हो, पहले समयमें मेरा जो पौरुष था, वह तुमसे छिपा नहीं है ; मैं युद्धमें पर्य्याप्त परिमाणसे जो बिक्रम प्रकाश करता था, वही उसमें प्रमाण है, हे शचिपति ! पहले समयमें आदित्य रुद्र, साध्य, वसु और मरुद्गण मेरे सम्मुखमें विशेष रीतिसे पराजित हुए थे। हे वासव ! तुम तो जानते हो, कि देवासुर संग्राममें इकट्ठे हुए सब देवता लोग मेरे बलविक्रमके प्रभावसे रणभूमि छोड़के भागे थे। मैंने ही बन और बनवासियोंके सहित सब

पर्व्वतोंको बार बार उठाया था और युद्धमें तुम्हारे सिरके ऊपर पत्थरके टूकड़ोंके सहित पहाड़ोंके शिखरोंको फेंका था; इस समय क्या करूं, काल अत्यन्त दुरतिक्रम्य है। क्या मैं बज्रके सहित तुम्हें मुष्टिक प्रहारसे नाश करनेका उत्साह नहीं करता, परन्तु यह विक्रम प्रकाश करनेका समय नहीं है, क्षमाकाल उपस्थित हुआ है। हे देवराज! इसही लिये तुम मेरे विषयमें क्षमा नहीं करते हो, तौभी मैं तुम्हारे विषयमें क्षमा करता हूं। हे वासव! काल परिणत होनेसे मैं कालानलसे घिरा और सदा कालपाससे बद्ध होरहा हूं, इसही कारण तुम मेरे समीप बड़ाई करते हो। यह वही सब लोकोंसे दुरतिक्रम्य श्यामवर्ण रौद्र पुरुष रसरीमें बन्धे हुए पशुकी भांति मुझे बान्धके निवास कर रहा है। लाभ, हानि, सुख, दुःख, काम, क्रोध, जन्म, मृत्यु, बध, बन्धन और मोक्ष आदि सब काल-वशसेही प्राप्त हुआ करते हैं। मैं कर्त्ता नहीं हूं, तुम भी कर्त्ता नहीं हो; जो सदा निग्रहा-निग्रहमें समर्थ है, वही कर्त्ता है, वही काल-रूपी कर्त्ता मुझे वृक्ष स्थित फलकी भांति पका रहा है। पुरुष जिन सब कर्म्मोंको करते हुए काल वशसे सुखयुक्त होता है, कालक्रमसे फिर उन्हीं कर्म्मोंको करके दुःखयुक्त हुआ करता है। हे वासव! समयज्ञ पुरुषका काल स्पर्श होनेपर शोक करना उचित नहीं है। इस ही लिये मैं शोक नहीं करता, शोक कभी दुःख निवारणका कारण नहीं है। शोक करनेसे जब वह शोक दुःख दूर नहीं कर सकता, तब जो शोक करता है, उसे भी कुछ सामर्थ्य नहीं है, इसही निमित्त मैं इस समय शोक नहीं करता। भगवान् सहस्रलोचन पाकशासन शतक्रतु बलिका ऐसा बचन सुनके क्रोधको रोकके यह बचन बोले, कि वज्रके सहित उद्यत बाहु और बरुणपाशको देखकर दूसरेकी बात तो दूर रहे, जिघांसु अन्तककी बुद्धि भी व्यथित हुआ करती है।—हे सत्यपराक्रमी! तुम्हारी तत्व दर्शिनी अचलबुद्धि व्यथित नहीं होती, इससे निश्चय बोध होता है, कि तुम इस समय धैर्य्यके सहारे दुःखी नहीं हो, इस लोकमें कौन शरीरधारी पुरुष जगत्को प्रस्थित देखकर विषय वा शरीरमें विश्वास करनेका उत्साह करेगा। गुह्यतम सततगामी अक्षर घोर कालाग्निमें पड़े हुए लोगोंको मैं भी इसही प्रकार अनित्य समझता हूं; इस सन्सारमें सूक्ष्म अथवा महत् परिपाक अवस्थामें पड़े हुए भूतोंके बीच काल जिसे स्पर्श करता है, उसे नहीं छोड़ता, स्वयं समर्थ अप्रमत्त सदा प्राणियोंको पकानेवाले अनिवृत्त कालके वशमें पड़े हुए पुरुष नहीं छूटते; अप्रमत्तकाल अनवहित देहधारियोंके निकट जाग्रत है; ऐसा कभी नहीं देखा गया कि किसी पुरुषने विशेष यत्न करके भी कालको अतिक्रम किया।

प्राचीन नित्य धर्म्म सब प्राणियोंके पक्षमें समान है, काल किसीको भी परिहार्य्य नहीं है, और इस कालका कभी व्यतिक्रम नहीं होता। जैसे ऋण देनेवाला व्याज संग्रह करता है, वैसेही काल दिन, रात, महीना, क्षण, कला, काष्ठा और लव, इन सबकोही पिण्डीकृत कर रहा है, जैसे नदीका वेग किनारेपर स्थित वृक्षोंको हरण करता है, वैसेही काल उपस्थित होकर "मैं आज यह करूंगा कल्ह इस प्रकार करूंगा," इस ही प्रकारकी आशामें फंसे हुए पुरुषोंको हरण किया करता है। "मैंने अभी इसे देखा था, यह किस प्रकार मरा?" कालसे ह्रियमाण मनुष्योंके सदा इस ही प्रकार विलाप सुनाई देते हैं। अर्थ, भोग, पद, और, ऐश्वर्य्य आदि सभी नष्ट हुआ करते हैं। काल आगमन करके जीवोंका जीवन हर ले जाता है। उन्नतिका विनिपात ही समाप्ति है; जो है, वह अभाव-स्वरूप है; सब विषय अनित्य और अनि-

स्थित हैं, इनका निश्चय करना ही अत्यन्त दुष्कर है। तुम्हारी वह तत्वदर्शिनी अचल बुद्धि व्यथित नहीं हुई, "मैं पहले ऐसा था" उसे तुम मनमें भी आलोचना नहीं करते। बलवान् काल इस लोकमें सबसे ज्येष्ठ और सबसे कनिष्ठ सभीको आक्रमण करके पका रहा है। पर जो आक्रान्त होता है, वह उसे नहीं समझ सकता। ईर्षा, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, स्पृहा, मोह मान आदिमें फंसे हुए लोग ही मोहित हुआ करते हैं। हे विरोचनपुत्र! तुम आत्मतत्त्वज्ञ, विद्वान्, ज्ञानवान् और तपोनिष्ठ होकर करतल स्थित आमलक फलकी भांति भली प्रकार कालको देखते हो; तुम सब शास्त्रोंके जाननेवाले होकर कालके चरित्र और तत्व जानते हो, तुम शुद्धबुद्धि और ज्ञानियोंके स्पृहणीय हो; मैं समझता हूं, तुमने ज्ञानबलसे इन सब लोकोंको देखा है; तुम सर्व्वसङ्गसे मुक्त होकर समय बिताते हुए किसी विषयमें भी आसक्त नहीं हुए हो, तुमने इन्द्रियोंको जीता है, इससे रजोगुण और तमोगुण तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकते। तुम प्रीतिरहित तथा दुःखहीन आत्माकी उपासना करते हो; तुम सब भूतोंके सुहृद वैरहीन और शान्तचित्त हुए हो, तुम्हें देखकर मेरी बुद्धि तुम्हारे विषयमें दयायुक्त हुई है, मैं ऐसे ज्ञानयुक्त पुरुषको बन्धनमें रखके मारनेकी अभिलाषा नहीं करता। अनृशंसताही परम धर्म है, तुम्हारे ऊपर मुझे ऐसी ही करुणा हुई है; इसलिये कालक्रमसे तुम इन सब वरुणपाशोंसे छूट जाओगे। हे महासुर! प्रजा समूहके अत्याचारसे तुम्हारा मङ्गल होवे; जब पुत्रवधू प्राचीन सासकी सेवा करनेमें नियुक्त करेंगी, पुत्र मोहवशसे पिताको कार्य्य करनेमें प्रेरणा करेगा, चाण्डाल लोग ब्राह्मणोंसे पैर धुलावेंगे, शूद्र लोग निर्भय होकर ब्राह्मणी भार्य्यासे सङ्गत होंगे, पुरुष विरुद्ध योनिमें बीज डालेंगे, कांस-पात्रके सङ्ग और कुत्सितपात्रके जरिये पूजाकी उपहारका व्यवहार करेंगे, चारों वर्णोंकी समस्त व्यवस्था जब मर्य्यादा-रहित होगी, उस समय क्रमसे तुम्हारे एक एक पाश छूटेंगे; मुझसे तुम्हें भय नहीं है, तुम समय प्रतिपालन करो; निरामय स्वस्थचित्त और दुःखरहित होके सुखी रहो।

गजराजवाहन भगवान् पाकशासनने बलिसे ऐसा कहके प्रस्थान किया, वह सब असुरोंको जीतके सुराधिप और अद्वितीय अधीश्वर होकर हर्षके सहित आनन्दित हुए। महर्षि लोग सहसा उपस्थित होकर उस सब चराचरोंके ईश्वर इन्द्रकी स्तुति करने लगे। हिमापह हव्यवाह अध्वरसे हव्य ढोनेमें प्रवृत्त हुए ईश्वर भी अर्पित अमृत धारण करने लगे। सवस्थित द्विजोत्तमोंसे प्रशंसित दीप्त तेजस्वी सुरराज उस समय मन्युहीन, प्रशान्तचित्त और हर्षित होकर निज स्थान सुरलोकमें जाके आनन्दित हुए।

२२७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! भावी उन्नति और अवनतिशील पुरुषोंके पूर्व्वलक्षण क्या हैं? आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! तुम्हारा मङ्गल हो; मनही मनुष्योंकी भावी उन्नति और अवनतिके लक्षणको प्रकाश किया करता है। हे युधिष्ठिर! पुराने लोग इस विषयमें लक्ष्मी और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, तुम उसे सुनो। ब्रह्माकी तरह अपरिमित और प्रदीप्त तेजस्वी शान्त पाप महातपस्वी नारदने महातप सर्गादिके प्रभावसे परावर दोनों लोगोंको देखते हुए ब्रह्म लोकनिवासी ऋषियोंके सङ्ग मिलकर इच्छानुसार तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया

था। किसी समय वह सवेरे ही उठके पवित्र जलको स्पर्श करनेकी इच्छा करके ध्रुवद्वारसे उत्पन्न गङ्गाके समीप जाके उसमें उतरे। इधर सम्वर वैरी वज्रधारी सहस्र नेत्रवाले पाकशासनने उस देवर्षिसेवित गङ्गाके तीरपर आगमन किया, वे दोनों स्थिर चित्तवाले गङ्गामें स्नान करके संक्षेपसे जप समाप्त करते हुए सूक्ष्म सुवर्णमय बालसे युक्त पलिनमें पहुंचे, वहां पहुंचके दोनों ही बैठकर पुण्यकर्म्म करनेवाले महर्षियों और देवर्षियोंकी कही हुई सब कथाकी आलोचना करने लगे। उन्होंने समाहित होकर बीते हुए पूर्व्ववृत्तान्तोंको कहते कहते किरणोंसे युक्त पूर्ण मण्डल सूर्य्यको उदय होते देखकर दोनोंने उठके उनकी उपासना की।

अनन्तर आकाशमें उदय होते हुए सूर्य्यके सम्मुख दूसरे सूर्य्यके समान उदात अर्च्चि समान प्रभायुक्त एक ज्योति देख पड़ी। हे भारत! वह ज्योति उन लोगोंके निकट आने लगी। सुपर्ण और सूर्य्यके स्वभावशाली उस ज्योतिने आकाशतलको अवलम्बन करके प्रभापुञ्जके सहारे अनुपम भावसे प्रकाशित होकर तीनों लोकोंको प्रकाशयुक्त किया, उन्होंने उस ज्योतिके बीच परम सुन्दरतायुक्त अप्सराओंकी अग्रगण्याकी भांति वृहद्भानुकी वृहती अंशुमती नामी किरणकी भांति तारा सदृश आभूषणधारिणी मुक्ताहारसे युक्त साक्षात् कमलाको कमलदलके बीच बैठी हुई देखा। अङ्गनाओंमें अग्रगण्य वह देवी विमानके अग्रभागसे उतरकर त्रिलोकनाथ इन्द्र और देवर्षि नारदके सम्मुख उपस्थित हुई देवराजने स्वयं देवर्षिके सहित देवीके समीप जाके आत्म समर्पण करके परम आदरके सहित उसकी पूजा की और पूजा करनेके अनन्तर वह सर्व्वविद् सुरराज देवीसे यह वचन कहने लगे।

इन्द्र बोले, हे चारुहासिनी तुम कौन हो; किस कार्य्यके लिये इस स्थानमें आई हो? हे सुभ्रु! हे शुभे! तुम कहांसे आई हो, और कहां जाओगी।

लक्ष्मी बोली, हे बलसूदन! पवित्र तीनों लोकके बीच स्थावर जङ्गम सब जीव मेरे सहित आत्मीयताकी अभिलाष करते हुए परम आदरके सहित मुझे यत्न करते हैं, मैं सब प्राणियोंके समृद्धिके निमित्त सूर्य्य किरणके सहारे फूले हुए कमलपुष्पके बीच उत्पन्न हुई हूं। मुझे सब कोई पद्मा, श्री और पद्ममालिनी कहा करते हैं। मैंही लक्ष्मी, मैंही सम्पत्ति, मैंही श्री मैंही श्रद्धा, मेधा, उन्नति, विजित और स्थिति हूं; मैंही धृति, सिद्धि और भूति हूं, मैं ही स्वाहा, स्वधा, सन्तति, नयति और स्मृति हूं। हे बलनाशन! मैं विजयी राजाओंकी सेनाके अगाड़ी और ध्वजा समूहमें धर्म्मशील मनुष्योंके राज्य, नगर और निवास स्थान तथा युद्धमें न हटनेवाले जय लक्षणयुक्त शूर राजाओंके निकट सदा निवास किया करती हूं। धर्म्ममें रत महामति, ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, विनयी और दानशील मनुष्योंके निकट मैं सर्व्वदा ही बास करती हूं। पहले मैंने सत्य-धर्म्ममें बद्ध होकर असुरोंके समीप वास किया था; अब उन लोगोंको विपरीत समझके तुम्हारे निकट वास करनेकी इच्छा करती हूं।

इन्द्र बोले, हे वरानने! दैत्य दानवोंके किस प्रकार चरित्रको देखकर तुम उनके निकट वास करती थी, और इस समय उन लोगोंको किस प्रकार देखकर उन्हें त्यागके इस स्थानमें आई हो?

लक्ष्मी बोली, जो लोग निज धर्म्मका अनुष्ठान करते धीरजसे विचलित नहीं होते और स्वर्गमार्गमें जानेके लिये अनुरक्त रहते हैं मैं उनके ऊपर प्रीति किया करता हूं। और जो लोग दान, अध्ययन, यज्ञ, देवता, पितर, गुरु और अतिथियोंकी पूजा करते हैं, मैं उनके निकट सदा निवास करती हूं। पहले दान-

योंके सब गृह सुमार्जित थे, वे लोग स्त्रियोंको वशमें रखते थे, अग्निमें आहुति देते थे। गुरु-सेवामें तत्पर रहते, इन्द्रियोंको जय करनेमें सावधान थे; वे लोग ब्रह्मनिष्ठ, सत्यवादी, श्रद्धावान् क्रोधको जीतनेवाले और दानशील थे, किसीकी असूया नहीं करते थे। स्त्री, पुत्र और सेवकोंका पालन पोषण करते थे, किसीके विषयमें ईर्षा करना नहीं जानते थे; डाहके वशमें होकर कभी आपसमें शत्रुता नहीं करते थे, वे लोग धीर थे, इसहीसे दूसरेकी समृद्धि देखकर कातर नहीं होते थे, वे सभी आर्य्य चरित सम्पन्न, दाता, सञ्चयी, दीनोंके विषयमें दयालु, अत्यन्त कृपा करनेवाले, सरलस्वभाव, दृढ़भक्त और जितेन्द्रिय थे। उनके सब सेवक और अमात्य सन्तुष्ट रहते थे, वे सब कृतज्ञ और प्रियभाषी थे; जिसका जैसा सम्मान था, उस-होके अनुसार उसे धन देते थे; सभी लज्जा-शील और यतव्रत थे। नियमित रीतिसे पर्व्वके समय स्नान करते थे; उत्तम रीतिसे अनुलिप्त और अलंकृत रहते थे, वे लोग उपवास और तपस्यामें रत, विश्वस्त तथा ब्रह्मवादी थे।

सूर्य्य इन लोगोंकी नींद भङ्ग होनेके पहले उदय नहीं होता था, ये लोग कोई भी सबेरेके समय शयन नहीं करते थे; रात्रिके समय दही और सत्तूका भोजन सदा परिवर्ज्जित करते थे। भोरमें घृत देखकर प्रयत होकर परब्रह्मके ध्यानमें रत रहते थे, मङ्गलमय वस्तुओंको देखते ब्राह्मणोंका सम्मान करनेमें विरक्त नहीं होते थे। जो लोग सदा धर्म्म-वादी, अप्रतिग्राही, आधीरातमें सोनेवाले थे और दिनमें शयन नहीं करते थे उन लोगोंके और दीन हीन, अनाथ आतुर, बूढ़े, निर्ब्बल, अबला और अनुमोदन करनेवाले पुरुषोंके विषयमें सदा दया और दान करते थे; त्रासित दुःखित, व्याकुल भयसे आर्त्त, व्याधित, कृश, हृतसर्व्वस्व और विपदमें पड़े हुए पुरुषोंको वे लोग सदा धीरज देते थे। वे लोग धर्म्मका अनुसरण करके चलते थे, आपसमें कोई किसीकी हिंसा नहीं करते थे; सब कार्य्योंमें ही अनुकूल थे; वृद्ध और गुरुजनोंकी सेवा तथा देवता, पितर और अतिथियोंकी यथा उचित पूजा करते थे, वे लोग सदा सत्यनिष्ठ और तपमें रत रहके देवता पितर और अति-थियोंसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेमें यत्न-वान रहते थे। वे लोग अकेले ही उत्तम सिद्ध अन्न भोजन नहीं करते थे, परस्त्रीके शरीरको छूनेमें पाप समझते थे, अपनी भांति सब जीवोंमें दया करते थे; अनावृत्त स्थानमें पूर्व्व दिनमें पशुयोनि अथवा दूसरी कोई विरुद्ध योनिमें इन्द्रिय स्खलन करनेकी कभी इच्छा नहीं करते थे। हे सुरराज! सदा दान, दक्षता, सरलता, उत्साह, अहंकार हीनता, परम सुहृदता, क्षमा, सत्य, दान, तपस्या, शौच, करुणा, निठुरतारहित वचन और मित्रोंके विषयमें अद्रोह आदि जो सब गुण हैं, उन लोगोंमें वे सभी थे। निद्रा, तन्द्रा, अप्रीति, असूया, अर्थानवेक्षिता, अरति, विषाद और स्पृहा उन लोगोंके निकट प्रवेश नहीं कर सकती थी। सृष्टि प्रारम्भ होनेपर प्रतियुगमें ही मैं इसी प्रकार गुणयुक्त दानवोंके स्थानमें बास करती थी, अनन्तर कालक्रमसे गुणोंमें विपर्य्यय होनेके कारण मैंने उन लोगोंको काम क्रोधके वशमें देखा, धर्म्मने उन लोगोंको परित्याग किया। वे लोग सामाजिक साधु वृद्धोंके वचनको लेकर आन्दोलन करने लगे; अपकृष्ट पुरुष प्राचीन पुरुषोंका उपहास और असूया करनेमें प्रवृत्त हुए; बैठे हुए युवा पुरु-षोंने पहलेकी भांति अभ्यागत साधु और वृद्धोंको देखकर उठके प्रणामसे उनका सम्मान नहीं किया। पिताके वर्त्तमान रहते पुत्र प्रभुता करनेमें प्रवृत्त हुए। जिन लोगोंने कभी सेवकका कार्य्य स्वीकार नहीं किया था, वे भी

निर्लज्ज होकर भृत्यभाव धारण करके विख्यात हुए। जो अधर्म्म पथसे निन्दित कर्म्मके जरिये बहुत सा धन पाते हैं, उन्हीं लोगोंकी भांति दानवोंको अर्थोपार्ज्जनमें स्पृहा होने लगी। रात्रिके समय वे लोग ऊंचे स्वरसे निज नाम सुनाकर प्रणाम करनेमें प्रवृत्त हुए, रात्रिमें अग्नि मन्दभावसे जलने लगी। पुत्र पिताके ऊपर और स्त्रियोंने पतिके ऊपर अत्याचार करना आरम्भ किया। उन लोगोंने बूढ़े माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंके गौरवके निमित्त उन्हें प्रणाम और कुमारोंका प्रतिपालन नहीं किया। देवता, पितर, अतिथि और गुरुजनोंकी पूजा तथा भिक्षा वा भूतोंको बलि न देकर स्वयं अन्न भोजन करने लगे। उनके रसोइयोंने पवित्रताका अनुरोध नहीं किया। वाक्य, मन और कर्म्मसे उन लोगोंका भक्ष्य विषय अवारित हुआ, उन लोगोंके फैले हुए धान्यको कौवे और चूहे खाने लगे। जल पीनेका कलश बिना ढांका ही रहने लगा, वे लोग जूठे रहके घृत छूने लगे कुदाल पात्र, पेटिका, कांसेके पात्र आदि गृहकी सामग्रियोंके इधर उधर पड़ी रहनेपर भी दानवोंकी गृहणियोंने उन्हें न देखा। प्राकार और गृहोंके टूटनेपर भी दानव लोग उसके संस्कार करनेमें उद्यत न हुए; पशुओंको बन्धे रखके तृण जल आदिसे उनका आदर नहीं किया; बालकोंके देखते रहनेपर भी उनका अनादर करके स्वयं भक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करने लगे; वे लोग सेवकोंको बिना तृप्त किये ही अपने वास्ते पायस, कृशर, मांस, अपूप और पूरी आदि भोजनकी वस्तुओंको पाक कराने लगे और वृथा मांस भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुए। सभी सूर्य्यके उदय होनेपर सबेरे सोते रहते थे, उन लोगोंके प्रति गृहमें रात दिन कलह होने लगा अनार्य्य पुरुषोंने बैठे हुए आर्य्य पुरुषोंका सम्मान न किया, विधर्म्मी लोगोंने आश्रमवासी लोगोंसे द्वेष करना आरम्भ किया; वर्णसङ्करोंकी बढ़ती हुई; पवित्र आचार लुप्त होगया, जो सब ब्राह्मण वेदवित् और जो वेदके विषयमें मूर्ख थे, उनके बहुमान और अवमानके विषयमें कुछ भी विशेषता न रही; परिचारिका समूह हार, आभूषण और वेशविन्यास है, वा गया है,—उसे ही देखने लगीं। उन्होंने दुर्ज्जनोंके आचरित अनुष्ठानका अनुकरण किया।

स्त्रियां पुरुषका वेष बनाकर और पुरुष स्त्रियोंका वेष धरके क्रीड़ा, रति तथा विहारके समय अत्यन्त आनन्दमें डूब गये। पिता पितामहोंने पहले देने योग्य लोगोंको जो कुछ दे गये थे, नास्तिकताके कारण भ्राता लोग उसे अनुवर्त्तन करनेमें असम्मत होने लगे; किसी तरहका अर्थ संशय उपस्थित होनेपर मित्र यदि मित्रके निकट प्रार्थना करे तो केशके नोक समान भी स्वार्थ रहनेपर भी मित्र लोग मित्रोंके धनको नष्ट करनेमें प्रवृत्त हुए। श्रेष्ठ वर्णोंके बीच बहुतोंने परस्व ग्रहण करनेकी अभिलाषा की; सभी विपरीत व्यवहार करते हुए दीख पड़े, शूद्र लोग तपस्या करने लगे; व्रतहीन पुरुषोंने पढ़ना आरम्भ किया, दूसरे लोग वृथा व्रत करनेमें प्रवृत्त हुए, चेलोंने गुरुकी सेवा न की; कोई गुरु शिष्यके सखा हुए; माता पिता श्रान्त और उत्सवहीन होने लगे; बूढ़े पिता माताकी प्रभुता न रही, वे लोग पुत्रोंके समीप अन्नके निमित्त प्रार्थना करने लगे, समुद्रके समान गम्भीरतासे युक्त वेद जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष कृषिकार्य्य आदि जीवनके उपायमें आसक्त हुए; मूर्ख लोग श्राद्धका अन्न भोजन करने लगे। प्रतिदिन भोरके समय चेलोंको गुरुके निकट स्वास्थ्य पूछनेके लिये दूत भेजना तो दूर रहे, गुरु लोग स्वयं ही शिष्योंके निकट स्वास्थ पूछनेके निमित्त जाने लगे; सास और ससुरके सम्मुखमें ही बहू दास दासियोंको शासन करनेमें प्रवृत्त हुई

और स्वामीको आवाहन करके तिरस्कार करती हुई शासन करने लगी; पिता यत्नपूर्व्वक पुत्रोंके मनकी रक्षा करने लगी। और अत्यन्त दुःखसे निवास करते हुए यदि पुत्र क्रुद्ध हो, इसी भयसे समय बितानेमें प्रवृत्त हुए; अग्निदाह, चोर अथवा राजपुरुषोंके जरिये किसीका धन हरे जानेपर, उसके मित्र लोग ईर्षके कारण उपहास करने लगे; वे लोग सब कोई कृतघ्न, नास्तिक पापाचारी गुरुस्त्री हरनेवाले अभक्ष्यके भक्षणमें अनुरक्त मर्य्यादा रहित और निर्लज्ज हुए। हे देवेन्द्र! कालक्रमसे दानव लोग इस ही प्रकार आचरण करनेमें प्रवृत्त हुए तब मैं उनके निकट निवास न कर सकी; यही मेरे मनमें निश्चय है। हे शचीनाथ! मैं स्वयं तुम्हारे निकट आई हूं; तुम मुझे अभिनन्दित करो। हे सुरेश्वर! तुम्हारे सत्कार करनेसे देवता लोग मुझे ग्रहण करनेके लिये अगाड़ी दौड़ेंगे। हे पाक शासन! मैं जिस स्थानमें निवास करती हूं, वहां मेरी प्रियसुभसे भी विशिष्ट और मदवलम्बना जया आदि आठों देवी आठ प्रकारके रूपसे वास करनेको अभिलाष करती हैं, आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजया, उन्नति, क्षमा और जया, ये आठों देवी अग्रगामिनी होकर वहां निवास किया करती हैं, इन सब देवियोंके सहित मैं असुरोंको परित्याग करके तुम्हारे राज्यमें आई हूं, अब धर्म्मनिष्ठ और पवित्रचित्तवाले देवताओंके निकट निवास करूंगी। कमलमें वास करनेवाली देवीने जब ऐसा वचन कहा, तब देवर्षि नारद और वृत्रासुरके नाशक इन्द्र प्रीतिके वशमें होकर अत्यन्त आनन्दित हुए। अनन्तर अनल वन्धु सब इन्द्रियोंकी सुखदायक सुखस्पर्श सुगन्धयुक्त वायु देवताओंके स्थानमें बहने लगा। लक्ष्मीके सहित बैठे हुए भगवान् इन्द्रके दर्शन करनेकी अभिलाषा करके देवता लोग प्रायः पवित्र और प्रार्थित स्थानमें निवास करने लगे।

अनन्तर श्रीसम्पन्न सहस्रनेत्र सुरेश्वर प्रिय सुहृत् महर्षिके सहित हरे रङ्गवाले घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठ स्वर्ग लोकमें पहुंचके सत्कृत होकर सुरसमाजमें उपस्थित हुए। फिर महर्षियोंसे युक्त नारद और देवराजने कमला देवीके हृदयगत अभिप्रायको मनहीमन विचारते हुए देवताओंके पौरुषको देखकर लक्ष्मीदेवीसे वहां पर सुखपूर्व्वक आगमनका विषय पूछा। अनन्तर दीप्तिमान् धूलोक अमृतकी वर्षा करनेमें प्रवृत्त हुआ स्वयम्भू पितामहके स्थानमें बिना बजाये ही नगाड़े बजने लगे; सब दिशा प्रसन्न और प्रकाशित हुईं। देवराज ऋतुके अनुसार शस्योंके ऊपर जल बरसाने लगे, कोई पुरुष भी धर्म्म मार्गसे विचलित नहीं हुए; सुरलोकवासियोंकी विजय होनेपर अनेक रत्नाकर-भूषित भूमि मङ्गलध्वनि करने लगी; यज्ञादि कर्म्मोंसे रमणीय सुन्दर मनस्वी मनुष्य पुण्यवान लोगोंके पवित्र मार्गमें निवास करते हुए सुशोभित हुए; मनुष्य, देवता, किन्नर, यक्ष और राक्षस लोग समृद्धियुक्त तथा प्रशस्तचित्त हुए; फूलफल वायुके झकोरसे भी टूटकर कभी वृक्षोंसे न गिरे; रसप्रद गौवें कामदुग्ध हुईं। किसीके मुखसे दारुण वचन न निकला। जो लोग विप्र समाजमें उपस्थित होकर सर्व्व कामप्रद इन्द्र आदि देवताओंके सहारे भगवती लक्ष्मीदेवीके इस सपर्य्याय विषयका पाठ करते हैं, वे लोग समृद्धि युक्त होकर सम्पत्ति लाभ करते हैं। हे कुरुवर! तुमने जो इस लोकमें उन्नति और अवनतिका विषय पूछा था, मैंने उसका परम निदर्शन वर्णन किया, अब तुम परीक्षा करके तत्वविषय अवलम्बन करो।

२२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुष कैसे चरित्र, किस प्रकारके आचार कौनसी विद्या

और वैसे आचारसे युक्त होनेपर प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्यधाम प्राप्त करता है।

भीष्म बोले, जो लोग मोक्ष धर्म्ममें सदा रत अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हैं वेही प्रकृतिसे भी श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते हैं। हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें असितदेवल और जैगीषव्यके इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। असित देवल, सब धर्म्मोंके जाननेवाले, महाप्राज्ञ, क्रोध हर्षसे रहित जैगीषव्यसे कहने लगे।

देवल बोले, हे महर्षि! तुम्हारी वन्दना करनेपर भी तुम प्रसन्न नहीं होते और निन्दा करनेपर भी क्रोध नहीं करते, यह तुम्हारी किस प्रकारकी बुद्धि है। ऐसी बुद्धि तुमने कहांसे पाई। तुम्हारी इस बुद्धिका परम अवलम्बन क्या है?

भीष्म बोले, महातपस्वी जैगीषव्य देवलका ऐसा वचन सुनके सन्देहरहित प्रचुर अर्थ और पद संयुक्त पवित्र तथा महत् वचन कहने लगे।

जैगीषव्य बोले, हे ऋषिसत्तम! पुण्यकर्म्म करनेवाले मनुष्योंका जो परम अवलम्ब है, मैं उस अत्यन्त महती शान्ति विषयका तुमसे कहता हूं सुनो। हे देवल! मनीषि लोग स्तुतिनिन्दामें समज्ञान किया करते हैं। जो लोग उनकी प्रशंसा वा निन्दा करते हैं, वे उनके भी आचार व्यवहारोंका गोपन कर रखते हैं, वे लोग पूछनेपर भी अहित विषयमें हितवादी पुरुषको कुछ नहीं कहते और जो लोग उनके ऊपर आघात करते हैं, वे उनसे पलटा लेनेकी इच्छा नहीं करते। वे लोग अप्राप्त विषयोंके लिये शोक न करके समयपर प्राप्त हुए विषयको भोग किया करते हैं; बीते हुए विषयोंके निमित्त शोक तथा उन्हें स्मरण नहीं करते। हे देवल! व्रत करनेवाले, शक्तिमान मनीषि लोग इच्छानुसार प्रयोजन विषयमें सत्कार लाभ करनेपर शक्तिके अनुसार उसे साधन किया करते हैं। जिन्होंने क्रोधको जीता तथा जिनका ज्ञान परिणत हुआ, वे जितेन्द्रिय महाप्राज्ञ मनुष्य मनवचन और कर्म्मसे किसीके निकट कुछ अपराध नहीं करते। वे ईर्षारहित होते हैं, इसीसे कभी आपसमें हिंसा करनेमें रत नहीं होते। धीर लोग दूसरेकी समृद्धि देखकर कभी डाह नहीं करते। जो लोग दूसरेकी निन्दा तथा किसीकी प्रशंसा नहीं करते, वे आत्मनिन्दा वा प्रशंसासे विकृत नहीं होते, जो लोग सब तरहसे प्रशान्त और सब भूतोंके हितमें अनुरक्त रहते हैं, वे क्रोध, हर्ष वा किसीके समीप अपराध नहीं करते। जिनका कोई बान्धव नहीं है और जो दूसरेके बन्धु नहीं हैं, उनका कोई भी शत्रु नहीं है और वे भी किसीके शत्रु नहीं हैं। ऐसे मनुष्य हृदयकी ग्रन्थि छुड़ाके सुखपूर्व्वक विचरते हैं। जो मनुष्य इसही प्रकार व्यवहार करते हैं, वे सदा सुखसे जीवन बितानेमें समर्थ होते हैं। हे द्विजोत्तम! जो सब धर्म्मज्ञ लोग धर्म्ममार्गका अनुरोध करते हैं, वेही आनन्दित होते हैं और जो लोग धर्म्ममार्गसे च्युत हुए हैं वे उद्वेग लाभ किया करते हैं। मैंने उस ही धर्म्मपथका आसरा किया है, इससे किस लिये किसीकी असूया करूंगा। कोई मेरी निन्दा करे अथवा प्रशंसा ही करे, तो भी मैं किस लिये हर्षित होऊंगा। मनुष्य लोग जिसकी अभिलाष करें, धर्म्मसे उसेही प्राप्त करनेमें समर्थ होवें; निन्दा वा प्रशंसासे मेरी ह्रास वा वृद्धि न होगी। तत्त्ववित् बुद्धिमान् मनुष्य अवमानको अमृत समझके तृप्त हुआ करते हैं और सम्मानको विष समझके उद्विग्न होते हैं। अवज्ञात लोग सब दोषोंसे विमुक्त रहके इस लोक परलोकमें सुखसे सोते हैं और जो अवमान करता है, वह विनष्ट होता है। जो कोई मनीषि पुरुष परम गतिकी इच्छा करें, वे इस ही व्रतको संग्रह करके अनायासही हवि-

युक्त होते हैं। जितेन्द्रिय पुरुष सब तरहसे समस्त सत्व समाप्त करके प्रकृतिसे परम श्रेष्ठ नित्य ब्रह्मधाम लाभ किया करते हैं, जो लोग परम पद पाते हैं, देवता, गन्धर्व्व, पिशाच और राक्षस लोग उनके अनुसरण करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! भूलोकमें सब जीवोंके अभिनन्दन करनेवाले सब लोगोंका प्यारा और सब गुणोंसे युक्त मनुष्य कौन है?

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार नारदके विषयमें उग्रसेन और कृष्णकी जो वार्त्तालाप हुई थी, इस समय उसे वर्णन करता हूं सुनो। उग्रसेनने कृष्णसे कहा, कि नारदका नाम लेनेमें लोग संकल्प किया करते हैं, बोध होता है वे अवश्य ही गुणयुक्त होंगे इससे मैं पूछता हूं, उनमें जो सब गुण थे, वह सब तुम मेरे समीप बयान करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे कुकुरवंशावतंस नरनाथ! नारदके जो सब उत्तम गुण मुझे विदित हैं, उसे संक्षेपमें कहनेकी इच्छा करता हूं, सुनिये। चरित्रके निमित्त उन्हें देहतापन अहङ्कार नहीं है; जैसा ज्ञान है, वैसा ही चरित्र है; इस ही लिये वे सब जगह पूजित होते हैं। नारदको अनुराग क्रोध और भय नहीं है; वह शूर हैं, और आलसी नहीं हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। नारद अत्यन्त ही उपास्य हैं; काम वा लोभके वशमें होकर उनका वचन व्यतिक्रम नहीं होता, इस ही निमित्त वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अध्यात्म विधिके तत्वज्ञ क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सुशील, सुखशायी, सुभोजी, आदरयुक्त, पवित्र उत्तम वचन कहनेवाले और ईर्षारहित हैं, इस ही लिये सब ठौर पूजित होते हैं। वह सबके विषयमें कल्याणकी इच्छा किया करते हैं, उनमें तनिक भी पाप नहीं है, दूसरेके अनर्थसे वह प्रसन्न नहीं होते, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह वेद सुनके आख्यानके सहारे सब विषयोंके जय करनेकी अभिलाष करते हैं, तितिक्षु कहके कोई उनकी अवज्ञा नहीं करता, इस ही कारण वह सर्व्वत्र पूजित होते हैं। तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनय, जन्म और तपस्यामें वह सबसे वृद्ध हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। समता निबन्धनसे कोई उनका प्रिय अथवा किसी प्रकार कोई अप्रिय नहीं है। वह मनके अनुकूल वचन कहा करते हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अनेक शास्त्रोंको सुनकर वा विचित्र कथाको जानके पण्डित हुए हैं; बल निरालसी, शठताहीन, अदीन, अक्रोधी और लोभ रहित हैं, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं। विषय धन और कामके लिये पहले कभी उनका विग्रह नहीं हुआ, उनके सब दोष नष्ट हुए हैं, इस होसे वह सब जगह पूजित होते हैं। वह दृढ़ भक्त, अनिन्द्य स्वभाव, शास्त्रज्ञ, अनृशंस, संमोहहीन और दोष रहित हैं, इस हो लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह सब विषयोंमें अनासक्त रहनेपर भी आसक्तकी भांति दीखते हैं, बहुत समय तक उनका संशय नहीं रहता और वह अत्यन्त ही वक्ता हैं, इस हो निमित्त सर्व्वत्र पूजित होते हैं। काम भोगके लिये उन्हें कामना नहीं है, कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते वह ईर्षारहित और कोमल वचन कहनेवाले हैं इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह सब लोगोंकी विविध चित्तवृत्तिको देखते हैं, तौभी किसीकी कुत्सा नहीं करते और सृष्टि विषयक ज्ञानमें अत्यन्त निपुण हैं, इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह किसी शास्त्रके विषयमें असूया

नहीं करते, निज नीतिको उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं, समयको निष्फल नहीं करते और चित्तको वशीभूत कर रखा है, इस ही लिये सब जगह पूजित होते हैं। वह समाधि विषयमें श्रम किया करते हैं, बुद्धिको शुद्ध किया है, समाधि करके भी तृप्त नहीं होते, सदा उद्यत और अप्रमत्त रहते हैं, इसही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। वह अनन्तवप योगयुक्त, परम कल्याणमें नियुक्त और दूसरेके गुप्त वचनको प्रकाश नहीं करते, इसहीसे सर्व्वत्र पूजित होते हैं, वह अर्थ लाभ होनेपर हर्षित और अर्थ हानिसे दुःखित नहीं होते, वह स्थिर बुद्धि और अनासक्त चित्त हैं; इस ही लिये सर्व्वत्र पूजित होते हैं। उस सर्व्वगुणयुक्त अत्यन्त निपुण, पवित्र, अनामय, कालज्ञ और प्रियज्ञ महर्षिसे प्रीति करनेमें कौन पराङ्मुख होगा।

२३० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कौरव! सब जीवोंकी उत्पत्ति वा लयका विषय और ध्यान, कर्म्मकाल तथा युगयुगमें किस प्रकार परमायु होती है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। समस्त लोकतत्व, जीवोंकी अगति और गति तथा यह सृष्टि और मृत्यु कहांसे हुआ करती है। हे साधुवर! यदि हमारे ऊपर आपकी कृपा हो, तो यही विषय जो कि आपसे पूछता हूं, उसे हमारे निकट वर्णन करिये। पहिले आपके कहे हुए अत्यन्त श्रेष्ठ भृगु और विप्रर्षि भरद्वाजकी कथा सुनके मेरी बुद्धि अत्यन्त श्रेष्ठ परम धर्म्मिष्ठ और दिव्य संस्थाननिष्ठ हुई है, इसलिये फिर आपके समीप पूछता हूं; आप उस ही विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें व्यासदेवने प्रश्न करनेवाले निजपुत्रसे जो कुछ कहा था, वह प्राचीन इतिहास कहता हूं सुनो। वैयासकि शुकदेव निखिल वेद और साङ्ग उपनिषदोंको पढ़के धर्म्मकी निपुणता दर्शन निबन्धनसे नैष्ठिक कर्म्मकी कामना करते हुए धर्म्मात्माओंके संशयको दूर करनेवाले अपने पिता कृष्ण द्वैपायनसे यह सन्देह विषय पूछा।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! भूतोंके कालनिष्ठा ज्ञानसे युक्त कर्त्ता कौन है, और ब्राह्मणका कर्त्तव्य क्या है? उसे आप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, अतीत और अनागत विषयोंके जाननेवाले ब्रह्मज्ञ तथा सर्व्वधर्म्मज्ञ पिता व्यासदेव उस प्रश्न करनेवाले पुत्रसे वह सब वृत्तान्त कहने लगे।

व्यासदेव बोले, अनादि अनन्त जन्म रहित दीप्तिमान् नित्य, अजर, अव्यय तर्कके अगोचर अविज्ञेय ब्रह्म सृष्टिके पहिले वर्त्तमान था; कलाकाष्ठा आदि व्यञ्जक सूर्य्य आदि जो कुछ व्यक्त पदार्थ हैं, वे सभी मनोमय हैं; इसलिये वक्ष्यमाण रूपसे प्रकट कालको ब्रह्म स्वरूपसे मालूम करना उचित है। पन्द्रह निमेषका एक काष्ठा होता है, तीस काष्ठाको एक कला कहते हैं, तीस कला और कलाके दशवें भाग तीन काष्ठाका एक मुहूर्त्त हुआ करता है, तीस मुहूर्त्तकी एक दिन और राति होती है; मुनि लोग इस ही प्रकार गिनती किया करते हैं, तीस दिनरातका एक महीना और बारह महीनोंका एक वर्ष कहा जाता है। सांख्य जाननेवाले पुरुष कहते हैं, दो अयनका एक वर्ष होता है। अयन दो प्रकारके हैं, दक्षिणायन और उत्तरायण। सूर्य्यदेव मनुष्य लोक सम्बन्धीय रात दिनका विभाग करते हैं जीवोंकी निद्राके लिये रात और कार्य्य करनेके वास्ते दिन हुआ करता है। मनुष्य लोकका एक महीना पितरोंका एक दिन रात है, उसके बीच यह विभाग है, कि कृष्ण पक्ष उन लोगोंके कर्म्म चेष्टाके निमित्त दिन रूपसे विहित है, और

शुक्लपक्ष रूपके निमित्त रात्रिरूपसे कहा गया है। मनुष्योंका एक बर्ष देवताओंका एक दिन रात है। इसका ऐसा विभाग है, कि उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रिरूपसे निरूपित है। जीव लोकके दिन रातका विषय जो बर्णन किया है, उसके अनुसार क्रमसे जो देव लोकके दिन रात्रि कही गई, उस देव परिमाणसे दो हजार बर्ष पर ब्रह्माकी एक अहो रात होती है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, इन चारोंयुगोंसे पृथक् पृथक् बर्षोंकी गिनती हुआ करती है। देवपरिमाणसे चार हजार बर्ष सतयुगका परिमाण है और उसही परिमाणसे चार सौ बर्षको सतयुगकी सन्ध्या होती है तथा चार सौ बर्ष तक सन्ध्यांश काल है। इस ही प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशके सहित इतर युग सब एक एक चरणहीन हैं, अर्थात् त्रेतायुग देव परिमाणसे तीन हजार बर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येकका परिमाण तीन सौ बर्षका है। द्वापर देवपरिमाणसे दो हजार बर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक दो सौ बर्षके हैं। कलियुग देव परिमाणसे एक हजार बर्षका है, उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश प्रत्येक एक सौ बर्षके निरूपित हुए हैं। ये चारोंयुग शाश्वत सनातन लोकोंको धारण कर रहे हैं, ब्रह्मवित् पुरुष इस कालको ही नित्य ब्रह्म कहके जानते हैं। सतयुगमें सब धर्म्म और सत्य आचरण था, अधर्म्मसे कोई विषय प्राप्त नहीं होते थे; त्रेता आदि युगोंमें क्रमसे धर्म्म एक एक चरणहीन हुआ है; चोरी झूठ और शठतासे अधर्म्मकी बृद्धि हुई है, सतयुगमें सब पुरुष ही चार सौ बर्षकी आयुसेयुक्त और रोगरहित रहके सब मनोरथोंको सिद्ध करते थे। त्रेतायुगोंसे क्रमसे मनुष्योंकी आयु एक एक चरण घटती जाती है। मैंने सुना है, प्रति युगमें वेदवाक्य और उसके फल, आशी तथा आयु क्रमसे ह्रस्व होती जाती है। सतयुगमें मनुष्योंके धर्म्म स्वतन्त्र थे, त्रेता और द्वापरमें भिन्न भिन्न धर्म्म हुए; युग ह्रासके अनुसार कलियुगमें भी मनुष्योंके धर्म्म पृथक् रूपसे निर्दिष्ट हुए हैं। सतयुगमें तपस्या ही मनुष्योंका परम धर्म्म था, त्रेतामें ज्ञान ही श्रेष्ठ था, द्वापरमें यज्ञ कर्म्म और कलियुगमें केवल दानही सबसे श्रेष्ठ धर्म्मरूपसे बर्णित हुआ है। कवि लोग इस देवपरिमित बारह हजार बर्षको युग कहा करते हैं, इस ही सहस्र बर्षके परिमाणसे एक ब्राह्म दिन होता है, ब्राह्मरात्रिका परिमाण भी इतना ही है। जगत्के ईश्वर ब्रह्मा उस दिवसके अन्तमें योगनिद्रा अवलम्बन करके सोते हैं, रात्रि बीतनेपर जाग्रत हुआ करते हैं। जो लोग सहस्र युग पर्य्यन्त ब्रह्माका एक दिन और सहस्रयुगके अन्तभागको उनकी रात्रि जानते हैं, वेही अहोरात्रिके जाननेवाले हैं। निद्राके अनन्तर सावधान होनेपर ब्रह्मा निर्व्विकार स्वरूपको मायासे बिकारयुक्त करते हैं, फिर महत् भूतोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होते हैं उससे ही व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। तेजोमय महत्तत्व स्वरूप ब्रह्म ही जगतका बीज है, उससे ही यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है; द्वयाभ्यन्तररहित उस एक मात्र भूतसे स्थावर जङ्गम सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा दिनके प्रारम्भमें बिबुद्ध होकर अविद्याके सहारे जगत्की सृष्टि करते हैं, सृष्टिकी आदिमें महत्तत्व और व्यक्तात्मक मन उत्पन्न होता है। ईश्वर पूर्व्वसर्गके अन्तमें सात मानस पदार्थोंको लय करके उत्तरसर्गके प्रारम्भमें उसकी सृष्टि किया करता है। दूरग और बहुधागामी प्रार्थना तथा संशयात्मक मन सिसृक्षाके जरिये प्रेरित होकर सृष्टिको अनेक रूपसे किया करता है। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनसे आकाश उत्पन्न होता है, उसका गुण शब्द है। आकाशसे सर्व्वगन्धको ढोनेवाला पवित्र और बलवान्

वायु उत्पन्न होता है, उसका गुण स्पर्श है। वायुसे भास्वर रोचिष्णु सफेद वर्णकी ज्योति उत्पन्न होती है, उसका गुण रूप है; अग्निसे रसात्मक जल उत्पन्न हुआ करता है, जलसे भूमि उत्पन्न होती है, उसका गुण गन्ध है, ये सब परम सृष्टि हैं। उत्तरोत्तर भूतोंमें पूर्व्वके भूतोंके सब गुण प्राप्त होते हैं। इन सब भूतोंके बीच जो भूत जबतक जिस प्रकार वर्त्तमान रहता है; उसका गुण भी तबतक उस ही प्रकार उसमें निवास करता है। कोई पुरुष जलके बीच गन्ध सूंघके मूढ़ताके कारण यदि उसे जलका ही गन्ध कहके माने, तो वह यथार्थमें उसका नहीं है, गन्ध पृथ्वीका गुण है; वायु और जल आदिमें वह आगन्तुक द्रव्य सम्पर्कसे मालूम हुआ करता है। ये महावीर्यशाली सात प्रकारके व्यापक पदार्थ अर्थात् महत्तत्व, आकाश तत्व और आकाशादि अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंके परस्पर न मिलनेसे प्रजाओंकी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होसकती। ये परस्परके सहारेसे मिलित होकर शरीर स्वरूप अवलम्बको प्राप्त होके पुरुष रूपसे कहे जाते हैं। पञ्चभूत, मन और दशों इन्द्रिय ये सोलह पदार्थ शरीरका आसरा करके एकत्रित और मूर्त्तिमान हुआ करते हैं; महत्तत्व आदि सब भूत भोगनेसे शेष रहे हुए कर्म्मके सहित उस सूक्ष्म शरीरसे प्रविष्ट होते हैं। भूतोंका आदि कर्त्ता निज उपाधिभूत मायाके एकादश भूत समस्त भूतोंको सङ्कलन करके तपस्याचरणके निमित्त उसमें ही प्रविष्ट हुआ करता है, पण्डित लोग उस ही आदि कर्त्ताको प्रजापति कहते हैं। वही शरीरान्तर वर्त्ती प्रजापति स्थावर जङ्गम जीवोंको उत्पन्न करता है। शरीरमें प्रवेश करनेके अनन्तर वह प्रजापति देवर्षि, पितर और मनुष्य लोकोंकी सृष्टि करनेमें तत्पर होता है; क्रम क्रमसे नदी, समुद्र, पहाड़, दिशा, बनस्पति, मनुष्य, किन्नर, निशाचर, पशुपक्षी, हरिन, सर्प और आकाश आदि नित्य वस्तु तथा घट पट आदि अनित्य वस्तुओंसे युक्त स्थावर जङ्गम पदार्थोंकी सृष्टि करता है। वे सब पहिले सृष्टिके समयमें जिन सब कर्म्मोंको प्राप्त हुए थे, फिर उत्पन्न होके उन्हीं कर्म्मोंको प्राप्त करते हैं। मनुष्य, किन्नर, निशाचर आदि जीवोंने विधाताके जरिये प्रकट होके हिंसक, अहिंसक कोमल, कठोर, धर्म्म, अधर्म्म, सत्य और मिथ्या आदि गुणोंको अवलम्बन किया अर्थात् पहली सृष्टि समयमें जिनको जिन विषयोंमें अभिलाषा थी, इस जन्ममें भी उनको उस ही विषयमें इच्छा हुई, जगदिन्द्रजाल फैलानेवाले विधाता ही वियदादि सब महाभूतों, रूप आदि इन्द्रियों और इच्छाकृति मूर्त्तियों नानात्व अर्थात् शुक्ति रजतकी भांति प्रति पुरुषमें विभिन्नता, तथा जीवोंके विषय विशेषमें विनियोग अर्थात् भोक्तृभाव सम्बन्ध बन्धन किया। कोई कोई मनुष्य कहा करते हैं, सब कर्म्मोंमें ही पुरुषकी सामर्थ है; इसलिये कर्म्म ही प्रधान है। दूसरे ब्राह्मण लोग कहा करते हैं सूर्य्य आदि सब ग्रह ही सत् असत् फलके देनेवाले हैं; इसलिये दैव ही प्रधान है। स्वभाव वादी पुरुष स्वभावको ही सबसे प्रधान कहा करते हैं। दूसरे मतवाले मनुष्य कहते हैं, दैवकर्म्म स्वभावके अनुग्रहीत होके फल देनेमें प्रवृत्त हुआ करता है, पौरुष कर्म्म और दैव, ये पृथक् नहीं हैं। ये तीनों ही मिलके फल उत्पन्न करते हैं, इनमेंसे प्रत्येकको प्रधानता नहीं है। जीवोंके अनेकत्व विषयमें क्या कारण है; जो इसे आर्हत-मतावलम्बी नास्तिकोंने विशेष रूपसे वर्णन नहीं किया, इसे निर्व्वाचन करनेमें भी उन लोगोंकी सामर्थ नहीं है, यह विषय अनिर्व्वचनीय है, ऐसा भी नहीं कह सकते। कर्म्म और दैव इन दोनोंके बीच अन्यन्तरका कारणत्व सुवच वा दुर्व्वच हो, दोनों ही इकट्ठे होनेपर कारण होसकते हैं,

ऐसी आशंका करके उक्त दोनोंको ही वे लोग कारण नहीं कहते और उन दोनोंके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण है, वह भी नहीं कह सकते। तप्त शिलारोहणादि निर्ज्जराख्य धर्म्मके जरिये मोक्ष हुआ करतो है, वे लोग उसे ही सिद्ध करते हैं। परन्तु रजोगुण और तमोगुणसे रहित अन्तःकरणवाले सम्प्रज्ञात अवस्थामें स्थित योगीलोग ब्रह्मको ही कारण रूपसे देखते हैं; इस ही लिये वे लोग समदर्शी कहे जाते हैं। जीवोंके पक्षमें तपस्या ही मोक्षका कारण है, मनोनिग्रह रूपी शम और बाह्येन्द्रिय निग्रहात्मक दम उस तपस्याके मूल हैं। मनुष्य मन ही मन जो सब कामना करता है, तपस्याके सहारे वह सब पाता है। जिसने जगत्को उत्पन्न किया है, तपस्याके सहारे जीव उसे पाता है, और उसहीका रूप होकर सब जीवोंके ऊपर प्रभुता करनेमें समर्थ हुआ करता है। ऋषि लोग तपोबलसे ही दिन रात वेद पढ़ते हैं, वह अनादि निधन विद्यारूपी वेदवाणी स्वयम्भूके जरिये शिष्य प्रशिष्य सम्प्रदाय क्रमसे प्रवर्त्तित हुई है। सृष्टिके पहले वेदमयी दिव्यवाणी विद्यमान थी, उससे ही समस्त वृत्तान्त उत्पन्न हुए हैं। सृष्टिके आरम्भमें ईश्वर वेदशब्दोंसे ऋषियोंके नाम धेय, जीवोंके अनेक रूप और सब कर्म्मोंका प्रवर्त्तन निर्म्माण करता है; वेदके बीच ऋषियोंके जो नाम धेय विहित थे सृष्टि आरम्भके समय विधाताने उसे ही विधान किया। नाम भेद, तपस्या, कर्म्म और यज्ञोंको लोकसिद्धि कहते हैं, और आत्मसिद्धिके विषय वेदमें दश प्रकारसे वर्णित हुए हैं। वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि वह वेद और वेदान्त वाक्योंके बीच अत्यन्त गहनभावसे विद्यमान है। पहले कहे हुए दश प्रकारके क्रम यही हैं, कि वेदाध्ययन, दारपरिग्रह करके गार्हस्थ्य अवलम्बन कृच्छ्रचान्द्रायण आदि वाणप्रस्थाश्रम रूपी तपस्या, सर्व्वाश्रम साधारण सन्ध्योपासना आदि कर्म्म, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, कीर्त्तिकर तड़ाग और आराम आदि पूर्त्तकर्म्म, ध्यान आदि मानस धर्म्म वैश्वानराख्यका कारण ब्रह्मदर्शन दहरादि ग्रह उपासना और विशुद्धस्वरूपका ज्ञान, इन दशों प्रकारके क्रमके जरिये सांसारिक दुःखोंसे पार होकर परब्रह्मको प्राप्त किया जाता है। इस ही लिये वेद और वेदान्त वाक्य उपनिषदोंके बीच ये दश प्रकारके क्रम आत्मसिद्धिके उपाय रूपसे वर्णित हुए हैं। देहाभिमानी जीव जो द्वैत दर्शन किया करता है; वह कर्म्मज है; कर्म्मके नष्ट होनेपर सुषुप्ति और समाधि समयमें उसका अभाव होता है। सुख, दुःख, सर्दी, गर्म्मी, मान, अपमान आदि द्वन्द्वयुक्त द्वैतदर्शनको ही आत्मसिद्धि कहा जाता है। पुरुष विज्ञान बलके प्रभावसे ज्ञातृज्ञेय भाव रूप भेद परित्याग किया करता है। दो प्रकार ब्रह्मको जानना उचित है, पहला शब्द-ब्रह्मरूप प्रणव, दूसरा परब्रह्म; जो प्रणव उपासना विषयमें निपुण होते हैं, वेही परब्रह्मको प्राप्त हुआ करते हैं। क्षत्रियोंको पशुहिंसा, वैश्योंको धान्य आदि उत्पन्न करना, शूद्रोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी और ब्राह्मणोंको ब्रह्मकी उपासना ही यज्ञस्वरूप है त्रेतायुगमें यज्ञोंकी इस ही प्रकारसे विधि हुई थी; सतयुगमें किसी विधिका प्रयोजन नहीं था; क्यों कि उस समयमें ये सब प्रवृत्ति स्वतः सिद्ध थी। द्वापरमें लोग यज्ञकर्म्म आरम्भ करनेकी इच्छा करते थे, कलियुगमें सब कोई उस विषयसे विमुख हुए हैं। सतयुगमें मनुष्य अद्वैतनिष्ठ थे, वे लोग ऋक्, यजु, सामवेद और स्वर्ग आदिके साधन काम्यकर्म्म यज्ञादिकोंको तपस्यासे पृथक् जानके वह सब परित्याग करके केवल तपस्याका अनुष्ठान करते थे। त्रेतायुगमें धर्म्मविषयमें मनुष्योंकी स्वतःप्रवृत्तिके अभाव निबन्धनसे धर्म्म-

संक्रान्त शासन कर्त्ता जो सब महाबलवान् राजा उत्पन्न हुए थे, वे लोग स्थावर, जङ्गम आदि सब प्राणियोंको सब तरहसे धर्म्मविषयक शासन करते थे, इसहीसे त्रेतायुगमें सब वेद, सब यज्ञ और वर्णाश्रमोंके यज्ञादिकोंके अनुष्ठान करानेमें तत्पर थे। द्वापरमें परमायुका परिमाण घटनेसे शासन करनेवाले सभी भ्रष्ट हुए। कलियुगमें सब निखिल वेद थोड़ेसे दीख पड़ते हैं, सर्व्वत्र नहीं दीखते; केवल अधर्म्मसे पीड़ित होनेसे यज्ञ और वेद नष्ट होरहे हैं। सतयुगमें जो धर्म्म ब्राह्मण मात्रमेंही दीख पड़ता था, इस समय वह चित्तको जीतनेवाले योगनिष्ठ, वेदान्त सुननेमें तत्पर ब्राह्मणोंमें प्रतिष्ठित होरहा है। त्रेतायुगमें अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मण लोग आचार व्यवहारको अतिक्रम न करके वेदोक्त प्रमाणके अनुसार यज्ञ आदि धर्म्म, और उसके सहित एकादश उपवास आदि व्रत और तीर्थ दर्शनादि धर्म्म-कर्म्म इच्छा पूर्व्वक निबाहते थे; वैदिक द्विजाति भी स्वर्गकी कामना करके यज्ञ करते थे। द्वापरयुगमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्णपुत्रकी कामनासे यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते थे। कलियुगमें केवल शत्रु-मारण आदिकी इच्छासे लोग यज्ञ किया करते हैं; युगयुगमें इस ही प्रकार धर्म्म अलग अलग दीख पड़ता है। जैसे प्रावृट् ऋतुमें अनेक प्रकारके स्थावर, जङ्गम, वृक्ष लता गुल्म आदि वर्षासे उत्पन्न होकर बढ़ती हैं, वैसेही युगयुगमें धर्म्माधर्म्मकी घटती बढ़ती हुआ करती है। जैसे ऋतु कालमें सर्द्दी गर्म्मी आदि अनेक भांतिके ऋतुके चिन्ह पर्य्यायक्रमसे दीखते हैं, वैसेही ब्रह्मा और हर आदिमें सृष्टि संहार सामर्थकी वृद्धि और ह्रास दीख पड़ती है, चतुर्युगात्मक कालपुरुषके कलाकाष्ठादि भेदसे नानात्व, धर्म्माधर्म्मकी ह्रास वृद्धि भेदसे विभिन्नत्व और उसका अनादि निधनत्व पहिले तुम्हारे समीप वर्णन किया है। वह काल ही प्रजाओंको उत्पन्न करके संहार करता है। जो सब जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज प्राणी स्वाभाविक सुख दुःखसे युक्त होकर वर्त्तमान हैं, काल ही उनका अधिष्ठान है, इसलिये समय ही सब भूतोंको धारण कर रहा है, और प्रतिपालन करता है, समय ही स्वयं सर्व्वभूत स्वरूप है। हे तात! समय केवल सर्व्वभूत स्वरूप ही नहीं है, समय सर्ग आदि आत्म स्वरूप है। तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसके अनुसार सृष्टि, काल, यज्ञ, श्राद्धादि कर्म्म, उनके प्रकाशक वेद, उनका अनुष्ठान करनेवाला देहादि परिग्रह कार्य्य और क्रियाफल स्वर्गादि विषयोंको वर्णन किया। ये सभी काल स्वरूप पुरुषमय हैं।

२३१ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, दिन बीतनेपर रात्रिके आरम्भमें ईश्वर आत्मामें सूक्ष्मभावसे स्थित इस जगत्को जिस प्रकार परिणत करता है, उत्पत्ति क्रमसे विपरीत उस प्रलयका विषय कहता हूं सुनो। आकाशमें द्वादश आदित्य और सङ्कर्षणके मुखसे उत्पन्न हुई अग्निकी अर्चि इस दृश्यमान जगत्को जलानेमें प्रवृत्त होती है। उस समय सब जगत् सौरी और अग्नेयी ज्वालासे परिपूरित होकर जाज्वल्यमान हुआ करता है। पृथ्वी मण्डलमें जो सब स्थावर जङ्गम जीव हैं, वेही अगाड़ी प्रलयको प्राप्त होते हैं और लय होनेपर भूमिके साथ मिल जाते हैं। स्थावर और जङ्गम जीवोंके लय होनेपर भूमि वृक्षहीन और तृण रहित होकर कछुएकी पीठके समान दीख पड़ती है। जिस समय जल भूमिकी कठोरताका हेतु गन्धगुण ग्रहण करता है, उस समय पृथ्वी घृतकी भांति कठोरता परित्याग करके जलमय होजाती है। तब जल तरङ्गमाला और महा-

शब्दसेयुक्त होकर इस दृश्यमान जगत्को अपने रूपमें लीन करते हुए प्रतिष्ठा प्राप्त करके स्थिति तथा विचरण करता है।

हे तात! जब अग्नि जलके गुणको ग्रहण करती है, उस समय उसका रस अग्निसे सूखनेसे जलभी अग्निमें लीन होता है। जिस समय अग्निशिखा मध्यमें स्थित आदित्य मण्डलको परिपूरित करती हैं उस समय यह समस्त आकाशमण्डल अग्निशिखासे परिपूर्ण होकर प्रज्वलित हुआ करता है,। वायु जब अग्निका गुण ग्रहण करता है, तब उस समय अग्नि विरूप होकर प्रशान्त होती है, अनन्तर अत्यन्त वृहत् वायु दोधूयमान हुआ करता है. और अपने महत् शब्दको अवलम्बन करके नीचे, ऊपर, तिर्य्यग् प्रदेश तथा दशों दिशाको आक्रमण कर धावित होता है। शेषमें जब आकाश वायुके स्पर्श गुणको ग्रास करता है, तब वायु शान्त होजाता है, और शब्दके पूर्व्वरूप वर्ण विभाग रहित नादकी भांति आकाशमें स्थित रहता है; वायु आदि दृश्य पदार्थोंमें जिसका शब्द वर्त्तमान है वह आकाश उस समय रूप हीन, रस रहित स्पर्श वर्ज्जित, गन्धहीन और अमूर्त्तत्र होकर नादकी भांति स्थित करता है।

अनन्तर आकाशका अभिव्यक्तात्मक शब्द गुण मनके जरिये लय होता है, मनका व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप ब्राह्म प्रलयमें लीन होजाता है। उस समय चन्द्रमा आत्मगुण अर्थात् निःसीम ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य्य धर्म्मरूप कर्म्ममें आविष्ट होकर हिरण्यगर्भ सम्बन्धीय समष्टि मनको नष्ट करता है, मन शान्त होनेपर भी केवल चन्द्रमामें वर्त्तमान रहता है। योगी पुरुष चन्द्रमा नामक उपाधियुक्त सङ्कल्पमात्र शरीर मनको बहुत समयतक वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं; जब सङ्कल्प विचारात्मिका चित्तवृत्तिको ग्रास करता है, तब सङ्कल्पको रोकना अत्यन्त दुःसाध्य है। इस सङ्कल्पके वशीकरणका यही उपाय है कि "यह सब मैंही हूं," इसही प्रकारका ज्ञान सबसे उत्तम है। "मैं" इतना ही प्रत्यय स्वरूप काल सबका अनुभव करानेवाला विज्ञानको ग्रास करता है, और बल नामक शक्ति ही काल स्वरूप है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। जैसे बल कालको कवलित करता है, काल भी उस ही प्रकार बलको ग्रास किया करता है। विदेह कैवल्यरूप शान्त बुद्धि पुनरुत्थानाभाव निवसनकालको वशमें कर रखती है। विदेह कैवल्यस्वरूपी शान्तबुद्धि जिस समय कालको वशीभूत करती है, उस समय विद्वान् योगी आकाशके गुणनाद अर्थात् अर्द्धमात्रा बिन्दुके अनुसार आत्माको परब्रह्ममें संयुक्त करता है। वह परमात्माही नित्य निर्म्मुक्त सर्व्वोत्तम परब्रह्म है; वही इस प्रकार सब भूतोंको प्रलय किया करता है, यह प्रलयका विषय कहा गया है रसरीमें सर्पभ्रमकी भांति सब भूतोंके लीन होनेपर केवल अकेला ब्रह्म ही शेष रहता है। परमात्मदर्शी योगियोंने शास्त्रमें कहेहुए विद्यामय इस बोधविषयको निःसंशयरूपसे देखकर यथावत वर्णन किये हैं। ब्रह्मा इस ही प्रकार बार बार सृष्टि और प्रलय किया करता है। सहस्र युग पर्य्यन्त सृष्टिकाल ही उसका दिन और सहस्र युग पर्य्यन्त प्रलयका समय ही उसकी रात्रिरूपसे गिनी जाती है।

२३२ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, हे तात! तुमने जो भूतग्रामका विषय पूंछा था, मैंने उस विषयको वर्णन किया; अब ब्राह्मणोंके जो कुछ कर्त्तव्य हैं। उसका विवरण करता हूं सुनो। द्विजातियोंके जातकर्म्म आदिसे समावर्त्तन पर्य्यन्त सब दक्षिणान्वित क्रिया वेद जाननेवाले आचार्य्यके निकट सिद्ध करनी होगी। यज्ञवित् ब्राह्मण गुरुसेवामें रत रहके अखिल वेदको पढ़कर आचार्य्यसे

ऋणी होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन करे; अथवा आचार्य्यसे अनुज्ञात होकर जबतक शरीर धारण करे, तबतक चारों आश्रमोंके अन्यतरको विधिपूर्व्वक अवलम्बन करे। अथवा ब्रह्मचर्य्यके अनन्तर दारपरिग्रह कर सन्तान उत्पन्न करके जङ्गलके बीच गुरुजनोंके निकट यतिधर्म्मके जरिये निवास करे। महर्षि लोग गृहस्थको इन सब धर्म्मोंका मूल कहा करते हैं गार्हस्थ आश्रममें पक्क कशाय अर्थात् लय और विक्षेपके अभावमें राग आदि वासनाके जरिये शुद्धता निबन्धनसे जिनका चित्त अखण्डवस्तुको अवलम्बन करनेमें समर्थ नहीं है, वैसे ही ब्राह्मण जितेन्द्रिय होनेपर सब आश्रमोंमें ही सिद्धिलाभ करनेमें समर्थ होते हैं।

पुत्रवान् श्रोत्रिय और यायावीय ब्राह्मण तीनों ऋणोंसे विमुक्त हो हैं, अनन्तर वह कर्म्मसे पवित्र होकर आश्रमान्तरमें गमन करें, पृथ्वीके बीच ब्राह्मण जिस स्थानको पवित्र समझें, वहां पर वास करे और श्रेष्ठ यश उपार्ज्जनमें यत्नवान् होवे। उत्तम महत् तपस्या, सब विद्याको पारदर्शिता, यज्ञ और दानसे द्विजोंके यशकी वृद्धि होती है, इस लोकमें ब्राह्मणोंको जितने परिमाणसे यशस्करी कीर्त्ति हुआ करती है, वह उतने ही परिमाणसे पुण्यवान लोगोंके अनन्त लोकको उपभोग करते हैं। ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन, यजन और याजन करे, कभी वृथा प्रतिग्रह वा वृथा दान न करे, यजमान, शिष्य और कन्यासे जो महत् धन प्राप्त हो, वह यज्ञकार्य्यमें व्यय और दान करे, किसी भांति अकेले उपभोग न करे। देवता ऋषि, पितर, गुरु, आतुर और भूखोंके लिये जो दान किया जाता है गृहस्थके पक्षमें उससे बढ़के दूसरा तीर्थ और कुछ भी नहीं है। अन्तर्हित शत्रु सन्तप्त और शक्तिके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेमें अनुरक्त ब्राह्मणोंको उचित है, कि निज शक्तिको अतिक्रम करके प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे भी अधिक दान करें। अनुरूप अर्हणीय ब्राह्मणोंको कुछ भी अदेय नहीं है; प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि उच्चश्रवा घोड़ा भी साधुओंको प्रापत्र है। महाव्रत राजा सत्यसन्धने इच्छानुसार बिनती करके निज प्राण दानसे ब्राह्मणका प्राण बचाके सुरपुरमें गमन किया है। सास्कृतिपुत्र रन्तिदेव महात्मा वशिष्ठको न बहुत ठण्डा न बहुत गर्म्म जल दान करके अमरलोकमें सम्मान भाजन हुए हैं, इन्द्रदमन बुद्धिमान् अत्रेय राजाने किसी पूजनीय ब्राह्मणको अनेक तरहका धन दान करके अनन्तलोकमें गमन किया है। उशीनरपुत्र शिविराजाने राज्याङ्गोंके सहित निज और सपुत्र ब्राह्मणोंको दान करके इस लोकसे नाकपृष्ठ पर आरोहण किया है। काशिराज प्रतर्दन ब्राह्मणको अपना दोनों नेत्र दान करके इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्त्तिभागी हुए। देवावृध राजाने आठ शलाकाओंसे युक्त सुवर्णमय महामूल्यवान छत्र दान करके राज्य वासियोंके सहित भूलोकमें गमन किया, अत्रिपुत्र महातेजस्वी सास्कृतिने शिष्योंको निर्गुण ब्रह्मविषयक उपदेश देकर परम श्रेष्ठ लोकोंको पाया है। प्रतापवान अम्बरीष राजा ग्यारह अर्बुद गऊ ब्राह्मणोंको दान करके राज्यके सहित सुरलोकमें गये। सावित्रीने दोनों दिव्य कुण्डल और जनमेजयने ब्राह्मणके निमित्त अपना शरीर छोड़के उत्तम लोक पाया है। वृषादर्भि युवनाश्व समस्त रत्न प्रिय स्त्रियां और रमणीय गृह दान करके स्वर्ग लोकमें निवास करते हैं। विदेहवंशीय निमि राजाने ब्राह्मणोंको राज्य दिया, जमदग्निपुत्रने पृथिवी दान की और गय राजाने नगरके सहित पृथ्वी ब्राह्मणोंको समर्पण किया।

जैसे प्रजापति प्रजाकी रक्षा करते हैं, वैसे ही अनावृष्टिके समय भूतभावन वशिष्ठदेवने सब जीवोंको जीवित रखा था। करन्धमके पुत्र

पवित्र बुद्धिवाले मरुत अङ्गिराको कन्या दान करनेसे शीघ्र ही स्वर्गमें गये। पाञ्चालराज बुद्धिमान ब्रह्मदत्तने अग्रगण्य द्विजोंको निधि और शङ्ख दान करके भी शुभलोकोंको पाया है। मित्रसह राजा महानुभाव वशिष्ठ देवको प्रिय मदयन्ती दान करके उनके सहित सुरलोकमें गये; महायशस्वी राजर्षि सहस्रजित् ब्राह्मणोंके निमित्त प्रिय प्राण त्यागके सर्व्वोत्तम लोकोंको प्राप्त किया है। राजा शतद्युम्न मुद्गर ऋषिको सर्व्वकाम सम्पूर्ण सुवर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गये। द्युतिमान नाम प्रतापवान शल्य राज ऋचीकको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गया है। राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्तको सुन्दरी कन्या दान करके देवताओंसे प्रशंसित लोकोंमें गमन किया है, राजऋषि लोमपाद ऋष्यशृङ्गको शान्ता नामी कन्या दान करके सर्व्वकाम सम्पन्न हुए। महातेजस्वी प्रसेनजित् राजाने सात हजार बछड़े युक्त गऊ दान करके उत्तम लोक प्राप्त किया है। ये सब लोग और इनके अतिरिक्त शिष्टस्वभाव जितेन्द्रिय बहुतेरे महात्मा लोग दान और तपस्यासे स्वर्गमें गये हैं। जबतक यह पृथ्वी है, तबतक उन लोगोंकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी, क्यों कि इन लोगोंने दान, यज्ञ और सन्तान उत्पन्न करके अमर लोक प्राप्त किया है।

२३२ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, ब्राह्मण वेदमें कही हुई सब साङ्ग वेदविद्या पढ़े। ऋक्, साम, वर्ण, अक्षर, यजु और अथर्व, इन षटकर्म्मोंमें पूर्णरीतिसे वर्त्तमान रहके भगवान् बास करता है। वेदवादको जाननेवाले अध्यात्म विद्यामें निपुण सत्त्ववन्त महाभाग ब्राह्मण लोग उत्पत्ति और प्रलयके कारण परमात्माको देखते हैं ब्राह्मण इस ही प्रकार धर्म्म अवलम्बन करते हुए जीवनका समय व्यतीत करे। शिष्टोंकी भांति कर्म्म करनेमें तत्पर होवे और सब भूतोंके अविरोध्य वृत्तिलाभकी अभिलाष करे। जो गृहमेधी साधुओंसे विज्ञान लाभ करके शिष्ट और शास्त्र विचक्षण होकर इस लोकमें निज धर्म्मके अनुसार कर्म्म करता और सात्विक कर्म्मोंमें विचरता हुआ प्रागुक्त षट् कर्म्मोंमें रत रहता है। वही ब्राह्मण है। इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा श्रद्धावान् होकर पञ्च यज्ञोंका विधान करे। धैर्यशाली, अप्रमत्त, दान्त धर्म्मवित्, यत्नवान, हर्षहीन, मदरहित और क्रोध वर्जित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। दान, वेदाध्ययन, यज्ञ तपस्या, लज्जा, सरलता और इन्द्रिय दमन, ये सब विषय ब्राह्मणोंके तेजको बढ़ाते और पापोंको दूर करते हैं। पाप पङ्कको धोनेवाले मेधावी मनुष्य लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर काम क्रोधको वशमें करते हुए ब्रह्मपद प्राप्तिके लिये कामना करे; तीनों अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करे, देवताओंके निकट प्रणत होवे, अकल्याणको त्याग दे; ब्राह्मणोंको यही पूर्व्वानुष्ठेय वृत्ति बिहित हुई। शिष्यमें ज्ञानागमके सहारे कर्म्म करनेसे उस विषयमें उसे सिद्धि प्राप्त हुआ करती है बुद्धिमान मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जलसेयुक्त, मृत्युपङ्क समन्वित, अनिभवनीय भयङ्करी अत्यन्त दुस्तर लोभके मूल महानदीसे अनायास ही पार होते हैं। यह देखता रहे, कि विधिदृष्ट महाबलसे युक्त प्रतिघात रहित अत्यन्त मोहनकाल सदा ही उपस्थित होरहा है।

जगत् स्वभाव स्रोतमें पड़के सदा ही भासमान होता है, काल स्वरूप महा आवर्त्त, मास मय तरङ्ग, ऋतुरूपी वेग, पक्षमय उलप तृण, निमेष आदि फेन, दिनरात्रि जल, घोरकाम ग्राह, वेद और यज्ञरूपी नौका, जीवोंके धर्म्म स्वरूप द्वीप, अर्थाभिलाषमय दूध सत्य बचनरूपी मोक्षतीर, हिंसातरुवाही, दो तालाबोंसे युक्त प्रवाहके बीचमें स्थित संसार स्रोतके जरिये विधा-

देखष्ट जीव निरन्तर ग्रयन गृहमें आकृष्ट होता है। स्थिरचित्तवाले मनीषि लोग प्रज्ञामय नौकाके सहारे इस संसार-स्रोतसे पार होते हैं प्रज्ञामय नौकासे रहित अल्पबुद्धि मनुष्य इससे पार होनेका और उपाय क्या करेंगे। बुद्धिमान् मनुष्य उपस्थित विपदसे निस्तार लाभ कर सकते हैं, दूसरे लोग कभी विपदसे छूटनेमें समर्थ नहीं हैं। प्राज्ञ पुरुष दूर होनेपर भी सब स्थानोंके दोष गुणको देखते हैं। स्तकात्मा, डावांडोल चित्त, अल्पचेता, अप्राज्ञ, पुरुष संशयसे पार नहीं होते; जिसका अस्तित्व है, वह कभी विनष्ट नहीं होता। उत्तरणरहित मनुष्य महादोषसे मोहित होकर नियमित होता है, कामरूप ग्रहसे जो आक्रान्त हुआ है, उसका ज्ञान भी उत्तरणका कारण नहीं होता; इसलिये विचक्षण मनुष्य उन्मज्जनके लिये यत्न करे, जो ब्राह्मण होते हैं, उनहीका उन्मज्जन हुआ करता है, जिन्होंने शुद्धवंशमें जन्म लिया है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंमें आत्म निश्चय विषयमें जिन्हें सन्देह है, जो यजन अध्ययन और दान, इन तीनों कर्म्मोंको साधन किया करते हैं, वैसे ब्राह्मण बुद्धिबलके सहारे जिस प्रकार निस्तार लाभ कर सकें, उस ही भांति उन्मज्जनमें सावधान रहें। संस्कारयुक्त, नियमनिष्ठ, संयतात्मा, दमशील, प्राज्ञपुरुषोंको इस लोक और परलोकमें अव्यर्थहित सिद्धि हुआ करती है, गृहस्थ पुरुष क्रोध और असूयारहित होकर ऐसे ही ब्राह्मणोंके बीच निवास करें और विघसाशी होकर सदा पञ्चयज्ञ करनेमें यत्नवान् रहे। साधुओंके आचरित धर्म्मके जरिये जीवन बिताते हुए शिष्टोंको भांति कार्य्योंका अनुष्ठान करे; लोगोंके संग विरोध न करके अनिन्दित वृत्तिलाभकी इच्छा करे। जो लोग शिष्टाचारसे युक्त और विचक्षण होकर विज्ञानतत्व सुनते हैं। और निज धर्म्मके अनुसार सब कर्म्मोंका निर्व्वाह किया करते हैं, वे कर्म्मोंसे सङ्कीर्ण नहीं होते। क्रियावान्, श्रद्धायुक्त दान्त, प्राज्ञ, अनसूयक और धर्म्माधर्म्मके विशेषज्ञ ब्राह्मण दुस्तर विषयोंके पार होते हैं। धृतिमान अप्रमत्त दान्त, धर्म्मवित् आत्मवान् और हर्ष, मद क्रोधसे रहित ब्राह्मण अवसन्न नहीं होते। ब्राह्मणोंकी यही पुरानी वृत्ति विहित हुई। ज्ञानवत्तासे सब कर्म्मोंको सिद्ध करते हुए ब्राह्मण लोग सब विषयोंमें ही सिद्धि लाभ कर सकते हैं।

मूर्ख मनुष्य धर्म्मकी इच्छा करके भी अधर्म्म किया करता है, अथवा मानो वह शोचना करते हुए अधर्म्म सदृश धर्म्माचरण करता है। "धर्म्म करता हूं" समझके कोई अधर्म्म और कोई अधर्म्मकी इच्छा करके भी धर्म्म करता है। मूढ़ जीव उक्त दोनों प्रकारके कर्म्मोंको न जानके बार बार जन्म लेके मृत्युके मुखमें पड़े हैं।

२३४ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, जैसे स्रोतके जरिये बहता हुआ मनुष्य कभी डूबता और कभी उतरके शेषमें नौकाका अवलम्बन करता है, वैसे ही संसार स्रोतमें भासमान पुरुषोंको यदि वक्ष्यमाण शान्ति नामक कैवल्य प्राप्तिमें अभिलाष हो, तो उनको ज्ञानरूपी नौका अवलम्बन करनी पड़ेगी। जिन सब धीर लोग ध्यानजनित साक्षात्कारके जरिये आत्मनिश्चय किया है, वे लोग ज्ञानरूपी नौकाके सहारे मूर्ख लोगोंको पार किया करते हैं। अज्ञानी लोग जब अपनेको ही किसी प्रकार उत्तीर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं, तब दूसरेको किस प्रकार पार करेंगे, राग आदि दोषोंसे रहित मननशील मनुष्य पुत्र कलत्रादिकोंमें आसक्ति रहित होकर देश, कर्म्म, अनुराग, अर्थ, अनुपाय, अपाय, निश्चय,

नेत्र, आहार, संहार, मन और दर्शन तथा योगकी सहाय, इन बारहोंका अनुसरण करे। जो श्रेष्ठ ज्ञानकी, इच्छा करे उन्हें बुद्धिके सहारे मन और वचनको संयत करना होगा; और जो लोग आत्माको शान्तिकी अभिलाषा करते हैं, वे ज्ञानके सहारे बुद्धिका संयम करें। वाक्य मनके अधिष्ठाता शान्त आत्माको जिन्होंने जाना है, वे चाहे साधु हों, वा असाधु हों, सब वेदके जाननेवाले अथवा अवेदज्ञ हों, धार्म्मिक वा याज्ञिक वा अत्यन्तही पाप करनेवाले हों, पुरुष प्रवर तथा क्लेश युक्तही होवें, वे इस प्रकारके जरा मरण सागर स्वरूप महादुर्गसे अवश्यही उत्तीर्ण होते हैं। पहली कही हुई रीतिसे अनुष्ठान करना तो दूर रहे, जिन्होंने केवल शान्त आत्माको जाननेकी इच्छा की है, वे कर्म्मकाण्ड अतिक्रम करके निवास करते हैं, निज कर्म्मोंको त्यागनेसे दोषग्रस्त नहीं होते। यज्ञादि कर्म्म जिसके ज्ञान सारथीका उपवेशन स्थान है, अकार्य्योंसे निवृत्ति रूपी लज्जा जिसकी रथगुप्ति है, प्रागुक्त उपाय और अपाय जिसकी धुरीदण्ड है; आपण जिसके पहिये हैं, प्राण जिसका जुआ है, प्रज्ञा और आयु जिसका जीव बन्धन स्थान है, सावधानता जिसका बन्धुर अर्थात् दोनों फलकोंका संश्लेष स्थल है, आचार स्वीकार जिसका नेमिस्वरूप दर्शन, स्पर्शन, घ्राण और श्रवण, ये चारों जिसके अश्वादिरूपी वाहन हैं; शम, दम आदि प्रबलता जिसकी नाभि, सब शास्त्र ही जिसके कोड़े, शास्त्रार्थ निश्चय ज्ञान ही जिसका सारथी, क्षेत्रज्ञ जिसका अधिष्ठाता, श्रद्धा और दम जिसका पुरःसर और त्याग जिसका सूक्ष्म अनुचर है, वह शौचाचारसे मालूम होनेवाला ध्यान गोचर और मुमुक्षु योजित दिव्य रथ ब्रह्मलोकमें बिराजता है। ऐसे रथपर चढ़नेमें शीघ्रतायुक्त होकर जो योगीअक्षर परब्रह्मको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं उनके पक्षमें शीघ्रगामी अन्तरङ्ग बिधि कहता हूं सुनो।

यमनियमादिसे युक्त स्थिर वचनवाले जो सब धारणा अर्थात् एक विषयमें चित्त लगानेका अभ्यास करते हैं, उसमेंसे विप्रकृष्टतर सूर्य्य, चन्द्र, ध्रुव मण्डल आदि धारणा है, और सन्निकृष्टतर नासाग्र भ्रूमध्य आदि विषय भेदसे विविध धारणा हैं उन्हें प्रशिष्य और प्रपौत्र आदि शब्दकी तरह प्रधारणा कहते हैं। योगी पुरुष उन्हीं सब धारणायुक्त बुद्धिके जरिये क्रमसे पार्थिव जलीय, तैजस, वायवीय और आकाश सम्बन्धीय ऐश्वर्य्य लाभ करते हैं, और क्रम क्रमसे अहङ्कार तथा अव्यक्तका ऐश्वर्य्य प्राप्त करते हैं; अर्थात् ब्रह्मादि कार्य्यरूपको निज निज कारणोंमें संहार करके विशुद्धचित्त होकर परमात्माका दर्शन करते हैं; योगमें प्रवृत्त योगियोंके बीच जिस योगीका जैसा विक्रम है अर्थात् जिसका जैसा अनुभव क्रम होता है, वह और देहाभ्यन्तरमें परमात्मदर्शी योगियोंकी सिद्धि अर्थात् पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंके जय कर-नेका विषय कहता हूं सुनो। प्रति शरीरमें समवस्थित आत्माका वक्ष्यमाण रूप परित्याग अर्थात् गुरुके जरिये उक्त युक्तिके जरिये स्थूल देहका अध्यास छोड़के सूक्ष्मनिबन्धन योगी लोग अन्तःकरणमें उसे देखते हैं, जैसे शिशिर सम्ब-न्धीय सूक्ष्म धुआं आकाशमण्डलको अवलम्बन करता है, वैसे ही देहके मुक्त हुए आत्माका पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अनन्तर धुएंका ठहराव होनेपर दूसरा रूप दीख पड़ता है, वह आकाशस्थित जलरूपकी भांति देहके भीतर दीखता है; जलका व्यतिक्रम होनेपर लोहि-तवर्ण अग्निरूप प्रकाशित होता है। और अग्निरूपके शान्त होनेपर वृक्षोंको फेंकनेवाला शाणितशस्त्र सवर्ण वायुका रूप प्रकट हुआ करता है, उस समय उर्णतन्तुकी भांति अत्यन्त लघु, और उसहीके समान वायु अवलम्बरहित आकाशमें दोधूयमान हुआ करता है। अनन्तर वायुका सूक्ष्म स्वरूप मलिनतारहित प्रकाश-

मय स्वच्छ आकाशमें लीन होनेपर आकाश मात्र प्रकाशित होता है। ब्रह्मजिज्ञासु योगीके चित्तकी अत्यन्त शुभ्रता और सूक्ष्मताके विषयको शास्त्रकारोंने इस प्रकार कहा है, कि प्रागुक्त प्रकारसे भूमि, जल, अग्नि और आकाश जयके जरिये भूतशुद्धिप्रकार शास्त्रकारके बीच प्रसिद्ध था; अब सम्प्रदाय समूहके अपरिज्ञान निबन्धनसे उसका यथा उचित अनुष्ठान नहीं होता। पूर्व्वोक्त प्रकारसे पञ्चभूतोंको जय करनेसे, जो सब फलोदय होते हैं, वह मुझसे सुनो, योगसिद्ध पुरुषको पार्थिव ऐश्वर्य्यके जरिये इस लोकमें सृष्टिकी सामर्थ उत्पन्न होती है, वह प्रजापतिकी भांति अक्षुब्ध होकर शरीरसे प्रजाकी सृष्टि कर सकता है। श्रुतिमें प्रतिपन्न है, कि वायुकी जय कर सकनेसे योगसिद्ध पुरुषका एकमात्र अङ्गुष्ट अङ्गुलीके जरिये अथवा हाथ पांवके सहारे सारी पृथ्वीको कंपानेकी सामर्थ होती है। आकाश जय करनेपर वह आकाशके वर्ण समान होके आकाशकी भांति सर्व्वगत होके प्रकाशित होता है; वर्णके अनुसार जय होनेपर भी रूपहीनता निबन्धनसे अन्तर्द्धान शक्ति प्राप्त होती है। जल जय करनेका यही फल है, कि जलको जय कर सकनेसे इच्छानुसार अगस्तकी भांति वापी, कूप, तड़ाग आदि जलाशयोंको पी सकते हैं, आकाश जय करनेसे रूप ही आकाश स्वरूपमें अन्तर्द्धान हुआ करता है। अग्नि जयसे आकृति सलसे भी अदृशल उत्पन्न होता है। अहंकारको विशेष रूपसे जय कर सकनेसे सिद्ध पुरुषके समीप पञ्चभूत ही वशीभूत हुआ करते हैं। पृथ्वी आदि पञ्चभूत और अहंकारकी आत्मभूता बुद्धिको जय कर सकनेसे सिद्ध योगी सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त और सर्व्वज्ञ होता है; दोषरहित प्रतिभा अर्थात् संशय विपर्य्ययसे हीन समस्त ज्ञान उसके समीपवर्त्ती हुआ करते हैं। वह बुद्धादि रूपसे व्यक्त आत्माको अव्यक्त अर्थात् जगत् कारण ब्रह्मभावसे समझता है; जिससे सब लोग बिनष्ट होते हैं, उसका ही नाम व्यक्त हुआ करता है, उसके बीच अव्यक्तमयी और व्यक्तमयी बिद्या जो कि सांख्य शास्त्रमें विवृत्त हुई है, उसे तुम पहले मेरे समीप बिस्तारके सहित सुनो।

मूल प्रकृति प्रभृति पच्चीस तत्व सांख्य और पातञ्जल शास्त्रमें तुल्यरूपसे जानी गई हैं, उनसे जो विशेष है, वह मेरे समीप सुनो। जिसकी जन्म वृद्धि जरा और मरण है, ऐसे चारों लक्षणोंसे युक्त पदार्थको व्यक्त कहा जाता है और जो इसके बिपरीत अर्थात् जन्मादि रहित वस्तु है, वही अव्यक्त रूपसे प्रमाणित हुआ करती है। सांख्य मतवाले दर्शनिक पण्डित लोग चौबीस तत्वोंके अतिरिक्त एक मात्र जीवात्माको प्रति शरीरमें पृथक् समझते हैं। परन्तु वेदान्त सिद्धान्त वाक्यमें जीव और ईश्वर उपाधि भेदसे दो आत्मा प्रमाणित हुए हैं; वैदिक कर्म्मकाण्डमें यजमान और यष्टवा भेदसे ऐसा वर्णित है, कि जीव और ब्रह्म स्वतन्त्र है। जन्म आदि विकारयुक्त महत् अहंकार पञ्च तन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और पञ्च भूतोंसे उत्पन्न अर्थात् कार्य्य उपाधि चतुर्वर्गार्थी जीवको व्यक्त रूपसे वर्णन किया जाता है और माया उपाधि ईश्वरको अव्यक्त कहा जाता है, वे दोनोंही बुद्धि और अचेतन अर्थात् चिदचिदात्मक है। ऐसा वेदमें वर्णित है, कि जल चन्द्र न्यायके अनुसार जीव बिम्ब चैतन्य ईश्वरका प्रतिबिम्ब है। नष्टत्वबुद्धि और चैतन्य चिदात्मा दोनों ही विषयमें अनुरक्त होते हैं, यह वेदके बीच वर्णित है। घटादि विषयोंसे उत्पत्ति क्रमको बिपरीतताके अनुसार बुद्धि चैतन्यका प्रविलापन करना योग्य है, इसे ही सांख्य मतवाले बुद्धिमान लोगोंका शास्त्र जानो। उस मतके जीवन्मुक्त पुरुषोंका यही लक्षण है, कि योगी पुरुष ममतारहित और अहंकार शून्य सख

दुःख आदि द्वन्द्व वर्ज्जित और संशयहीन होवें। वे लोग क्रोध वा द्वेष न करें, झूठ वचन न कहें; आक्रुष्ट अथवा ताड़ित होनेपर भी सब भूतोंमें समदर्शिता निबन्धनसे किसीकी भी अशुभचिन्ता न करें; वचन, कर्म्म और मनसे परुषता परित्याग करें। इस ही प्रकार साधु-गुणसे युक्त होकर जो लोग सब भूतोंमें समान ज्ञान करते हैं वे चतुर्मुख ब्रह्माके निकटवर्त्ती होनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे मनुष्य लोकयात्रा निर्व्वाहके लिये स्थित रहके किसी विषयकी अभिलाष नहीं करते और किसी विषयमें अत्यन्त निरिच्छुक भी नहीं होते।

जिन्हें लोभ और दुःख नहीं है जो इन्द्रिय निग्रहमें समर्थ और कार्य्य कुशल हैं, जिन्हें वेशविन्यास आदि बाह्य आडम्बरमें तुच्छ ज्ञान है, जिनकी इन्द्रियें अनेकाग्र और मनोरथ विक्षिप्त नहीं है, जो सत्यसङ्कल्प और सब भूतोंमें अहिंसा स्वभाव हैं; ऐसे सांख्य योगी मुक्त होते हैं। अब पातञ्जल मतसे मनुष्य जिन जिन कारणोंके जरिये मुक्त होते हैं उसे सुनो।

परम वैराग्य बलसे जिन्होंने अणिमा आदि योग ऐश्वर्य्यकी अतिक्रम किया है, वेही मुक्त होते हैं। यही तुम्हारे निकट वक्तृ विवक्षा विशेष जनित ज्ञानका विषय कहा इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इसी भांति जो लोग सुख दुःख आदि द्वन्द्वसे रहित होते हैं, वेही परब्रह्मको जान सकते और उसे प्राप्त करते हैं।

२३५ अध्याय समाप्त।

वेदव्यास बोले, धीर पुरुष संसार सागरको तरनेवाले साधन शास्त्र और आचार्य्योंके उपदेशसे प्राप्त हुए परोक्ष ज्ञानरूपी शान्ति अवलम्बन करके संसार सागरमें सदा उन्मग्न और निमग्न होके भी केवल आत्म मोक्षके हेतुज्ञानकी ही अवलम्बन करें।

शुकदेव बोले, आप जो ज्ञानको अवलम्बन करना कहते हैं वह अवलम्बनीय ज्ञान किस प्रकार जाना जाता है। रज्जु सर्पकी भांति अज्ञान मात्रके विनाशसे प्रकृत पदार्थ ज्ञापिका बुद्धि वृत्तिकी निवृत्ति लक्षण ज्ञान कहते हैं; अथवा ध्यानके जरिये भृंगीकीटकी भांति ध्येय सारूप्य रूपक धर्म्म, प्रवृत्ति लक्षण ज्ञानका विषय कहते हैं, उसे वर्णन करिये। जिस प्रकार जीव जन्म मरणसे निस्तार लाभ कर सके आप उसे ही कहिये।

व्यासदेव बोले, "मैं" इस अनुभव विषयमें जड़ और अहंकार कारण रूपसे प्रसिद्ध है; इसलिये मीमांसा मतवाले पण्डित लोग उक्त दोनोंको आत्मा कहा करते हैं। "अहं" पदका अर्थ ही आत्मा है उसका गुण प्रकाश है, वह भी तीन क्षणमात्र स्थिति करता है, यह तार्किक मत है। सांख्य मतवाले बुद्धिमान लोग सिद्ध किया करते हैं, कि आत्मा ही नित्य प्रकाश स्वरूप है, अहं पदका अर्थ आत्मा नहीं है। उसके बीच बहुतेरे लोग आत्मा और अनात्मा दोनोंको ही नित्य कहा करते हैं। अनात्मा ही स्थिर है, देह नाश होनेपर चिदात्माका नाश होता है, यह लोकायतिक नास्तिकोंका मत है। आत्मा ही सत्य पदार्थ है, आत्मासे भिन्न सभी मिथ्या है, यह वेदान्त मतका सिद्धान्त है।

शून्यवादी लोग यह कहा करते हैं, कि आत्मा अनात्मा कुछ भी नहीं है; इसलिये शून्यवादियोंके मतमें यदि आत्माका अभाव हुआ, तब ज्ञानका अनर्थकत्व सिद्ध होगा; इसलिये जो मनुष्य अधिष्ठान सत्ताके बिना स्वभावके जरिये ही अहंकार आदि स्वरूपसे प्रकाशित होरहे हैं, ऐसा समझके निरधिष्ठाता स्वभाविकी जगदुत्पत्ति अङ्गीकार करता है और युक्ति तथा बुद्धिहीन शिष्योंको उसही प्रकार बोधके सहारे अनुरक्त किया करता है, वह कुछ भी तत्त्व लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता;

दूसरे अधिष्ठानके बिना भ्रमकी सम्भावना न रहनेसे शून्यकार नितान्त हेय है । इसके अतिरिक्त जो सब आत्मोच्छेदवादी लोकायतिक नास्तिक लोग एकान्तभावसे ईश्वर और अदृष्टकी सत्ता अस्वीकार करके स्वभावको ही देह आदिकी उत्पत्तिके विषयमें कारण कहा करते हैं ; वे लोग ऋषि वाक्य सुनके भी कुछ तत्त्व-लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते ; अर्थात् वे लोग आचार्य्यकी उपासना न करके ही स्वयं इन सब मतोंकी कल्पना करते हैं । जो सब अल्पबुद्धि मनुष्य स्वाभाविक शून्य जगत् भ्रान्ति और स्वाभाविक शरीरादिकोंकी उत्पत्ति, इन दोनों पक्षोंको अवलम्बन करते हैं, वे लोग स्वभावको कारण जानके कुछ भी कल्याण लाभ नहीं करते । मोहके कार्य्य मनसे ही स्वभाव उत्पन्न होता है, अर्थात् मूढ़ लोग मनके जरिये जो कुछ कल्पना करते हैं, उसे ही स्वभाव कहते हैं , स्वभावका वक्ष्यमाण लक्षण सुनो । यदि सब कार्य्य स्वाभाविक ही सिद्ध हों, तो कृषि-कार्य्य आदि सब कर्म्मोंसे ही बुद्धि-कौशलकी अनर्थकता हो सकती है, वह कदापि सम्भावित नहीं है ; क्योंकि कृषि आदि सब कार्य्य, शस्य, संग्रह, यान, आसन और गृह आदि बुद्धिमान् मनुष्योंके जरिये सम्पन्न हुआ करते हैं । क्रीड़ा गृह और रोगोंमें औषधी करनेके विषयमें बुद्धिमान् पुरुष ही प्रयोक्ता हैं । ज्ञानवान् मनुष्य ही उक्त सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया करते हैं । बुद्धिकी अधिकता रहनेसे ऐश्वर्य्याधिक्य लाभ होता है । बुद्धिमान् ही कल्याणके मार्गको प्रदर्शित करता है । बुद्धिकी अधिकतासे ही अधिक ऐश्वर्य्यशाली राजा लोग बुद्धिबलके सहारे राज्य भोग किया करते हैं । जीवोंके परम श्रेष्ठ चिदात्मा और मायाको बुद्धिबलसे ही जाना जाता है । हे तात ! बुद्धिवृत्तिके सहारे परम गति लय स्थानको भी प्राप्त कर सकते हैं । विविध भूतोंका जन्म चार प्रकारसे है, उसके बीच मनुष्य, पशु, आदि जरायुज, पक्षी, सर्प, आदि अण्डज, तृण, बनस्पति, उद्भिज, और यूक, मच्छड़ आदिको स्वेदज कहके निश्चय करो । तिसके बीच स्थावरोंसे जङ्गमोंको विशिष्ट जानना चाहिये , विशेष-विशेषण करके जो विशेष हो, उसे ही श्रेष्ठ समझो । प्राचीन लोग कहा करते हैं, अनेक चरणवाले जङ्गम जीव दो प्रकारके हैं, तिसके बीच पहले कही हुई रीतिके अनुसार वृक्षादिके दर्शन आदि स्वल्प रहनेसे भी प्रत्यक्ष दर्शनवाले जङ्गम जीव ही श्रेष्ठ हैं ; अनेक चरणवालोंसे कई तरहके दो पांववाली जाति श्रेष्ठ हैं, दो पांववाली जाति भूचर मनुष्य आदि हैं और खेचर पक्षी आदि भेदसे दो प्रकारके हैं , उसमेंसे खेचरसे भूचर मनुष्य आदि श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे लोग अन्न भोजन किया करते हैं । मनुष्य जाति दो तरहकी है, मध्यम और उत्तम तिसके बीच जातीय धर्म्मके आचरण निबन्धनसे मध्यम ही श्रेष्ठ है ; मध्यममें फिर दो भेद हैं, एक धर्म्मज्ञ, दूसरे इतर, तिसमेंसे कार्य्याकार्य्य कर्त्तव्यका निश्चय करनेसे धर्म्मज्ञ ही उत्तम हैं; धर्म्मज्ञ पुरुष दो प्रकारके हैं, वेदज्ञ और तदितर, उसमेंसे वेद जानने वाले पुरुष ही उत्तम हैं, क्योंकि वेद इन सबमें ही प्रतिष्ठित होरहा है । वेदज्ञ पुरुष दो तरहके हैं, प्रवक्ता और तदितर, उसके बीच सब धर्म्मोंके धारण निबन्धनसे प्रवक्ता ही उत्तम है । धर्म्म और क्रियाफलके सहित जो लोग सब वेदोंको जानते हैं और धर्म्मके सहित सब वेद जिससे प्रकट हुए हैं, उन प्रवक्तागणको आत्मज्ञ और तदितर भेदसे फिर दो प्रकार कहा जाता है ; उसके बीच जन्म और मोक्ष ज्ञान निबन्धनसे आत्मज्ञ-पुरुष उत्तम हैं । जो प्रवृत्ति और निवृत्ति लक्षणयुक्त दोनों प्रकारके धर्म्मको जानते हैं, वही धर्म्मज्ञ हैं, वेही धर्म्मवित् हैं, वेही त्यागशील, सत्य-सङ्कल्प, सत्यनिष्ठ, शुचि और सर्व्वकर्म्ममें समर्थ हैं ।

ब्रह्मज्ञान विषयमें जिसकी प्रतिष्ठा है, वेद शास्त्रोंमें जिसको निष्ठा होरही है, और दूसरे शास्त्रोंमें जो लोग कृतनिश्चय हुए हैं, उन्हें देवताभी ब्राह्मण समझते हैं। हे तात! जो सब ज्ञानवान् मनुष्य यज्ञादिदैवत आत्माको अन्तस्थ और बाह्यरूपसे देखते हैं, वेही द्विज और वेही देवस्वरूप हैं, ऐसे आत्मज्ञ पुरुषोंमें ही ये सब भूत और समस्त जगत् प्रतिष्ठित होरहा है; उन लोगोंके माहात्म्यके समान और कुछ भी नहीं है। आदि अन्तसे रहित और सब तरहके कर्मोंको अतिक्रम करके स्थित, चारों प्रकारके भूतोंके स्वयम्भू सब तरहसे ईश्वर हैं।

२३६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, यह ब्राह्मणोंकी नित्य-वृत्ति विहित हुई है, ज्ञानवान् ब्राह्मणही कर्म्म करते हुए सर्व्वत्र सिद्धि लाभ किया करते हैं, कर्म्म-विषयमें यदि संशय न हो, तो वह निःसंशयरूपसे किया गया कर्म्मही सिद्धिका हेतु हुआ करता है; परन्तु कर्म्मका क्या लक्षण है, ऐसा सन्देह उत्पन्न होनेपर ज्ञान वा ज्ञानजनक कर्म्मको यदि कर्म्म कहा जावे, तब उसे वेदविधि कहके अङ्गीकार करना होगा; इसलिये उत्पत्ति और उपलब्धिके जरिये उभयत्र कर्म्मकी प्रधानता कहता हूं सुनो।

कोई कोई मनुष्य इस जन्म और जन्मान्तरमें किये हुए कर्म्मको ही प्रधान कारण कहा करते हैं, दूसरे लोग दैवको ही कारण रूपसे वर्णन करते हैं; कितनेही लोग स्वभावकोही कारण कहते हैं। पौरुष और दैवकर्म्म स्वभावके अनुगत होकर फलदायक होते हैं; कोई कहते हैं, ये प्रत्येक पृथक् पृथक् कारण न होकर एक ही प्रधान रूपसे कारण हुआ करते हैं; दूसरे लोग कहते हैं इनका समुच्चय ही कारण है। आर्हत मतवाले घट पट आदि विषयोंकी अस्ति भी कहते हैं, और नास्ति भी मानते हैं; "अस्ति नास्ति" यह दोनों ही कहते हैं, और "अस्ति यह भी नहीं है," "नास्ति यह भी नहीं है,"—ऐसा ही कहा करते हैं, परन्तु योगी लोग परब्रह्मको ही सर्व्व कारण स्वरूपसे दर्शन करते हैं। त्रेता, द्वापर और कलियुगमें जो सब पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, उन्हें पापानुबन्धनसे श्रौतमतमें सदा ही संशय हुआ करता है, परन्तु सतयुगमें उत्पन्न हुए योगनिष्ठ तपस्वी लोग सदा ही संशयरहित होते हैं। कृतयुगमें सब कोई ऋक्, यज, साम, इन तीनों वेदोंमें भेद न देखके काम और द्वेष आदिको दूर करके केवल ज्ञानकी ही उपासना करते थे। जो लोग तपस्यारूपी धर्म्मसे युक्त तपमें रत और संशितव्रती होते हैं, वे मनहीमन जैसी अभिलाष करते हैं, तपोबलसे वह सब पा सकते हैं। जीव तपोबलसे ब्रह्म स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है तपस्याके सहारे उस ब्रह्मको प्राप्त किया जाता है, और ब्रह्मस्वरूप होनेपर भूतोंके ऊपर प्रभुता करनेकी सामर्थ हुआ करती है। वेददर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, वेद वाक्यके बीच यद्यपि ब्रह्मस्वरूप वर्णित हुआ है, तौभी वह अत्यन्त गहन है, ऐसा ही क्यों; वह वेदज्ञ पुरुषोंको भी दुर्ज्ञेय है; वेदान्त दर्शनमें एकमात्र विद्याके सहारे ब्रह्मको जाना जाता है, यही केवल व्यक्त रूपसे वर्णित हुआ है; भावनात्मक कर्म्म योगके जरिये ब्रह्मको लक्ष्य नहीं किया जाता। क्षत्रियोंकी पशु हिंसा, वैश्योंकी कृषिकर्म्म, शूद्रोंको तीनों वर्णोंकी सेवा और ब्राह्मणोंकी ब्रह्मोपासनाही यज्ञ-स्वरूप है। जिन लोगोंने स्वशाखोक्त वेदाध्ययनके जरिये सब कार्य्योंको समाप्त किया है, वेही द्विज होते हैं; जो सब भूतोंमें समदर्शी हैं, वे दूसरे कर्म्म करें वा न करें उन्हें ही ब्राह्मण कहा जाता है। सतयुग और त्रेतायुगमें सब वेद यज्ञ और वर्णाश्रम थे, द्वापरयु-

गमें मनुष्योंकी अल्प आयु होनेसे सब वेद आदि लुप्त होते चले आते हैं। द्वापर और कलियुगमें सब वेद नष्टप्राय होते हैं द्वापरमें सब वेद दीखते हैं, कलियुगमें सब न दीखेंगे। कलियुगमें अध-र्म्मसे पीड़ित होकर धर्म्म और गऊ भूमि, जल और औषधियोंका रस नाश होरहा है। सब वेद वेदोक्त धर्म्म, स्वधर्म्मस्थ आश्रम और स्थावर तथा जङ्गम जीवन अधर्म्मके जरिये अन्तर्हित होकर विकृतभाव लाभ करता है। जैसे वर्षा पार्थिव मूर्त्तोंकी पुष्टिसाधन करती है, वैसे ही वेद युगयुगमें वेद पढ़नेवालोंकी पुष्टिसाधन किया करता है। जिसका अनेकत्व और अनादि निधनत्व निश्चित है, और जो प्रजास-मूहके प्रभव और प्रलयका कारण है, उसे मैंने पहले वर्णन किया है। जो काल, जीवोंकी उत्पत्ति और लयका स्थान और अन्तर्य्यामी है; जिसमें सुख दुःख आदि द्वन्द्वयुक्त बहुतसे जीवस्वभावसे ही निवास करते हैं, उस कालका विषय भी कहता हूं। हे तात! तुमने मुझसे जो पूछा था, मैंने उसही सृष्टि, काल, सन्तोष, सब वेद, कर्त्ता कार्य्य और क्रियाके समस्त फलको वर्णन किये।

२३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, शुकदेवने महर्षि वेदव्यासका ऐसा वचन सुनके उनके उपदेशकी प्रशंसा करते हुए मोक्ष धर्म्मार्थयुक्त इस वक्ष्यमाण वचनको पूछनेकी इच्छा की।

शुकदेव बोले, बुद्धिमान श्रोत्रिय विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले ऋदप्रज्ञ और अनुसूयक ब्राह्मण प्रत्यक्ष और अनुमानके जरिये अज्ञात तथा अनिर्द्देश्य ब्रह्मको किस प्रकार जान सकते हैं; तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सर्व्वत्याग अथवा धारणायुक्त बुद्धिके जरिये यदि उसे जाना जाय और उसका विषय सांख्य वा पातञ्जल शास्त्रमें निरूपित रहे, तो मैं उसे पूछता हूं, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। मनुष्य जैसे उपायके जरिये मन और इन्द्रियोंकी उस प्रकार एकाग्रता लाभ करें, आप उसकी ही व्याख्या करिये।

व्यासदेव बोले, विद्या तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और सर्व्व संन्यासके बिना कोई भी सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ नहीं है। सब महाभूत स्वयम्भू ईश्वरकी प्रथम सृष्टि है, प्राणिसमूहों तथा शरी-राभिमानी मूढ़ जीवोंमें वह भूयिष्ठरूपसे निविष्ट है शरीरधारियोंके भूमिसे देह, जलसे स्नेह, अग्निसे दोनों नेत्र, वायुसे पञ्चप्राण और आका-शसे अवकाश भाग हुआ करता है। पातञ्जल मतसे आत्मा केवल सुख दुःखका भोक्ता है, कर्त्ता नहीं है। सांख्य मतसे आत्मा भोक्ता वा कर्त्ता कुछ भी नहीं है; इसलिये सांख्य मतके सिद्धा-न्तसे पातञ्जल मत इस प्रकार दूषित होता है, कि पादेन्द्रियके देवता विष्णु, हाथके अधिष्ठाता इन्द्र हैं, अग्नि उदरके भीतर रहके भोजनकी इच्छा किया करती है। सब दिशा श्रवणेन्द्रि-यकी देवता हैं, और वागिन्द्रियकी, अधिष्ठात्री सरस्वती है। जैसे सेना राजकीय रथ शकट आदिको चलाया करती है और जैसे राजा अभि-मानके वशमें होके अपनेमें सेनाकी ह्रास वृद्धि आदि आरोपित करता है, वैसे ही चिदात्मा इन्द्रिय और उसके अधिष्ठात्री देवतागत भोक्तृत्व स्वच्छक आदिको अविद्याके वशमें होकर आत्मामें आरोपित कराया करता है अर्थात् "मैं भोगवान मैं स्वच्छ हूं" इत्यादि वचन आरो-पमात्र हैं। जैसे सेनाकी पराजय होनेसे राजा की हार होती है, वैसे ही विष्णु आदि अधि-ष्ठात्री देवता लोग भी भोक्ता नहीं हैं, आत्मामें अविद्याके कारण भोक्तृत्व भान हुआ करता है, वास्तवमें आत्मा कर्त्ता वा भोक्ता नहीं है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पांचों शब्द आदि ज्ञान साधनके निमित्त द्वाररूप है दर्शनीय इन्द्रिय कहके वर्णित हुआ करते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचों इन्द्रिय विषयोंको सदा ही इन्द्रियोंसे स्वतन्त्र जानना चाहिये। जैसे सारथी घोड़ोंको वशमें करके नियमित करता है, वैसे ही मन इन्द्रियोंको सदा कार्य्योंमें नियुक्त किया करता है, और अन्तःकरण उपाधिक जीव सदा मनको नियमित करता है। जैसे मन सब इन्द्रियोंको उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण है, वैसेही हृदयमें स्थित जीव चैतन्य मनकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ है; इन्द्रियें, इन्द्रियोंके विषय, बाह्य वस्तुयें सर्द्दी, गर्म्मी आदि धर्म्म स्वरूप स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान और चैतन्य देहधारियोंके हृदय गुफाके बीच सदा ही वर्त्तमान है। प्रागुक्त देह बुद्धिका अवलम्ब है, ऐसा सम्भव नहीं होता; स्वप्रकाशके शरीरकी भांति उक्त देहका केवल भान मात्र हुआ करता है; इसलिये सत, रज, तम यह त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति ही बुद्धिका अवलम्ब है, चेतना बुद्धिका अवलम्ब वा स्वरूप नहीं है; क्योंकि बुद्धि ही वासनाको उत्पन्न करती है, गुणोंको उत्पन्न करनेके विषयमें बुद्धि कभी कारण नहीं है। इस ही प्रकार चिदात्मा इन्द्रियादि षोड़श गुणोंके जरिये पूरित होकर देहमें निवास करता है। मनको निग्रह करनेवाले ब्राह्मण मनके जरिये बुद्धिसे आत्माको देखते हैं इस आत्माको नेत्रसे नहीं देखा जाता, सब इन्द्रियोंके सहारे भी उसे जाननेको सामर्थ नहीं होती; महान आत्मा मानस प्रदीपके जरिये प्रकाशमान होता है। वह न शब्द है, न स्पर्श है; न रूप है, न रस है और न गन्ध ही है; वह अव्यय और इन्द्रिय रहित है; उसके स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर नहीं हैं, तौभी उसे शरीरके बीच देखे। मरण धर्म्मयुक्त समस्त शरीरोंमें जो अव्यक्त रूपसे निवास करता है, उसे जो पुरुष गुरुवचन और वेदवाक्यके अनुसार अवलोकन करता है, शरीर त्यागनेके अनन्तर उसका ब्रह्मके सङ्ग निर्व्विशेष भाव लाभ होता है। पण्डित लोग विद्वान सतकुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण और गऊ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें ब्रह्मदर्शन किया करते हैं; जिसने यह सब जगत बनाया है, वह एक ही महान् आत्मा स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें स्थिति करता है। हृदयाश्रित जीव जब सब भूतोंमें आत्माको परिपूर्ण देखता है, और निष्कलङ्क आत्मामें सब भूतोंको लीन देखता है, उस समय उसे ब्रह्मल लाभ होता है। वेदके आत्मशब्द स्वरूपसे जितने देश वा कालका प्रमाण होता है, जीवात्मा उतने ही देशकालके अनुसारसे अधिष्ठान भूत स्व-स्वरूप परमात्मामें प्रतिष्ठित होता है। जो सदा इस ही प्रकार ध्यान करते हैं, वे अमृत लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। सब भूतोंके हितमें रत पदरहित योगीके पदकी अभिलाषी होके उसके अन्वेषणमें देवता भी मोहित हुआ करते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलमें मछलियोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, ब्रह्मज्ञानियोंकी गति भी वैसी ही है। काल स्वयं अपनेमें सब भूतोंका परिणाम करता है, परन्तु काल जिसमें परिणत होता है, इस जगतमें कौन पुरुष उस परमात्माको जान सकता है। मुक्त स्वरूप परब्रह्मको ऊपर, नीचे, तिर्य्यग और मध्यदेशी भेदसे किसी स्थानमें भी किसी भांति नेत्र आदि इन्द्रियोंके विषय करनेमें किसीको सामर्थ नहीं है। यह समस्त लोग उस मुक्त स्वरूपके अन्तर्गत हैं; इन सब लोगोंका कुछ भी बाह्यज्ञान नहीं है। मनके समान शीघ्रगामी होकर यदि कोई मनुष्य धनुषसे छूटे हुए बाणकी भांति निरन्तर गमन करे, तौभी वह परम कारणका अन्त देखनेमें समर्थ न होवे। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, और उससे स्थूल और कुछ भी नहीं है। उस परम कारण परब्रह्मके हाथ, पांव सब दिशामें ही विद्यमान हैं, उसके नेत्र शिर और

सुख सब तरफ ही प्रकाशमान हैं, वह समस्त जगत्‌को परिपूरित करके निवास कर रहा है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्‌से भी महत् है, उसमें ही सब भूत लीन हुआ करते हैं, वह सदा निश्चल भावसे निवास करता है, तौभी किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता, अक्षर और क्षर रूपसे आत्माका द्वैधी भाव है, वह जो स्थावर जङ्गम आदि भूतोंमें बिनाशि जड़रूपसे निवास करता है वही क्षर स्वरूप और दिव्य अमृत अबिनाशी चैतन्य ही अक्षर स्वरूप है। अचञ्चल उपाधि दोषके जरिये अनभिभूत स्थावर जङ्गम सब भूतोंके नियन्ता ईश्वर, महत् अहंकार, पञ्चतन्मात्र, अबिद्या और कर्म्म, ये अहंकार धर्म्म कामके नवद्वारसे युक्त गृहमें गमन करते हैं, इसहीसे वह हंस नामसे बर्णित होता है। तत्वदर्शी ऋषि लोग कहा करते हैं, कि जन्म रहित ईश्वरके शरीरमें भीतर गये हुए पहले कहे हुए महदादि सम्बन्धीय हानि अंग और विविध कल्पनाके संग्रह निबन्धनसे हंसत्वकी सिद्धि होती है। 'हंस' इस पदसे जो अक्षर ब्रह्म कहा जाता है, कूटस्थ चैतन्य भी वही अक्षर ब्रह्म है इसमें कुछ भी भेद नहीं है; इसलिये तत्वज्ञानी मनुष्य उस अक्षर ब्रह्मको जानके प्राण और जन्म परित्याग करते हैं, अर्थात् जन्मके कारण अबिद्याके बिनाश निबन्धनसे वह कैवल्य लाभ किया करते हैं।

२३८ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हे सत्पुत्र! तुमने जो सांख्यज्ञान संयुक्त ज्ञानका बिषय पूछा था, मैंने उसे प्रकृत रूपसे यथावत् बर्णन किया; अब योगियोंका जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। हे तात! बुद्धि, मन, इन्द्रिय और सर्व्वव्यापी आत्माका एकत्व ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है; चित्त जीतनेवाले, दान्त, अध्यात्म बिषयोंके अनुशीलन युक्त आत्माराम यम नियममें निष्ठावान् शास्त्र तत्वज्ञ पुरुषको आचार्य्यके मुखसे उक्त ज्ञानके बिषयको जानना उचित है। काम, क्रोध, लोभ, भय, और स्वप्न, इन पाचोंको पण्डित लोग योगदोष कहा करते हैं; धीर पुरुष ऊपर कहे हुए पांचो दोषोंको नष्ट करके शम गुणके जरिये क्रोधको जीतते हैं। सङ्कल्पकी त्यागके कामको बिजय करनेमें समर्थ होते हैं और बुद्धिके अनुशीलनसे निद्राका नाश करनेके योग्य हुआ करते हैं; धैर्य्यके जरिये व्यभिचार आदिसे शिश्न और उदरकी रक्षा करते हैं; नेत्रसे कांटे आदिकोंसे हाथ पांवको रक्षा करनेमें सावधान रहते हैं, मनके जरिये पर-स्त्री दर्शन आदिसे नेत्र और कानकी सावधानता सम्पादन करते हैं; यत्नादि कर्म्मोंसे बुरी चिन्तासे मन और बचनकी रक्षा किया करते हैं; अप्रमादसे भय और प्राज्ञ पुरुषोंकी सेवा निबन्धनसे दम्भ परित्याग करते हैं। योगी लोग सदा अतन्द्रित होकर इस ही प्रकार पूर्व्वोक्त योग दोषोंको जय करें, अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करें, देवताओंके निकट प्रणत होवें; हिंसायुक्त मनकी भङ्ग करनेवाले अमङ्गल बचन त्याग दें। प्रधान बीजभूत प्रकाशात्मक सतोगुण प्रधान महत्तत्व ही ब्रह्मस्वरूप है। ये सब स्थावर, जङ्गम, जीव जिस बीजके सारस्वरूप हैं; वही समस्त जगत् निरीक्षण करता है। ध्यान, अध्ययन, सत्यबचन लज्जा, शीलता सरलता, क्षमा, शौच, शुद्ध आचार और इन्द्रियनिग्रह, इन सबके जरिये सत्वोत्कर्ष होनेपर तेजकी बढ़ती और पाप नाश होता है। जो लोग ऐसा आचरण करते हैं उनकी सब कामना सिद्ध होती और तत्वज्ञान उत्पन्न होता है। जो योगी सर्व्वभूतोंमें समदर्शी यदृच्छा लाभसे सन्तुष्ट, पापरहित, तेजस्वी, लघु भोजन करनेवाले और जितेन्द्रिय होवे, वह काम, क्रोधको बशमें करके महत्त-

त्वके आस्पद लय स्थान प्रकृतिको वशमें करनेकी अभिलाष करें ; समाहित होकर मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता सिद्ध करके पूर्व्वरात्रि और अपर रात्रिके अर्द्धभागमें बुद्धिमें मनकी धारणा अर्थात् सङ्कल्पात्मक मनका निरोध करे। पञ्चेन्द्रिययुक्त जीवका एक ही इन्द्रिय छिद्र यदि चरित् हो, तो चर्म्ममय कोषके छिद्रसे जल निकलनेकी तरह उसकी शास्त्र जनित बुद्धि विषय प्रवणता निबन्धनसे चीण हुआ करती है। जैसे मत्स्यजीवी मछुवाहे जाल दंशन करनेमें समर्थ मछलीकी अगाड़ी बांधते हैं, वैसे ही योगवित् यती पहले मनको निग्रह करे, अनन्तर कान, नेत्र, जीभ और नासिकाकी संयम करके उन्हें मनके बीच स्थापित करनेमें यत्नवान होवे, अन्तमें जब मन सब सङ्कल्पोंको परित्याग करे। योगी पुरुष पञ्च इन्द्रियोंको ध्येय वस्तुकी ओर ले जा करके मनमें स्थापन करनेमें यत्नवान होवे। जब मनके सहित पञ्चइन्द्रिय बुद्धिके बीच स्थिति करके लयको प्राप्त होकर संङ्कल्प जनित कलुषता परित्याग करती हैं; तब उस निर्म्मल अन्तःकरणमें ब्रह्म प्रकाशमान होता है। धूम रहित अग्नि प्रकाशमान सूर्य्य और आकाशमें स्थित बिजलीकी अग्निकी भांति उस समय आत्मा बुद्धिके बीच दीख पड़ता है। उस समय उस महान् आत्मामें अहंकार आदि सब बिकार दिखाई देते हैं, और वह भूमात्मा कारण रूपसे सर्व्वव्यापक होनेसे सर्व्वत्र दीखती है। जो सब महानुभाव मनीषी ब्राह्मण लोग धृतिमान महाप्राज्ञ और सब भूतोंके हितमें रत हैं, वेही उस आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं। योगयुक्त पुरुष पूर्णरीतिसे तीक्ष्ण नियम अवलम्बन कर अकेले निर्ज्जन स्थानमें बैठके छः महीनेतक ऐसा ही आचरण करनेसे मुक्त हुए शुद्ध आत्मस्वरूपकी समता लाभ करते हैं। तत्त्ववित योगी लय, विक्षेप कषाय, घ्राण, श्रवण, दर्शन, रस, स्पर्श, शीत, उष्ण, शीघ्रगति, समस्त शास्त्रार्थभान और दिव्य अङ्गना आदि अद्भुत विषयोंको योगबलसे प्राप्त करके अन्तमें उन सबका अनादरकर बुद्धिके बीच उन्हें संहार करें ; क्यों कि बुद्धि कल्पित बिषयोंका बुद्धिमें ही लय होना योग्य है। प्रातःकाल पूर्व्व रात्रि और अपर रात्रिमें नियमनिष्ठ योगी पहाड़की शिखर बद्धमूल वृक्षके नीचे अथवा वृक्षके पुरोभागमें योगाभ्यास करे। वह इन्द्रियोंको सब तरहसे नियमित करके इस प्रकार हृदय पुण्डरीकमें एकाग्र भावसे नित्य वस्तुकी चिन्ता करे, जैसे धनकी प्राप्तिमें रत विषय लोभी मनुष्य धनकी चिन्ता करता है ; योगसे कभी मनको उद्विग्न न करे। योगयुक्त उपायसे चञ्चल चित्तको पूर्णरीतिसे नियमित करनेमें समर्थ होवे, उस ही उपायको अवलम्बन करे, उससे कभी विचलित न होवे ; वह एकाग्र होकर जनशून्य गिरिगुफा, देवस्थान और सूने गृहमें वास करनेकी इच्छा करे। ऐसा योगी पती परिग्रह न करे, केवल मन, वचन और धर्म्मसे सब विषयोंमें उपेक्षा करते हुए यताहारी होकर प्राप्त और अप्राप्त बिषयोंमें समदर्शी होवे। जो पुरुष ऐसे योगीको अभिनन्दित करता है, अथवा जो पुरुष उसकी निन्दा करे, वह उन दोनोंके शुभाशुभकी चिन्ता न करे। योगी पुरुष लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट न होवें, वह वायुके समान धर्म्मात्मा होकर सब भूतोंको समभावसे देखें। इस ही भांति छः महीनेतक नित्य योगयुक्त सर्व्वत्र समदर्शी स्वस्थचित्तवाले साधु पुरुषोंके निकट शब्द ब्रह्म पूर्णरूपसे प्रकाशित होता है। मृत, पिण्ड पत्थरके टुकड़े और सुवर्णमें समदर्शी योगी प्रजासमूहकी पीड़ासे आर्त्त देखकर इस प्रकारके योगमार्गसे विरत और मोहित न होवें ; बल्कि बित्त उपार्ज्जन आदिसे बिरत रहें, नीच वर्ण शूद्र भी यदि इस मार्गमें पदार्पण करे

और धर्म्मकी इच्छा करनेवाली स्त्री भी यदि योगाभ्यासमें रत होवें, तो वे भी इस योग अवलम्बनके जरिये परम गति पावें। साधु लोग मन और बुद्धियुक्त निश्चल इन्द्रियोंके जरिये जो जन्मरहित जरा विवर्ज्जित प्राचीन सनातन पुरुषको लक्ष्य करते हैं; वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महत्से भी महत् है, चित्त जय करनेवाले योगी उस मुक्त स्वरूपको बुद्धिबलसे देखा करते हैं। महानुभाव महर्षियोंके यथावत वर्णित यह वाक्य गुरुवचनके समान शब्द और अर्थसे जानके उसे स्वयं युक्तिके जरिये परीक्षा करके शुद्धचित्तवाले मनीषि लोग भूतसंप्लव पर्य्यन्त चतुर्मुखकी समताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रलयकालतक ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके सहित समान भोगके भागी हुआ करते हैं।

२३८ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, वेदवाक्यके बीच "कर्म्म करो और कर्म्म परित्याग करो," यह जो विधि निषेध है, उसमेंसे विद्याके जरिये लोग किस ओर गमन करते हैं, इसे ही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये। परस्पर वैरूप्ययुक्त ये दोनों मार्ग प्रतिकूल भावसे वर्त्तमान हैं।

भीष्म बोले, पराशरनन्दन वेदव्यासने पुत्रका ऐसा वचन सुनके उसे यह उत्तर दिया,—हे तात! कर्म्ममय और ज्ञानमय, नश्वर और अविनश्वर दोनों पथके विषयकी व्याख्या करता हूं; सब लोग विद्याके सहारे जिस ओर गमन करते हैं, तुम एकाग्रचित्त होकर उस विषयको सुनो, इन दोनोंका अन्तर आकाशकी भांति अत्यन्त गम्भीर है। आस्तिक लोग "धर्म्म है" ऐसा वचन कहते हैं, नास्तिक लोग "धर्म्म नहीं है" ऐसा कहा करते हैं। उसके बीच नास्तिक और आस्तिकके तारतम्य पूछनेसे आस्तिकके पक्षमें वह जिस प्रकार क्लेशयुक्त होजाता है, मेरे पक्षमें भी यह उस ही प्रकार होरहा है, सब वेद जिसमें प्रतिष्ठित होरहे हैं, वह मार्ग दो प्रकारका है; प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म और निवृत्ति लक्षण धर्म्म उत्तम रीतिसे वर्णित है।

जीव कर्म्मके जरिये बद्ध होता और विद्यासे मुक्त हुआ करता है, इसलिये तत्वदर्शी योगी लोग कर्म्म करनेमें अनुरक्त नहीं होते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके जरिये मरनेके अनन्तर फिर शरीर धारण करता है और विद्वान् पुरुष ज्ञानके जरिये नित्य अव्यक्त अव्यय स्वरूपसे प्रकट होते हैं, कोई कोई अल्पबुद्धिमें रत मनुष्य कर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, इससे वे स्त्री, पुत्र आदि परिवारमें आसक्त होकर कर्म्मकी ही उपासना करनेमें रत होते हैं, जो सब धर्म्ममें निपुण मनुष्योंने श्रेष्ठबुद्धि लाभ की है, वे इस प्रकार कर्म्मकी प्रशंसा नहीं करते, जैसे नदीके जलको पीनेवाले मनुष्य कूएंका पानी पीकर उसकी प्रशंसा नहीं करते। कर्म्मशील मनुष्य कर्म्मके फल सुख, दुःख और जन्म, मृत्यु पाते हैं, और ज्ञानी लोग विद्याके सहारे उस स्थानको पाते हैं, जहां पर जानेसे शोक नहीं करना पड़ता; वहां पर जानेसे जन्म और मृत्यु नहीं होती और फिर दूसरी बार जन्म नहीं लेना पड़ता। जिस स्थानमें विशेष विज्ञानभावसे जीव लयको प्राप्त होता है, जिस स्थानमें अव्यक्त, अचल, नित्य, अविस्पष्ट, अक्लेश, अमृत, अवियोगी परब्रह्म विराजमान है; जिस स्थानमें सुख दुःख और मानस कर्म्मोंसे कुछ बाधा नहीं होती वहां सब भूतोंमें समदर्शी और सब प्राणियोंके हितमें रत महात्मा लोग निवास किया करते हैं।

हे तात! विद्यामय पुरुष स्वतन्त्र हैं, और कर्म्ममय पुरुष स्वतन्त्र हैं; कर्म्ममयके बीच सम्वत्सराख्य प्रजापति श्रेष्ठ हैं। प्रति महीनेमें

घटती बढ़तीयुक्त और अमावस्या तिथिमें सूक्ष्म कलासे स्थित चन्द्रमाकी भांति कर्म्ममय पुरुषोंकी ह्रास वृद्धि हुआ करती है। बृहदारण्यकदर्शी याज्ञवल्क्यने आकाशमें बंक्रतन्तुकी भांति स्थित नवीन चन्द्रमाको देखकर इस विषयमें बहुतसी युक्तिपूरित उक्ति प्रकाश की है वह उनके वचनके जरिये अनुमित होती है। हे तात! मनके सहित दशों इन्द्रिय, ये एकादश विकारात्मा कलाके सहित उत्पन्न मूर्त्तिमान विराजमान चन्द्रमाको कर्म्म-गुणात्मक समझो। कमल पुष्पके बीच जलकी बंद समान वह जीव उपाधियुक्त मनके बीच जो द्योतमान चित्प्रकाश संश्रित होरहा है, और उस योग निरुद्ध चित्त जीवको क्षेत्रज्ञ समझना चाहिये। तम, रज और सत्व, इन तीनों गुणोंको विज्ञानमय किसी जीवका गुण जानना चाहिये। विज्ञानमयको आत्मगुण अर्थात् चिदाभास गुण चैतन्य उससे युक्त समझे; चिदाभास आत्माको परमात्माके गुण ज्ञान और ऐश्वर्य्य आदिसे संयुक्त जाने। शरीर स्वयं अचेतन होनेपर भी जीवके गुण चैतन्यके संयोगसे सचेतन होकर हाथ पांव चलाते हुए जीवित होता है। जिन्होंने भुर्लोक, भुवर्लोक आदि सातों भुवनको बनाया है, पण्डित लोग उसे ही जीवसे परम श्रेष्ठ कहा करते हैं।

२४० अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, प्रकृतिसे चौबीस तत्त्वात्मक जो साधारण सृष्टि है, उसे और विषययुक्त इन्द्रियों तथा बुद्धिकी सामर्थ आदि जो कुछ असाधारण उत्तम सृष्टि है, वह भी आत्माकी सृष्टि है,—यह मैंने सुना। सम्प्रति इस लोकमें युगके अनुसार जो सब सद्व्यवहार प्रचलित हैं, जिसके जरिये साधु लोग उसके आचरणमें प्रवृत्त होते हैं, मैं फिर उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं। वेदके बीच कर्म्म करने और कर्म्म परित्यागका वचन वर्णित है; परन्तु इन दोनोंके अविरोध विषय विभागके जरिये विचार कर किस प्रकारसे मालूम करूं; आप इस होकी व्याख्या करिये मैं गुरुके उपदेशसे धर्म्माधर्म्म मूलक लौकिक रीतिको यथार्थ रीतिसे जानके धर्म्मानुष्ठानके जरिये पवित्र होकर और बुद्धिका संस्कार करके देह छोड़ कर अव्यय परमात्माका दर्शन करूंगा।

व्यासदेव बोले, कर्म्मके सहारे बुद्धिका संस्कार करनेसे आत्मदर्शन हुआ करता है, पहले प्रजापतिने स्वयं इस व्यवहारका विधान किया है, और पहलेके साधु महर्षि लोग भी वैसा ही आचरण कर गये हैं। परमर्षि लोग ब्रह्मचर्य्यसे सब लोकोंकी जय किया करते हैं जो मनके जरिये बुद्धिसे अपने कल्याणकी इच्छा करें, वे बनवासी और फलमूलभोजी होकर अत्यन्त तपस्याचरण करके पवित्र आश्रमोंमें विचरते हुए सब भूतोंमें दयायुक्त होकर धूप रहित मूषक शब्द बर्ज्जित वाणप्रस्थ आश्रममें यथा समय भिक्षा प्राप्त करके ब्रह्मत्त्व लाभ कर सकेंगे। तुम निस्तुति और निर्नमस्कार होके शुभाशुभ परित्याग कर जिस किसी वस्तुसे होसके, उस हीसे तृप्ति लाभ करके वनके बीच अकेले ही विचरो।

शुकदेव बोले, "कर्म्म करो, और कर्म्म परित्याग करो," ये वेद वचन जो लौकिक वचनसे विरुद्ध होरहे हैं, इन दोनोंके प्रमाण वा अप्रमाण विषयमें किस प्रकार शास्त्रत्त्वकी सिद्धि हो सकती है। इससे पूर्व्वोक्त तीनों वचनोंके प्रमाणकी सिद्धिके लिये व्यवस्था करनी उचित है। उन दोनों वाक्योंका ही किस प्रकार प्रमाण हो और सब कर्म्मोंके अविरोधसे किस प्रकार मोक्ष हुआ करता है, इसे हो मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, "योजनगन्धापुत्र महर्षि वेदव्यासने कर्म्मके जरिये चित्तशुद्ध करके आत्माका

दर्शन करूंगा,"—अपरिमित तेजसेयुक्त निज पुत्रके इस वचनकी अत्यन्त प्रशंसा करके उसके पूर्व्व प्रश्नके अनुसार वच्यमाण रीतिसे यह उत्तर दिया।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचारी, गृहस्थ वाणप्रस्थ और भिक्षुक ये सब निज आश्रम विहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेसे मोक्ष लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, अथवा जो लोग कामद्वेषसे रहित होके अकेले ही इन चारों आश्रमोंका विधिपूर्व्वक अनुष्ठान करते हैं, वह ब्रह्मविषयमें ज्ञानवान् होनेके योग्य हुआ करते हैं। ब्रह्म-प्राप्तिके विषयमें यह चतुष्पदी अधिरोहिणी प्रतिष्ठित है, इस ही निःश्रेणीमें चढ़के लोग ब्रह्मलोकमें जाते हैं। ब्रह्मचारी असूयारहित और धर्म्मार्थवित् होकर परमायुके चौथे भागके पहले भागमें गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप वास करे। गुरुके गृहमें जघन्य शय्यापर शयन करते हुए पहले उठके शिष्य अथवा सेवकका जो कुछ कार्य्य हो, वह सब सम्पन्न करे; कर्त्तव्य कर्म्मोंके सिद्ध होने पर गुरुकी बगलमें खड़ा रहे, सब कार्य्य जाननेवाला सेवक और सब कर्म्मोंका करनेवाला होवे। शेष कर्म्मोंको समाप्त करके ज्ञानकी इच्छा करनेवाला शिष्य गुरुके समीप पढ़े; सरल और अपवादरहित होवे; गुरुके आवाहन करनेसे उसका आश्रय ग्रहण करे; पवित्र निपुण और गुणयुक्त होकर बीच बीचमें प्रियवचन कहे। जितेन्द्रिय और सावधान होकर स्निग्ध नेत्रसे गुरुको देखे। जबतक गुरु भोजन कर न चुकें, तबतक भोजन न करे, उनके बिना जल पीये, जल न पीवे, बिना बैठे उपविष्ट न होवे और बिना निद्रित हुए शयन न करे। दोनों हाथोंको नीचे ऊपर करके गुरुके दोनों पावोंको कोमलभावसे स्पर्श करे, दहने हाथसे दहने पांव और बायें हाथसे बायें चरणकी वन्दना करे। गुरुको प्रणाम करके कहे, हे भगवन्! शिष्यकी शिक्षा-दान करिये; मैं यह करूंगा, इसे किया है; हे भगवन्! दूसरी बार आप जो आज्ञा करेंगे, वह भी करूंगा, इसी प्रकार सब विषयोंमें आज्ञा लेकर और विधिपूर्व्वक निवेदन करके सब कार्य्य करे, कार्य्य समाप्त करके फिर गुरुके समीप सब विषयोंका निवेदन करे, ब्रह्मचारी जिन सब गन्ध रसोंको सेवा नहीं करते, समावृत अर्थात् ब्रह्मचर्य्य कर्म्म समाप्त होनेपर समावर्त्तन संस्कारके जरिये संस्कारयुक्त होके उन सब विषयोंको सेवन करे, यह धर्म्मशास्त्रमें निश्चित है। ब्रह्मचारीके पक्षमें जो कुछ नियम हैं, उसे विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, ब्रह्मचारी सदा उसहीका आचरण करे और सदा गुरुकी सेवा करनेमें तत्पर रहे। इस ही प्रकार गुरुको शक्तिके अनुसार प्रसन्न करके शिष्य होकर कर्म्मके जरिये ब्रह्मचर्य्य आश्रमसे निकलकर दूसरे आश्रममें निवास करे। वेदाध्ययन, व्रत और उपवाससे आयुका प्रथम भाग बीतने पर गुरुको दक्षिणा देकर विधिपूर्व्वक समावृत होके अर्थात् गुरुगृहसे लौटके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। फिर धर्म्मसे प्राप्त हुई दारा परिग्रह करके यत्नके सहित तीनों अग्निको उत्पन्न करते हुए गृहमेधी और व्रती होकर परमायुका दूसरा भाग बितानेके लिये गृहमें वास करे।

२४१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष धर्म्मपत्नीयुक्त और सुव्रती होके अग्नि लाकर आयुके दूसरे भागके गृहमें निवास करे। कवियोंने गृहस्थको चार प्रकारकी वृत्तिका विधान किया है, उसमेंसे पहले कुशूल धान्य अर्थात् तुच्छ धान्यके जरिये जीविका निर्व्वाह करे। दूसरा कुम्भ धान्य अर्थात् घड़े परिमित धान्य सञ्चय करके वृत्ति स्थापित करे, तीसरा अश्वस्तन अर्थात् दूसरे दिनके लिये, सञ्चय न करे। चौथा कापोती अर्थात् उञ्छवृत्ति

अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करे। इन-मेंसे धर्म्मके अनुसार जो जिसके अनन्तर वर्णित हुए, वेही उससे अधिक न्यायान और धर्मजित्तम हैं, गृहस्थ पुरुष यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, इन षट् कर्म्मोंको अवलम्बन करके वर्त्तमान रहे, कोई दान और अध्ययन,इन दोनों कर्म्मोंका आसरा करके निवास करें और चौथे आश्रमी केवल ब्रह्मसत्र अर्थात् प्रणवकी उपासनामें रत रहें, इस समय गृहस्थोंके सुन्दर और महत् व्रत कहे जाते हैं। गृहस्थ पुरुष अपने लिये अन्न पाक न करावे और वृथा हत्या न करे। बकरे आदि प्राणी हो होवें अथवा अश्वत्थ आदि अप्राणी हो हो सबका ही यजुर्वेदीय छेदन मन्त्रसे संस्कार करना होगा। गृहस्थ पुरुष दिनके समय, रात्रिके आरम्भ और रात्रिकी समाप्तिमें कभी न सोवे ; दिन और रात्रिमें भोजनका जो समय निर्दिष्ट है, उसके मध्यमें फिर भोजन न करें ; ऋतुकालके अतिरिक्त भार्य्यासे सङ्ग न करे। गृहमें आके कोई ब्राह्मण अनादृत और अभुक्त रहके वास न करे,—इस विषयमें गृहस्थको सावधान होना योग्य है ; अथिति लोग सदा सत्कारयुक्त होके हव्यकव्य ढोते हुए निवास करें ; वेद-स्नान रत, व्रतस्नात स्वधर्म्मजीवी दान्त क्रियावान, तपस्वी, श्रोत्रियोंके अर्हणाके निमित्त हव्यकव्यका करना सदा ही योग्य है। दम्भके निमित्त नख लोम धारण करनेवाले, स्वधर्म्म ज्ञापक, अविधिसे अग्निहोत्र त्यागनेवाले, और बड़े लोगोंके अप्रियकार्य्य करनेवाले चाण्डाल आदि जीवोंका भी गार्हस्थ्य धर्म्ममें संविभाग है, ब्रह्मचारी सन्न्यासी आदि जिन्हें स्वयं पाक करना निषिध है, गृहमेधी मनुष्य उन्हें अन्नदान करें।

गृहस्थ पुरुष सदा विघसाशी और अमृत भोजी होवें, यज्ञसे शेष बचे हुए हविके सहित भोजनको अमृत कहा जाता है, और जो लोग सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करते हैं, पण्डित लोग उसे ही विघसाशी कहते हैं ; इसलिये यज्ञसे शेष भोजनका नाम अमृत और सेवकोंके भोजन करनेके अनन्तर जो भोजन किया जाता है, वह विघस पद वाच्य हुआ करता है। गृही मनुष्य स्वस्त्रीमें रत, दान्त, असूयारहित और जितेन्द्रिय होकर ऋत्विक पुरोहित, अतिथि, आश्रित लोग, वृद्ध, बालक आतुर, आचार्य्य मामा, वैद्य, स्वजन सम्बन्धी बान्धव, माता, पिता, बहिन अथवा सगोत्रा स्त्रियां, भ्राता, भार्य्या, पुत्र, कन्या और सेवकोंके सहित विवाद न करे। इन सब लोगोंके संग अंश आदिके निमित्त झगड़ा परित्याग करनेमें मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग इन सब विवादोंके विषयोंको जय करते हैं वे सब लोकोंको निःसन्देह जय करनेमें समर्थ होते हैं। पूरी रीतिसे आचार्य्यकी सेवा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ; पिताके पूजित होनेसे मनुष्य प्रजापति लोक प्राप्तिके प्रभु हुआ करते हैं ; अतिथियोंके सत्कार युक्त होनेसे इन्द्रलोक प्राप्त होता है ; ऋत्विकोंके पूजित होनेसे देव-लोक मिलता है ; कुलकी स्त्रियोंके सम्मानित होनेसे अप्सरा-लोकमें वास होता है ; स्वजनोंके आदरयुक्त होनेसे वैश्वदेव लोकमें निवास हुआ करता है ; सम्बन्धी बान्धवके सत्कारयुक्त होनेसे सब दिशामें यश फैलता है, माता और मामाके पूजित होनेसे भूलोकमें कीर्त्ति हुआ करती है, वृद्ध, बालक आतुर और कृश आदिके आदर करनेसे आकाशमें गति प्राप्त होती है। बड़ा भाई पिताके समान है, भार्य्या और पुत्र निज शरीर स्वरूप हैं ; दास दासी निज परछांईके समान हैं, और कन्या अत्यन्त कृपापात्री है ; इस लिये इन सबके जरिये उत्यक्त होनेपर भी गृह-धर्म्म परायण, विद्वान्, धर्म्मशील, जीतक्लम पुरुष क्रोधरहित होकर सदा उसे सहे। कोई धार्म्मिक मनुष्य धन लाभके लिये अग्निहोत्र आदि कर्म्म न करे ; उञ्छशिल और कपोतव्रत

भेदसे गृहस्थकी तीन प्रकारकी वृत्ति है ; उसके बीच उत्तरोत्त वृत्तिही कल्याणकारी है । ऋषि लोग ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रमोंके उत्तरोत्तरको श्रेष्ठ कहा करते हैं । आश्रमोंके सब कार्य्योंको प्राप्त करनेको जो लोग इच्छा करते हैं, वे यथोक्त नियमोंका अवलम्बन करें, अथवा कुम्भधान्य वा उच्छशिल वृत्तिके जरिये कपोतीवृत्ति अवलम्बन करें । ऐसे पूजनीय पुरुष जिस देशमें निवास करते हैं, उस राज्यकी समृद्धि वर्द्धित हुआ करती है । ऐसे नियमशाली मनुष्य पहले और पीछेके दश पुरुषोंको पवित्र करते हैं । जो लोग गृहस्थ वृत्ति अवलम्बन करके व्यथा रहित होकर पहले कहे हुए नियमोंको पालन करते हैं वे राजचक्रवर्त्ती मान्धाता आदि राजाओंने जिन लोकोंमें गमन किया है, उन्होंके समान लोकोंको पाते है । जितेन्द्रिय लोगोंको भी ऐसी ही गतिका विषय विहित है । उदारचित्त गृहस्थोंके निमित्त स्वर्गलोक ही हितकर है; वेदपुष्ट विमानोंसे संयुक्त स्वर्गलोक नियत चित्तवाले गृहस्थोंके लिये प्रतिष्ठित है । जब कि गार्हस्थ धर्म्म स्वर्गके कारण रूपसे ब्रह्माके जरिये विहित हुआ है, तब मनुष्य क्रमसे गार्हस्थ अवलम्बन करके अन्तमें अवश्य ही स्वर्ग लोकमें बास करेंगे । इसके अनन्तर गार्हस्थसे भी परम उदार आश्रमको तीसरा आश्रम कहा जाता है, हड्डी, चर्म्म आदिके संश्लेष जनित शरीरको सुखानेवाले बनचारी लोगोंको इस आश्रममें शरीर त्यागनेसे जो फल-प्राप्त होता है, उसे सुनो ।

२४२ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज ! पण्डितोंने जिस प्रकार गृहस्थ वृत्तिका विधान किया है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया । इसके अनन्तर जिस आश्रमका विषय वर्णित हुआ है उसे कहता हूं सुनो । गृहमेधी मनुष्य परम श्रेष्ठ कपोती वृत्तिको क्रमसे परित्याग करके सहधर्म्मिणीके सहित खिन्न होकर वाणप्रस्थ आश्रमको अवलम्बन करें । हे तात ! इच्छापूर्व्वक प्रवृत्त, पुण्य देशमें निवास करनेवाले सर्व्व लोकाश्रम स्वरूप वाणप्रस्थ आश्रमवालोंके वृत्तान्त सुननेसे तुम्हारा कल्याण होगा ।

व्यासदेव बोले, गृहस्थ पुरुष जिस समय निज शरीरको ढलता हुआ तथा, पुत्रकी सन्तानको अवलोकन करें, तब बनवासी होवें । वे परमायुका तीसरा भाग वाणप्रस्थाश्रममें व्यतीत करे ; देवताओंकी पूजा करके पूर्व्वोक्त तीनों अग्नियोंकी परिचर्य्या करते हुए नियुक्त रहें ; सदा नियताहारी और अप्रमत्त होकर दिनके छठवें भागमें भोजन करें । इस आश्रममें बनके बीच पञ्चयज्ञ करनेके समय अग्निहोत्र, गौवें ; यज्ञके अंग अकालकृष्ट ब्रीहि ,यव, नीवार, विघस और हवि आदि सम्प्रदान करे । वाणप्रस्थ आश्रममें भी ये चार प्रकारकी वृत्ति विहित हुई हैं । इस आश्रयमें अतिथि सत्कारके लिये अथवा यज्ञ क्रिया निर्व्वाहके वास्ते कोई कोई नित्य ही प्रक्षालन करते हैं, अर्थात् जिस दिन जो कुछ प्राप्त करते हैं, उस ही दिन उसे व्यय किया करते हैं, कोई कोई मासिक सञ्चय, कोई वार्षिक सञ्चय और कोई द्वादश वार्षिक द्रव्य आदि सञ्चय कर रखते हैं । इन लोगोंके बीच कोई कोई प्रावृट्‌कालमें अभ्रावकाश देशमें निवास करते हैं, हेमन्तकालमें जलमें स्थित हुआ करते है, ग्रीष्मकालमें पञ्चतपा होते और सदा परिमित भोजन करते हैं । कोई कोई भूमिपर विपरीत भावसे अर्थात् नतशिरा और ऊर्द्ध पाद होकर निवास करते हैं, कोई पांवके अग्रभागसे भूमि स्पर्श करके स्थिति किया करते हैं ; दूसरे लोग किसी स्थानको अवलम्बन करके स्वल्प आहारसे जीविका निर्व्वाह करते हैं, अन्य लोग अध्वर कालमें अभिषिक्त होते

हैं, इस आश्रममें कोई कोई दन्त उलूखलिक अर्थात् दान्तसे उखलका कार्य्य निबाहते हैं, दूसरे लोग अश्मकुट अर्थात् पत्थरके जरिये धान्य आदि शस्योंको भूसीरहित किया करते हैं। कोई कोई शुक्लपक्षमें एक ही बार क्वाथयुक्त यवागू पीते हैं, कोई कृष्ण पक्षमें उक्त क्वाथ पान करते हैं अथवा शास्त्रके अनुसार भोजन किया करते हैं, कोई कोई दृढ़व्रती मनुष्य मूलके जरिये कोई फलके सहारे और कोई फूलके जरिये जीवन धारण करते हुए यथा न्यायसे वैखानस वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्वाह किया करते हैं। वे सब मनीषि पुरुषोंके ये सब और इनके अतिरिक्त दूसरी विविध दीक्षा हैं और उपनिषदोंके बीच जो विदित होता है अर्थात् स्थिर होके आत्मासे ही आत्मा का दर्शन करे, यह सर्वाश्रम साधारण धर्म्म है।

हे तात! इस युगमें सर्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंके जरिये वाणप्रस्थ और गृहस्थ आश्रमसे असाधारण धर्म्म प्रवर्त्तित होरहा है। अगस्त्य, सप्तऋषि मधुच्छन्द, अघमर्षण, सांस्कृति, सुदिवातण्डि, यथावास, अकृतश्रम, अहोवीर्य्य, काव्य, ताण्ड्य मेधातिथि, बुध, बलवान कर्णनिर्वाक, शून्यपाल और कृतश्रम तथा जिन्होंने धर्म्मके फल सत्यसङ्कल्प आदिको प्रत्यक्ष किया है, वे प्रत्यक्षधर्म्मवाले ऋषिलोग और यायावर समूहोंने इसही धर्म्मका आचरण किया था, उसहीसे वे लोग स्वर्गमें गये हैं; धर्म्म नैपुण्यदर्शी बहुतेरे महर्षि लोग तथा उनके अतिरिक्त अनेक ब्राह्मणोंने अरण्यको अवलम्बन किया था। वैखानस, वालखिल्य सैकत और कृच्छ्र चान्द्रायण आदि परम निबन्धन कर्म्मके जरिये निरानन्द, धर्म्ममें रत जितेन्द्रिय ब्राह्मण लोग तथा प्रत्यक्षधर्म्मा महर्षि लोग वाणप्रस्थको अवलम्बन करके स्वर्गमें गये हैं; नक्षत्र, ग्रह तारासे भिन्न जो सब निर्भय ज्योति समूह आकाशमें दीख पड़ते हैं, वेही पुण्यवान् मनुष्योंके अवलम्ब हैं। मनुष्य जराके जरिये परिक्षत और व्याधिसे प्रपीड़ित होकर अन्तमें परमायुके चौथे भागमें वाणप्रस्थाश्रम परित्याग करें। वह सदा सम्पादन करने योग्य सर्व्वस्व दक्षिणासत्र समाप्त करके आत्मयाजी, आत्मरति, आत्मक्रीड़ और आत्मसंश्रय होकर सब परिग्रह परित्याग कर आत्मामें तीनों अग्नि आरोपित करके सदा सम्पादनीय ब्रह्मयज्ञ आदि और दर्श पौर्णमास यज्ञका निर्व्वाह करनेमें रत रहें, जिस समय याज्ञिकोंको यज्ञप्रवृत्ति निवृत्त होके आत्मामें याग साधन करनेकी इच्छा होती है, उस समय देहत्याग पर्य्यन्त शरीरमें तीनों अग्नियोंको आरोपित करने होगी। हृदय गार्हपत्य अग्नि, मन अन्वाहार्य्य-पचनअग्नि और मुख आवहनीय अग्नि है यह वैश्वानर विद्याप्रोक्त प्रकरणके जरिये जानकर देहमें उक्त तीनों अग्निका याग करना होगा। आत्मयागी मनीषि भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करके "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि यजुर्वेदीय मन्त्रोंको उच्चारण करके पहले पञ्च प्राणोंको पांच ग्रास वा छः ग्रास अन्न प्रदान करे। अनन्तर वाण प्रस्थ मुनि केश लोम और नखोंसे परिपूरित और कर्म्मनिर्व्वाहसे पवित्र होकर उस आश्रमसे पवित्र चौथे आश्रममें गमन करे। जो ब्राह्मण सब भूतोंको अभयदान करके सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करता है, वह परलोकमें ज्योतिर्म्मय लोकोंको प्राप्त करके अनन्त सुख भोग किया करता है। सुशील सद्वृत्तिवाले, पापरहित आत्मवित् पुरुष ऐहिक और पारलौकिक किसी कर्म्मके करनेकी अभिलाषा नहीं करते वे क्रोध मोहहीन और सन्धि विग्रहसे रहित होकर उदासीनकी भांति निवास करते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, अभिधेय, यम और शौच, सन्तोष, तपस्या, वेदाध्ययन और ईश्वर प्रणिधानाख्य नियमोंमें निबद्ध न रहें। स्वशाखीय सूत्र और आकृति मन्त्रमें विक्रम प्रकाश न करें, आत्मवित् पुरुषोंकी यथेष्ट गति अर्थात् सभी-

मुक्ति वा क्रममुक्ति इच्छानुसार हुआ करती है धर्म्मपरायण जितेन्द्रिय लोगोंको कोई संशय नहीं रहता। वाणप्रस्थ आश्रमके अनन्तर श्रेष्ठ गुणोंके जरिये ब्रह्मचर्य्य आदि तीनों आश्रमोंसे समधिक रूपसे विख्यात् धर्म्मयुक्त चौथे आश्रमका विषय कहता हूं, सुनो।

२४३ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, वाणप्रस्थाश्रममें यथारीतिसे वर्त्तमान पुरुष, परम वेधवस्तु ब्रह्मको जाननेकी इच्छा करनेसे किस प्रकार शक्तिके सहित आत्मयोगका अभ्यास करेंगे।

व्यासदेव बोले, ब्रह्मचर्य्य और गार्हस्थ आश्रमके जरिये चित्तशुद्धि लाभ करनेके अनन्तर परमार्थ विषयमें जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ और वाणप्रस्थ, इन तीनों आश्रमोंमें चित्तके दोषोंको नष्ट करके सबसे उत्तम सन्न्यास धर्म्मरूपी परमपदमें प्रवज्या करे; इसलिये तुम इस ही प्रकार योगानुष्ठान करो और इसे सुनो, योगी पुरुष सहायरहित होकर अकेले ही धर्म्माचरण करें; जो आत्मदर्शी मनुष्य अकेला ही धर्म्माचरण करता है, वह सर्व्वव्यापीत्व निबन्धनसे किसी पदार्थको परित्याग नहीं करता और मोक्षसुखसे परित्यक्त नहीं होता। वह निरग्नि और निराश्रय होकर अन्नके निमित्त गांवमें जाता है, चित्तको समाधान करनेवाले पुरुष अश्व-स्तन-विधाता न होवें, अर्थात् दूसरे दिनके लिये अन्न सञ्चय न करें; लघुभोजी और नियताहारी होकर दिनमें एक वार अन्न भोजन करें; कपाल और कषाय वस्त्र धारण तरुमूलका आश्रय, असहायता और सब भूतोंके विषयमें उपेक्षा अर्थात् प्रीति-द्वेष हीनता ये सब भिक्षुकके लक्षण हैं, डरे हुए हाथी कूएंमें प्रवेश करनेसे जिस प्रकार होते हैं, वैसे ही दूसरोंके वचन जिनमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, अर्थात् जो लोग दूसरेके जरिये आक्रुश्यमान होके भी क्रोध नहीं करते और जो वक्ताके निकट फिर गमन करनेमें विरत रहते हैं, वेही कैवल्य आश्रममें वास करनेमें समर्थ होते हैं।

चौथे आश्रमी भिक्षु वाह्यवस्तुओंकी ओर न देखें, कभी किसीकी निन्दा विशेष करके ब्राह्मकी निन्दा सुननी वा किसी भांतिसे कहनी योग्य नहीं है। जिससे ब्राह्मणोंका कुशल हो सदा वैसा ही वचन कहे; आत्मनिन्दाके समय चुप रहें; और मौनावलम्बन ही भवरोगकी चिकित्सा है। जिनके अकेले निवास करनेसे सूना स्थान भी लोगोंसे परिपूरित बोध होता है, लोगोंसे पूरित स्थान जिनके अभावमें सूना हुआ करता है, देवता लोग उन्हें ही ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जो सांपसे डरनेकी भांति लोगोंसे भयभीत होते हैं, नरक भयके समान मिष्टान्न-जनित तृप्तिसे विरत रहते हैं और मृतक शरीरके समान स्त्रियोंसे भय करते हैं, उन्हें देवता भी ब्रह्मिष्ठ समझते हैं। जो सम्मानित होनेसे हर्षित नहीं होते, असम्मानित होनेसे क्रोध नहीं करते और जो लोग सब प्राणियोंको अभय दान करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्रह्मिष्ठ जानते हैं; मरनेका अभिनन्दन न करे, जीवनका भी अभिनन्दन करना योग्य नहीं है; जैसे सेवक स्वामीकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है, वैसे ही समयकी प्रतीक्षा करें। जो लोग वचन और मनको दोष रहित करके स्वयं सब पापोंसे मुक्त हुए हैं, उन निरमित्र मनुष्योंको भयका कौनसा विषय है। सब प्राणियोंसे जो लोग अभय हुए हैं और जिनसे सब भूतोंको भय नहीं होता उन मोहसे छूटे हुए पुरुषोंको किसी प्रकार भयकी सम्भावना नहीं होसकती। जैसे द्विरद पद प्रक्षेपके बीच मनुष्य और पशु आदिके पांवके चिन्ह लुप्त होजाते हैं, वेसेही शरीरको शीर्ण करके समाधिस्थ होकर जो लोग योगी

हुए हैं, उनके निकट इन्द्रादि पद विहित हुआ करता है। योगमें समस्त कर्म्म फलोंकाही अन्तर्भाव होता है।

इस ही प्रकार अहिंसामें सब धर्म्म, अर्थ अन्तर्भूत हुआ करते हैं, जो हिंसा नहीं करते, वे सदा अमृत उपभोग किया करते हैं। जो लोग अहिंसक, समदर्शी, सत्य बोलनेवाले; धृतिमान्, संयतेन्द्रिय और सब भूतोंके शरण्य हैं, वे सबसे उत्तम गति पाते हैं। अवश्यम्भावी मृत्यु, इसही प्रकार आत्मानुभव स्वरूप प्रज्ञानसे तृप्त, निर्भय, आशा रहित पुरुषोंको अतिक्रम नहीं कर सकती, बल्कि वेही मृत्युको अतिक्रम किया करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरमें "मैं" इस अभिमान स्वरूप सर्व्वसङ्गसे जो लोग मुक्त हुए हैं, निर्व्विषयत्व निबन्धनसे शून्यकी भांति मौनभावसे जो लोग निवास किया करते हैं, और जो अदृश्य और एकचर होकर शान्तभावसे स्थिति करते हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मिष्ठ समझते हैं। जिसका जीवन केवल धर्म्मके निमित्त है, धर्म्माचरण भक्त जनोंकी भिक्षाके लिये है, समाधि और व्युत्थान सब लोगोंके शिक्षाके निमित्त है, देवता लोग उन्हें ब्राह्मिष्ठ समझते हैं। जिन्हें न आशा है, न आरम्भ है, जो किसीको नमस्कार वा स्तुति नहीं करते और जो सब वासनासे मुक्त हुए हैं। देवता लोग उन्हें ब्राह्मिष्ठ समझते हैं। प्राणिमात्रही सुखमें रत हुआ करते हैं, और सबही दुःखसे अत्यन्तही डरते हैं, इसलिये श्रद्धावान् मनुष्य उनके भय उत्पन्न होनेके लिये खिन्न होकर कर्म्म करनेमें यत्नवान न होवे; क्यों कि कर्म्ममात्र ही हिंसायुक्त है, इससे उन्हें साधुओंको त्याग करना योग्य है। सब जीवोंमें अभयदान ही सब दानोंसे उत्तम है, यह दान सब प्रकारके दानोंसे समधिक भावसे वर्त्तमान रहता है; जो पहले हिंसामय धर्म्म परित्याग करते हैं, वे प्रजासमूहसे अभय प्राप्ति स्वरूप अनन्त सुखयुक्त मोक्षपद लाभ किया करते हैं। जो आत्मयाजी, योगी, वाणप्रस्थकी भांति उत्तान मुखसे "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि अनेक मन्त्रोंके जरिये पञ्च आहुति नहीं देते, बरन प्राणादि पञ्चक और इन्द्रिय वा मनको आत्मामें लीन किया करते हैं, वे चराचर जीवोंके नाभि स्वरूप और त्रैलोकात्मा वैश्वानरके आस्पद होते हैं, उनके मस्तक आदि सब अङ्ग वैश्वानरके अवयव होते, उनके कृत अकृत सब कर्म्म वैश्वानरके कार्य्यरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं। नाभिसे हृदय पर्य्यन्त प्रादेश-परिमित स्थानमें जो प्रकट होता है, आत्मयाजी योगी उस चिन्मात्र पुरुषमें प्राण उपलक्षित निखिल प्रपञ्चको लीन करता है, वे लोकके सहित सब लोकोंमें ही उसका आत्म संस्थ अग्निहोत्र सम्पन्न होता है। जो लोग द्योतमान, सूक्ष्म तेजमय सूत्रात्माको जानते हैं, और तीनों गुणोंसे परिपूरित माया उपाधिक ईश्वरको तथा सूक्ष्म प्रत्यय स्वरूप उपाधि रहित आत्माको जान सकते हैं, वे सब लोकोंमें पूजित होते हैं, और मनुष्य तथा देवता लोग उनके सुकृतको प्रशंसा किया करते हैं।

निखिल वेद विषयादि जानने योग्य वस्तुएं कर्म्मकाण्डको सब विधि, अन्दृऐक्य गम्य परलोक आदिनिरुक्त और आत्माकी सत्यस्वभावताऽरूपी परमार्थता, ये सब शरीरात्मा प्रत्येय स्वरूपसे वर्त्तमान हैं। इसे जो जानता है, उस सर्व्वेश्वरको सदा सेवा करनेके लिये देवता लोग भी अभिलाष किया करते हैं। जो भूमण्डलमें असक्त रूपसे वर्त्तमान है, प्रत्यगात्मता निबन्धनसे द्युलोकमें भी जो अप्रमेय होकर विद्यमान हैं, जो ब्रह्माण्डके बीच प्रकट हो रहा है, जो किरणकी भांति प्रसमर नेत्र, कान आदिके जरिये प्रकाशित होकर जीव भावको प्राप्त हुआ है, जो अनेक प्रतन्त्र स्थानीय देवता रूपसे संयुक्त होरहा है, उस

आसक्ति रहित चिन्मय आत्माको भोग्य शरीर और हृदयाकाश पुण्डरीकके बीच जो स्थित जानता है, देवता लोग भी उसकी सदा सेवा करनेके निमित्त अभिलाष किया करते हैं। जो कालचक्र सदा परिवर्त्तनशील होके भी प्राणियोंकी आयु अजरभावसे व्यतीत कर रहा है, छहों ऋतु जिसकी नाभि और बारहों महीने जिसके अरस्वरूप हैं, दर्शसंक्रमण आदि जिसमें सुन्दर पर्व्व स्वरूप हुए हैं, यह दृश्यमान जगत् जिसके मुखमें लीन होरहा है, वही कालचक्र जिसकी बुद्धिमें वर्त्तमान है, देवता भी उसकी सेवा करनेके लिये सदा इच्छा किया करते हैं। जो पूरी रीतिसे प्रसन्नताके आधार होनेसे जगत्के शरीरस्वरूप और स्थूल सूक्ष्म सब लोकोंमें ही सर्व्वकारण रूपसे स्थित होरहा है, वही सम्प्रदायाभिन्न स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीरवाले जीवों और प्राण आदिकी तृप्तिसाधन करता है, प्राण आदि तृप्त होकर उसके सुखको तृप्त किया करते हैं। उस तेजमय नित्य स्वरूप पुराण पुरुषका जो आसरा करते हैं, वे लोग अनन्त अभयलोकमें जाते हैं। जिससे सब प्राणी कभी भय नहीं करते, उसे सब प्राणियोंसे कभी भय नहीं होता। इस लोक और परलोकमें अनिन्दित होकर जो दूसरेकी निन्दा नहीं करते, वेही ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं, अन्तमें उनका अज्ञान नष्ट होनेसे जब स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर नष्ट होते हैं, तब वे भोग्य लोकमें गमन किया करते हैं। जिसे न क्रोध है, न मोह है और सुवर्ण तथा लोष्ट्रमें समज्ञान हुआ है, जो कोष रहित और सन्धि विग्रहसे हीन हुए हैं, जिन्होंने निन्दा, स्तुति परित्याग की है, जिन्हें प्रिय वा अप्रिय कुछ भी नहीं है, वे चौथे आश्रमी भिक्षुक उदासीनकी भांति विचरते रहते हैं।

२४४ अध्याय समाप्त ।

व्यासदेव बोले, देह, इन्द्रिय और मन आदिके बीच प्रकृतिके विकारसे क्षेत्रज्ञ स्थित होरहा है अर्थात् अधिष्ठातृत्व, कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व भावको प्राप्त हुआ है, परन्तु नेत्र आदि इन्द्रिय जड़त्व निबन्धनसे आत्माको प्रकाशित नहीं कर सकतीं, आत्मा चेतन है, इसहीसे उक्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है। जैसे सारथी दृढ़, बलवान, अत्यन्त दान्त उत्तम घोड़ोंके जरिये जाने योग्य स्थानमें गमन करता है, वैसे ही आत्मा मनके सहित पांचों इन्द्रियोंके जरिये विषय-प्रदेशमें गमन किया करता है। इन्द्रियोंसे रूप आदि विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे आत्मा महान् है, अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थ उत्कृष्ट है, महत्तत्त्वसे उपादान अव्यक्त नामक अज्ञान श्रेष्ठ है, अव्यक्तसे अमृत स्वरूप चिदात्मा परम श्रेष्ठ है, अमृतसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, वह उत्कर्षकी सीमा और परम गति है। इस ही प्रकार आत्मा सब भूतोंके बीच कन्नुका क्रान्तकी भांति गूढ़ भावसे स्थिति करनेपर भी प्रकाशित नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी योगी लोग केवल सूक्ष्म बुद्धिके सहारे उसका दर्शन किया करते हैं। वे लोग धारणायुक्त बुद्धिके जरिये मनके सहित इन्द्रियों और इन्द्रियोंके गूढ़ विषयोंको अन्तरात्मामें पूर्ण रीतिसे लय करके ध्येय, ध्यान और धातृरूप इन तीनोंको ही विचारते हैं। "मैं ब्रह्म हूं," इस वचनके निमित्त बुद्धि वृत्तिरूपी विद्याके जरिये संस्कारयुक्त मनको ध्यानके सहारे स्थिर करके ईशभाव प्रविलापनके अनन्तर प्रशान्तचित्तवाले योगी कैवल्य पद पाते हैं; और इन्द्रियोंने जिसके चित्तको हरण किया है, जिसकी स्मरणशक्ति विचलित हुई है, वैसा मनुष्य काम आदिका आत्म समर्पण करके मृत्युके मुखमें पतित हुआ करता है। सङ्कल्पको नष्ट करके सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त

निवेश करे, सूक्ष्म बुद्धिके बीच चित्त निवेश करे; शिवमें चण मुहूर्त्तादि काल करके नाश करे; क्यों कि आत्मवित पुरुष ही कालका विनाश साधन किया करते हैं। जो पुरुष इस लोकमें चित्तप्रसादके जरिये शुभाशुभ परित्याग करता है, वह प्रसन्नचित्त यति आत्मनिष्ठ होकर अत्यन्त ही सुख सम्भोग किया करता है। सुषुप्तिकालकी सुखनिद्रा अथवा निवास स्थलमें दीप्यमान निष्कम्प प्रदीपकी भांति प्रसादका लक्षण है। इस ही प्रकार पूर्व्व और अपर कालमें परमात्मामें जीवात्माका योग करते हुए लघुभोजी शुद्ध चित्तवाले योगी आत्मामें ही आत्माको अवलोकन करते हैं। हे पुत्र! ये आत्म प्रत्यय सिद्ध अनुशासन शास्त्र सब वेदोंके रहस्य हैं, ये केवल अनुमानसे ऐसा आगममावसे मालूम नहीं होसकते सब धर्मों और सत्यख्यानमें जो सारभाग है, उसे और सब वेदोंसे उत्तम एक हजार दश ऋकमन्त्रोंको मथके यह अमृत उद्धृत हुआ है, दहीसे नवीन घृत और काठसे अग्नि प्रकट होनेकी भांति पुत्रके निमित्त ज्ञानियोंको ज्ञान स्वरूप यह शास्त्र समुद्धृत हुआ है। हे पुत्र! यह अनुशासन शास्त्र स्नातक ब्राह्मणोंके निकट पाठ करना चाहिये; अप्रशान्त, अदान्त और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, उनके समीप इसे कहना योग्य नहीं है। अवेदज्ञ, अननुगत, असूयक, असरल, अनिर्दिष्टकारी, चुगुल, अपनी बड़ाई करनेवाले और जो पुरुष तर्क शास्त्रके जरिये जले हुए हैं, उनके समीप यह अनुशासन वर्णन करना योग्य नहीं है; बड़ाईके योग्य, प्रशान्त, तपस्वी, प्रियपुत्र और अनुगत शिष्यसे यह रहस्य धर्म्म अवश्य कहना चाहिये, दूसरे लोगोंके निकट किसी प्रकारसे कहना उचित नहीं है। कोई मनुष्य यदि रत्न पूरित पृथ्वीमण्डल दान करे, तत्ववित् पुरुष उससे भी इस धर्म्मको श्रेष्ठ जाने। इससे भी गुप्त जो अतिमानुष अध्यात्म विषय है, महर्षियोंने जिसका दर्शन किया है, वेदान्तके बीच जो वर्णित हुआ करता है, और तुम मुझसे जिसका विषय पूछते हो, मैं उसे तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारे अन्तःकरणमें जो परम पदार्थ वर्त्तमान होरहा है, और जिस किसी विषयमें तुम्हें संशय है, मैं वह सब विषय तुमसे कहता हूं सुनो; और तुमसे क्या कहना होगा?

२४५ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! फिर अध्यात्म विषय विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन करिये। हे ऋषि सत्तम! अध्यात्म विषय किसे कहते हैं, और वह कैसा है?

व्यासदेव बोले, पुरुषके सम्बन्धमें यह अध्यात्म विषय जो पठित होता है, उसे तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, तुम उसकी इस व्याख्याको सुनो। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, ये पञ्चमहाभूत समुद्रकी तरङ्गमालाकी भांति जरायुज आदि जीवोंके बीच प्रति जीवोंमें पृथक् पृथक् कल्पित हुए हैं। जैसे कछुआ निज अङ्गोंको फैलाकर फिर समेट लेता है, वैसे ही सब महाभूत शुद्र शरीरकारसे युक्त महाभूतोंमें स्थित रहके सृष्टि और प्रलय आदि विकारोंको उत्पन्न किया करते हैं; इसलिये शरीरके बीच ही सपनेकी तरह ब्रह्माण्डका उदय और प्रलय होता है; इससे स्थावर जङ्गमात्मक यह समस्त जगत अल्पभूतमय उन शरीरान्तर महाभूतोंमें सृष्टि और प्रलय निर्दिष्ट हुआ करतो है। हे तात! देवता मनुष्य तिर्य्यग् आदि सब प्राणियोंमें ही पञ्च महाभूत वर्त्तमान हैं, तो भी प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति सृष्टि कालमें जिन कर्म्मोंके लिये जिसे उत्पन्न करते हैं, उनमें पञ्चभूतोंका वैशेषविधान किया करते हैं।

शुकदेव बोले, विधाताने शरीरके अवयव, बुद्धि और इन्द्रिय आदिमें जो पञ्चभूतोंकी विषमताकी है, वह किस प्रकार जानी जाती है। इन्द्रिय वा शब्दगुण हो कितने प्रकारके हैं, और वे किस प्रकार जाने जाते हैं।

व्यासदेव बोले, हे पुत्र! तुमने जिस विषयमें प्रश्न किया है, उसे विस्तारके सहित यथावत वर्णन करता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर इस विषयका यथार्थ तत्व सुनो। शब्द श्रवणेन्द्रिय और शरीरके सब छिद्र आकाशसे उत्पन्न हुए हैं, प्राण, चेष्टा और स्पर्शेन्द्रिय, ये तीनों वायुके बिकार हैं, रूप, नेत्र और विपाक अर्थात् जठराग्नि रूपसे ज्योति त्रिविध भावसे विहित है; रस रसको इन्द्रियां और स्नेह, ये तीनों जलके गुण हैं, घ्रेय वस्तु, घ्राणेन्द्रिय और शरीरके कठोर अंश ये तीनों भूमिके बिकार हैं; इन सब ये सब इन्द्रियोंसे पञ्चभौतिक शरीर व्याख्यात् हुआ है। वायुका गुण स्पर्श, जलका गुण रस, अग्निका गुण रूप, आकाशका गुण शब्द और पृथ्वीका गुण गन्ध है; छूना, चखना, देखना, सुनना, और संघना, इन्द्रियोंके जरिये मालूम हुआ करते हैं। सङ्कल्प-विकल्पात्मक मन, निश्चय करनेवाली बुद्धि, पूर्व्ववासना स्वभाव ये तीनों स्वयोनिज हैं, अर्थात् आत्मयोनि भूतोंसे ये सब उत्पन्न हुए हैं; परन्तु सत्त्वादि गुणोंसे कार्य्य स्वरूप होके उन सत्त्वादि गुणोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको पसारके फिर नियमित करता है, वैसे ही बुद्धि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न करके उन्हें नियमित कर रखती है। पांवके ऊपर और सिरके नीचे इन सारी शरीरके बीच जो कुछ करणीय देखा जाता है, उन सबमें ही बुद्धि वर्त्तमान है, अर्थात् देहमें "मैं" इस अनुभवका विषय बुद्धि स्वरूप है। बुद्धि शब्दादि गुणोंको प्रेरणा करती है, अर्थात् शब्दादि स्वरूपताको प्राप्त होती हैं। बुद्धि ही मनके सहित इन्द्रियोंको प्रेरणा किया करती है, बुद्धि न रहनेपर विषय और इन्द्रियें प्रथित नहीं होती, मनुष्योंके शरीरमें पञ्चेन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहा जाता है, बुद्धिको सातवीं कहते हैं, क्षेत्रज्ञ अष्टम रूपसे माना गया है, नेत्रको आलोचनाके लिये मन संशय करता है, बुद्धि निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ साक्षी स्वरूप कहा जाता है, रज, तम और सतोगुण, ये स्वयोनिज होकर देवता मनुष्य सब भूतोंमें निवास करते हैं, कार्य्यसे इन सब गुणोंको जानना उचित है। उसमेंसे आत्मामें जो कुछ प्रीति संयुक्त मालूम होता है और जो प्रशान्तकी भांति पूरीरीतिसे शुद्ध है, उसे सतोगुण समझो; शरीर और मनको जो सन्तापयुक्त करता है, उसे रजोगुण जाने और जो संमोहसे संयुक्त है, तथा जिसका विषय अव्यक्त तर्कसे अगोचर वा अविज्ञेय है, उसे तमोगुण कहके निश्चय करो। किसी कारण वा अकारणसे हो प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, समता, स्वस्थदेहता और स्वस्थ-चित्तता हो, तो समझो कि उसमें ही सतोगुण वर्त्तमान है। अभिमान मृषावाद, लोभ, मोह, और क्षमा, यदि कारण वा अकारणसे उत्पन्न हो तो उसे ही रजोगुणका लक्षण समझना चाहिये। मोह, प्रमाद, निद्रा, तन्द्रा, और प्रबोधिता यदि किसी प्रकारसे वर्त्तमान हो, तो उसे ही तमोगुण जानना योग्य है।

२४६ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, निश्चयात्मिका बुद्धि मनरूपसे सङ्कल्प मात्रके जरिये विविध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, हृदयके प्रिय और अप्रिय सब विषय मालूम होते हैं; कर्म्म प्रेरणा तीन प्रकारकी है। इन्द्रियोंसे सङ्कल्प जनित निबन्धनसे सब विषय सूक्ष्म हैं, विषयोंसे मन सूक्ष्म, मनसे बुद्धि सूक्ष्म है, और बुद्धिसे आत्मा सूक्ष्म है,—

यह महर्षियोंको अभिमत है। बुद्धि मनुष्योंकी व्यवहारिक आत्मा है, बुद्धि ही स्वयं आत्मा-स्वरूपसे स्थिति करती है, बुद्धि जिस समय विविध पदार्थोंको उत्पन्न करती है, उस समय मन शब्द वाच्य होती है। इन्द्रियोंके पृथक् भावके कारण बुद्धि विकृत होती है, इस ही निमित्त जब बुद्धि सुनती है तब कान, जब स्पर्श करती है तब त्वचा, जब दर्शन करती है तब नेत्र, जब चखती है तब जीभ और जब सूंघती है, तब घ्राण कहके वर्णित होती है, इसलिये बुद्धि पृथक् पृथक् रूपसे विकृत हुआ करती है बुद्धिके सब विकारोंको इन्द्रिय कहते हैं, चिदात्मा प्रदृश्य भावसे उन सबमें और सात्विक, राजसिक और तामसिक भावोंसे वर्त्तमान है। पुरुषाधिष्ठिता बुद्धि भी उक्त तीनों भावोंमें निवास करती है; मनुष्य कभी सुख लाभ करता है, तौभी शोकित होता है; इस संसारमें कभी कोई निरवच्छिन्न सुखशाली अथवा दुरवगाह दुःखभागी नहीं होता। जैसे तरङ्ग मालायुक्त सरित्पति समुद्र नदियोंके वेगको शान्त करता है, वैसे ही वह भावात्मिका बुद्धि सत, रज, तम; इन तीनों भावोंको अभिभव किया करती है। जब बुद्धि किसी विषयकी अभिलाष करती है, तब उसे मन कहा जाता है। सब इन्द्रिय-गोलक बुद्धिमें अन्तर्भूत होकर पृथक् पृथक् निवास करते हैं। रूप आदि ज्ञान साधनमें तत्पर इन्द्रियोंको सब भांतिसे विजय करना उचित है। जो इन्द्रिय जिस समय बुद्धिके अनुगत होती हैं, उस समय पहले बुद्धि पृथग्भूत न रहनेपर भी अन्तमें सङ्कल्पात्मक घटादि विषयोंमें वर्त्तमान हुआ करती है; अर्थात् बुद्धिसे अनुगृहीत होके इन्द्रियां सङ्कल्पजनित वाह्य विषयोंका ज्ञान करती हैं। इस ही प्रकार क्रमसे रूप आदिका ज्ञान उत्पन्न होता है, सब विषयोंका ज्ञान युगपत् नहीं होता। जैसे अरोंका रथनेमिके बीच सम्बन्ध रहता है, वैसे ही सात्विक, राजसिक और तामसिक भाव मन, बुद्धि तथा अहंकारमें विषयके अनुसार वर्त्तमान रहते हैं। जब कि एक मात्र स्त्रीसे पतिकी प्रीति, सपत्नियोंका द्वेष, दूसरेको मोह होते दीख पड़ता है, तब विषयदर्शनसे ही आन्तरिक भावोंकी उत्पत्ति होती है, इसे ही अङ्गीकार करना होगा। इस विषयमें अनुभव वैषम्यके कारण जो लोग विषयको ही त्रिगुणात्मक कहते हैं, उनका मत युक्ति पूरित नहीं है; क्यों कि एक मात्र स्त्रीमें पतिकी प्रीति, सपत्नीके द्वेष और दूसरोंके मोह सदा ही वर्त्तमान नहीं रहते; इसलिये मन, बुद्धि; अहङ्कार ही सत, रज और तमोमय हैं, सब विषय तन्मय नहीं हैं। बुद्धिस्थ विषय सिद्धि अर्थात् हृदयगुहामें स्थित परब्रह्म विषयक परमार्थिक ज्ञान साधनके निमित्त मन किरणरूपी इन्द्रियोंके जरिये सत्तम परब्रह्मको छिपानेवाले अज्ञानका विनाश किया करता है। योगाचारियोंका यह योग जिस प्रकार सिद्ध होता है, उदासीन मनुष्योंका भी यदृच्छाक्रमसे उस ही प्रकार योग सिद्ध हुआ करता है, बुद्धिमान् मनुष्य इस दृश्यमान् जगत्‌को इस ही स्वभावसे बुद्धिमात्रसे कल्पित जानके मोहित नहीं होते; वे किसी विषयमें हर्ष वा शोक प्रकाश नहीं करते, सदा मत्सरहीन होके निवास करते हैं। काम्यपान विषय गोचर इन्द्रियोंके निर्दोष होनेपर भी दुष्टतिशाली मलिन चित्तवाले मनुष्य उसके सहारे आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते; जिस समय पुरुष मनके जरिये इन्द्रियोंके वेगको पूर्ण रीतिसे नियमित करता है, उस समय दीपकके प्रकाशके जरिये घटादि पदार्थोंकी आकृतिके समान उसके समीप आत्मा प्रकाशित होता है। सब जीवोंका ही जिस समय मोह दूर होता है, तब मानो वास्तविक सब विषय ही उनके समीप मालूम हुआ करते

हैं, वैसे ही कण्ठगत बिस्मृत चामीकरकी भांति अज्ञानके दूर होनेसे ही आत्माकी प्राप्ति हुआ करती है। जैसे जलचारी पक्षी पानीमें बिचरते हुए उसमें लिप्त नहीं होते, वैसे ही बिमुक्त स्वभाववाले योगी लोग पूर्व्वकृत पुण्यपापसे लिप्त हुआ करते हैं। इस ही प्रकार शुद्धचित्तवाले मनुष्य बिषयोंको सेवन करनेसे भी पापस्पर्शसे रहित हुआ करते हैं। वह पुत्र कलत्र आदि स्वजनोंमें आसक्त रहके भी उनके नाशके निमित्त शोक आदिसे अभिभूत नहीं होते, इस ही प्रकार देहासक्त पुरुष देहकृत कर्म्मसे लिप्त नहीं होते। पूर्व्वकृत कर्म्मोंको परित्याग करके सत्यस्वरूप आत्मामें जिसका अनुराग होता है वह सब भूतोंका आत्मभूत सब बिषयोंमें असंसक्त पुरुषकी बुद्धि सतोगुणमें बिचरती है कभी बिषयोंमें प्रवेश नहीं करती। इन्द्रियें आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सदा ही उन्हें जानता है, वह इन्द्रियोंका परिदर्शक और यथायोग्य रीतिसे उनकी सृष्टि किया करता है। सूक्ष्म सत् रूप परब्रह्म और जीवात्माका यह प्रभेद मालूम करो कि इनमेंसे एकने सब बिषयोंका सृजा है, दूसरेने कुछ भी नहीं किया है। वे दोनों प्रकृतिके बशमें होके पृथक् रहने पर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मछली जलसे स्वतन्त्र होनेपर भी दोनों ही सदा सम्प्रयुक्त हैं, जैसे मशक और उडुम्बर पृथक् होने पर भी एकत्रित हैं, जैसे सींक मूंजमें पृथक् रहके भी संयुक्त रहती है, वैसे ही जीव और ब्रह्म एक होनेपर भी परस्परमें प्रतिष्ठित हैं।

२४७ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सत्स्वरूप आत्मा बिषयोंको उत्पन्न करता है, जीव उसमें अधिष्ठित हुआ करता है। ईश्वर उदासीनकी भांति बिकृत प्राप्त हुए बिषयोंका अधिष्ठाता है। जैसे उर्णनाभी अभिन्न निमित्त उपादान स्वरूपसे सूत्र निर्म्माण करती है, वैसे ही ईश्वर जिन गुणोंको उत्पन्न करता है, वे उसहीके स्वभावयुक्त होते हैं। सत्वादि सब गुण तत्वज्ञानके जरिये अदर्शनयुक्त होनेपर भी निवृत्त अर्थात् घट आदि बाह्य पदार्थोंकी भांति नष्ट नहीं होते; परन्तु रज्जु सर्पकी भांति बांधको ही प्रध्वंस पदवाच्य कहना होगा। घट आदि नष्ट होनेपर भी जैसे कपालदर्शनके जरिये इस स्थानमें घट नष्ट हुआ है, इस ही भांति घटसत्ताकी उपलब्धि होती है, सत्वादि गुणोंके प्रध्वंस होनेपर उस प्रकार उनके प्रवृत्तिकी प्राप्ति नहीं होती; इसलिये सत्वादि गुणोंके नाशको निरवयव नाश कहा जाता है। तार्किक लोग कहा करते हैं, कि आत्यन्तिकी दुःखकी निवृत्ति होनेसे ही आत्मगुणकी निवृत्ति होती है। सांख्यमतवाले दार्शनिक पण्डित लोग भी दृग्दिश्य संयोगसे अनादि भावका भी नाश स्वीकार करते हैं। इस ही प्रकार निवृत्ति और बाध इन दोनों पक्षोंको बुद्धिसे आलोचना करके यथामतिके अनुसार निश्चय करे; पुरुष इस प्रकारके बिधानके जरिये महान् आत्माश्रय हुआ करता है। आत्माका आदि और अन्त नहीं है, इसे जानकर मनुष्य क्रोध हर्षसे रहित और मत्सरहीन होकर सदा बिचरण करे। इस ही प्रकार बुद्धिके धर्म्मचिन्ता आदि दृढ़ हृदयग्रन्थिको जिन्होंने अतिक्रम किया है, वह शोकरहित और संशयहीन होकर सुखसे समय व्यतीत किया करते हैं। पृथ्वीपरसे भरी हुई नदीमें गिरे हुए मनुष्य डूबते हैं, इस लोकमें तरनेकी बिद्यासे रहित मूर्खोंकी गति भी उस ही प्रकार जाननी चाहिये, तरनेकी बिद्यासे युक्त तत्ववित् पुरुष उन्मज्जन निमज्जनके सहारे क्लेशित न होकर स्थलमें बिचरते हैं, इसी प्रकार जिन्होंने अपने आत्माकी शुद्ध चिन्मात्र

अर्थात् केवल ज्ञान स्वरूप जाना है, वे ही आत्माका स्वरूप और लक्षण जानते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके विषयको जानके और आकाश आदि भूतोंको विषमता अवलोकन करके अत्यन्त उत्तम सुख लाभ किया करते हैं। मनुष्य जन्म ग्रहण करने विशेष करके ब्राह्मण होनेसे यह सामर्थ प्राप्त होती है, कि आत्मज्ञान और शान्ति अवलम्बनके जरिये मुक्ति लाभ हुआ करती है। मनुष्य इसे ही जानके पापरहित होता है, निष्पाप होनेका दूसरा लक्षण और क्या है? कृतकृत्य मनीषी पुरुष इसे ही जानकर मुक्त होते हैं। अज्ञानियोंके परलोकमें अधःपतनसे जो अत्यन्त महत् भय उपस्थित होता है, ज्ञानियोंको उस भयकी सम्भावना नहीं है। ज्ञानियोंकी जो उत्तम महती गति हुआ करती है, उससे बढ़के उत्तम गति और किसीकी भी नहीं होती। कोई मनुष्य उपभोग्य स्त्री आदिको दोषसे आक्रान्त समझके उन्हें दोषदृष्टिसे देखते हैं, कोई दूसरेका वैसे दोषाक्रान्त विषयमें अनुराग देखकर शोक किया करते हैं, परन्तु ज्ञानी और अज्ञानीके बीच महत् विलक्षणता है; इसे जानके जो लोग आरोपित वा अनारोपित शोक तथा शोकभावको विषय जानते हैं, उन्हें ही जानना चाहिये, कि वे निश्चय ही कुलीन हैं। जो लोग अनभिसन्धिपूर्व्वक अर्थात् निष्काम होकर कर्म करते हैं, उनका वही निष्काम कर्म पहलेके किये हुए पापोंको खण्डन करता है, निष्काम कर्म करनेवाले मनुष्योंके इस जन्म और पूर्व्व जन्मके किये हुए सब कर्म्म प्रिय वा अप्रियजनक नहीं होते; इसलिये तत्वविद्या अवश्य सिद्ध करनी उचित है।

२४८ अध्याय समाप्त।

शुकदेव बोले, हे भगवन्! इस लोकमें जिस धर्म्मसे बढ़के श्रेष्ठ धर्म्म और कुछ भी न हो और जो सब धर्म्मोंसे उत्तम है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

व्यासदेव बोले, ऋषियोंने जिस पुराण धर्म्मको स्थापित किया है और जो सब धर्म्मोंसे उत्तम है, वह तुम्हारे समीप विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जैसे पिता आत्मज सन्तानोंको यत्नपूर्व्वक संयत करता है, वैसे ही सब भांतिसे निष्पतनशील और प्रमथनकारी इन्द्रियोंको बुद्धिके जरिये संयत करके मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता साधन ही परम तपस्या है, वेही सब धर्म्मोंसे उत्तम और वही परम धर्म्मरूपसे महर्षियोंके जरिये वर्णित हुआ करता है। मनके सहित इन्द्रियोंको मेधाके सहारे सन्धान करके त्रिपुटी चिन्तनमें अनासक्त होकर आत्मतृप्तकी भांति निवास करे। जब इन्द्रियें बाह्य और आभ्यन्तरिक विषयोंसे निवृत्त होके सर्व्वाधिष्ठान परब्रह्ममें निवास करेंगी, तब तुम स्वयं ही शाश्वत परमात्माको देख सकोगे। जो सब महाभाग मनीषी पुरुष ब्रह्मवित् होते हैं, वे उस धूमरहित अग्निकी भांति उपाधिरहित सर्व्वमय महान् आत्माको देखते हैं। जैसे फल फूलसे युक्त अनेक शाखावाले बड़े वृक्ष अपने फल फूलोंको यह नहीं जानते कि कहां हैं, वैसे ही अचेतन बुद्धिवाले "मैं कहां जाऊंगा, कहांसे आया हूं," इसे कुछ भी नहीं जान सकते; तब इस देहके बीच बुद्धि-व्यतिरिक्त अन्तरात्मारूपसे जो विराजता है, वही बुद्धि आदि सबका ही अभिज्ञ है और सबको ही देखता रहता है। आत्मवित् पुरुष प्रकाशमान ज्ञानदीप स्वरूप आत्माके जरिये ही आत्माको देखते हैं, इसलिये तुम आप ही अपना दर्शन करके उपाधिरहित और सर्व्ववित् होजाओ। तुम्हें केचुलीसे मुक्त सर्पकी भांति छूटकर और इस लोकमें परम ज्ञान

प्राप्तकर सुखी होके अनेक प्रकारसे बहनेवाली लोकप्रवाहिनी, पञ्चेन्द्रिय ग्राहसे युक्त, मनके सङ्कल्प तटवाली, लोभ मोहरूपी तृणसे परिपूरित काम क्रोधरूपी सर्पसे युक्त, सत्य तीर्थवाली, मिथ्यासे अक्षोभ, क्रोधपङ्कसे संयुक्त, अव्यक्त प्रभव, शीघ्रगामिनी और अकृतात्म लोगोंसे दुस्तर और काम ग्राहसे परिपूरित नदीके जरिये संसारनदीको ज्ञानके सहारे तरना चाहिये। हे तात! कृतप्रज्ञ धृतिमान् मनीषी पुरुष संसारसागर गामिनी, वासना पाताल दुस्तरा, आत्म जन्मोद्भव जिह्वावार्त्ता जिस दुरासद नदीके पार जाते हैं, तुम उस ही नदीको तरके सर्व्वसङ्गरहित, विधूत स्वभाव, आत्मवित्, पवित्र और समस्त संसारसे पार होके प्रसन्नात्मा तथा पापरहित होकर परम श्रेष्ठ ज्ञान अवलम्बन करके ब्रह्मत्वलाभ करोगे। तुम ज्ञानरूपी पर्व्वतपर चढ़के भूमिष्ठ मूर्खोंको देखो। तुम क्रोधरहित, हर्षहीन और अनृशंस बुद्धि होनेसे सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलय देख सकोगे। धार्म्मिकप्रवर तत्वदर्शी विद्वान् महर्षियोंने योगके जरिये अज्ञान रूपी नदीको सन्तरणस्वरूप इस धर्म्मको सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ समझा है।

हे तात! सर्व्वव्यापी आत्माका ज्ञानस्वरूप यह अनुशासन सदा हितकारी वा अनुगत पुत्र शिष्योंसे कहना चाहिये। हे तात! यह आत्मसाक्षिक आत्मज्ञानका विषय इतना ही जो तुमसे कहा है, यह सबसे महत् और गुप्त है। यह परब्रह्म न स्त्री है, न पुरुष है, और न नपुंसक ही है; यह अदुःख, असुख तथा भूत-भव्य वर्त्तमान स्वरूप है; स्त्री वा पुरुष उसे जाननेसे फिर जन्म नहीं लेते, पुनर्ज्जन्मकी प्राप्ति न होनेके ही निमित्त यह धर्म्म विहित हुआ है। हे तात! मैंने जो किसी स्थलमें जैसे सब दर्शनोंके मतोंको कहा है, वैसे ही इस आत्मज्ञानके विषयको भी वर्णन किया है, परन्तु अधिकारी भेदसे वे सब वचन किसी स्थानमें फलित और किसी स्थलमें विफल होते हैं। हे सत्पुत्र! इसलिये प्रीति, गुण और दमसे युक्त पुत्रके पूछनेपर पिता प्रसन्न होकर इस विषयको यथार्थ रीतिसे पुत्रके निकट इस प्रकार वर्णन करे, जैसे मैंने तुमसे कहा है।

२४९ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, गन्ध रस और सुखका अनुसरण तथा गन्ध आदि समलंकृत आभूषणोंका अननुरोध और उक्त भोग्य वस्तुओंमें विशेष प्रकाश न करके उदासीन भावसे निवास, मान, कीर्त्ति, तथा यश लाभमें अभिलाष रहित होना और उन सबमें उदासीनता अवलम्बन करना ही विद्वान् ब्राह्मणोंके व्यवहार हैं। गुरु सेवामें रत, ब्रह्मचर्य्य व्रत करनेवाला पुरुष यदि सब वेदोंको पढ़े, तथा ऋग, यजु और साम वेदको मालूम करे; तोभी उसे मुख्य ब्राह्मण नहीं कहा जाता, जो सर्व्वज्ञ और सब वेदोंके जाननेवाले होकर सब प्राणियोंके विषयमें स्वजनवत् व्यवहार करते हैं, और जो लोग आत्मज्ञानसे तृप्त होते हैं, कभी जिसकी मृत्यु नहीं होती, उनके वैसे कर्म्मके सहारे भी मुख्य ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होती। जिन्होंने विविध इष्टि और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ किये हैं, उनमें दया और निष्कामता न रहनेसे कदापि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति नहीं होसकती; जब पुरुषको किसी प्राणीसे भय नहीं होता और उससे भी कोई नहीं डरते, जब वह किसी विषयकी कामना और किसी विषयमें विद्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। जब पुरुष मन, वचन और धर्म्मके जरिये किसी जीवके विषयमें अनिष्ट आचरण नहीं करता, तभी ब्रह्मत्व लाभ करनेमें समर्थ होता है। इस लोकमें एकपात्र काम

बन्धन ही विशिष्ट है। उससे बढ़के दूसरा कोई बन्धन दृढ़ नहीं है, जो लोग उस काम-बन्धनसे छूटे हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभमें समर्थ होते हैं।

जैसे धूमाकार बादलोंसे चन्द्रमा मुक्त होता है, वैसे ही रजोगुणसे रहित धीर पुरुष काम बन्धनसे छूटकर समयकी प्रतीक्षा करते हुए धीरज अवलम्बन करके निवास करते हैं। अचलके समान स्थिर भाव, भली भांतिसे पूरित समुद्रमें दूसरे सब जल जिस प्रकारसे प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही सब काम जिस पुरुषमें प्रविष्ट हुआ करते हैं, वेही शान्तिलाभ करते हैं; वैसे पुरुष कभी विषयके अभिलाषी नहीं होते। वे विद्वान् पुरुष सङ्कल्पमात्रके सहारे समुपस्थित सुखोंमें मनोहर होते हैं, वेही इच्छा करनेसे स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ हुआ करते हैं; नहीं तो स्वर्गकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इच्छामात्रसे ही स्वर्ग लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। वेदका रहस्य सत्य है, सत्यका रहस्य दम है, दमका रहस्य त्याग है, त्यागका रहस्य सुख है, सुखका रहस्य स्वर्ग है, और स्वर्गका रहस्य शान्ति है। सन्तोंके कारण यदि चित्तप्रसाद लाभका अभिलाषा हो, तो बासनाके सहित भी शोक मोहको सन्तापित करके क्रंदन करो, यही शान्तिका उत्तम लक्षण है। शोकरहित ममताहीन, शान्त, प्रसन्नचित्त, मत्सररहित और सन्तोषयुक्त होकर जो लोग समस्त ज्ञानसे तृप्त हुए हैं, वे इन छहों लक्षणोंसे सबके ही कामनीय हुआ करते हैं। बुद्धिमान् पुरुष सत्य, दम, दान, तपस्या, त्याग और शम नामक छहों सत्वगुणसे युक्त श्रवण, मनन निदिध्यासनके जरिये जिस आत्माको जान सकते हैं जीवित देहमें उस ही आत्माको जिन्होंने बुद्धि स्वरूपसे जाना है, वेही पूर्व्वोक्त मुक्त लक्षणको प्राप्त हुए हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष अकृत्रिम अर्थात् अजन्य हैं, इसहीसे असह्रार्थ्य, स्वभावसिद्ध और गुणाधान मलापकर्षणात्मक संस्कार-रहित शरीरमें अधिष्ठित सुकृत आत्माको जाना है, वही अव्यय सुख उपभोग करते हैं। मनको विषयोंसे रोकके आत्मविचारमें प्रतिष्ठित करते हुए योगी पुरुष आत्मासे जो तुष्टिलाभ करते हैं, दूसरे किसी प्रकारसे भी वैसी तुष्टिलाभ नहीं होती। अभुक्तान मनुष्य जिसके जरिये तृप्त होते हैं, वृत्तिहीन पुरुष जिससे तृप्तिलाभ करते हैं, स्नेहरहित पुरुष जिसके सहारे बलवान् होते हैं,—जो लोग उस ब्रह्मको जानते हैं, वेही वेदवित् हैं। जो शिष्ट ब्राह्मण प्रमादसे इन्द्रियोंकी पूर्ण रीतिसे रक्षा करते हुए ध्यान अवलम्बन करके निवास करते हैं, उन्हें ही आतमरति कहते हैं। जो परम तत्वमें तत्पर और बासनारहित होकर स्थित रहते हैं, चन्द्रमाकी भांति उनका सुख बढ़ता रहता है। जैसे सूर्य्यके जरिये अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही जो मननशील योगी पञ्चतन्मात्रा, महत्तत्व और प्रकृतिको परित्याग करते हैं, वे सहजमें ही संसारके दुःखोंसे छूट जाते हैं। वे अतिक्रान्त कर्म्म करनेवाले अतिक्रान्त गुण, ऐश्वर्य्य और विषयोंसे असंश्लिष्ट ब्राह्मणको जरा तथा मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती। वे जब सब तरहसे विरक्त और राग द्वेषसे रहित होके निवास करते हैं, उस समय जीवित शरीरसे ही इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन्होंने प्रकृतिको परित्याग करके परम कारण परब्रह्मको जाना है, उन परम पद पानेवाले पुरुषोंको फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता।

२५० अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, सुख, दुःख, मान अपमान सहनेवाला मनुष्य अर्थ और धर्म्मका अनुष्ठान करके शेषमें यदि मोक्ष जिज्ञासु हो, तो गुणवान्

वक्ता उस शिष्यको पहिले यही महत् अध्यात्म विषय सुनावे। आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथ्वी, ये पञ्चभूत और द्रव्य गुण, कर्म्म सामान्य, समवाय और विशेष, ये कई एक भाव पदार्थ, इनके अतिरिक्त अभाव पदार्थ तथा काल पञ्च-भूतात्मक जरायुज आदि जीव मात्रमें ही वर्त्त-मान् है। तिसके बीच आकाश अवकाश भाग है, श्रवणेन्द्रिय आकाशमय है; शारीरिक शास्त्र विधानवित् पुरुष आकाशकी-शब्द गुण कहा करते हैं। गमन आदि कार्य्य वायुसे उत्पन्न होते हैं, प्राण और अपान आदि वायुमय है, स्पर्शइन्द्रिय और स्पर्श को भी वायुमय जानो। ताप, पाक प्रकाश, उष्णता और नेत्र, ये पांचो अग्निस्वरूप हैं, उसका गुण रूप, लाल, श्वेत और असितात्मक है। क्लेश, संकोच और स्नेह ये तीनों जलके धर्म्म हैं; मस्तक, मज्जा आदि जो कुछ स्निग्ध पदार्थ हैं, वे सब जलमय हैं, रसनेन्द्रिय, जिह्वा वा रस जलके गुण कहे गये हैं। धातु, संघात, पार्थिव पदार्थ, हड्डी, दांत, नख, रोम, श्मश्रु, केश, शिरा और चर्म्म, ये सब पृथ्वीमय हैं। घ्राणेन्द्रियका नाम नासिका है, गन्ध ही इस इन्द्रियका विषय हैं। पूर्व्व पूर्व्व-भूतोंके गुण उत्तरोत्तर भूतोंमें वर्त्तमान हैं; इसलिये आकाशमें केवल शब्दगुण है, वायुमें शब्द और स्पर्श है, अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप है; जलमें शब्द, स्पर्श रूप तथा रस है और पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये पांचो ही विद्यमान है; ये पांचो गुण प्राणिमात्रमें ही विद्यमान रहते हैं। मुनि लोग इस पञ्चभूत सन्तति और अविद्या, काम तथा धर्म्मको अष्टम गिना करते हैं, मनको इन सबके बीच नवां कहा करते हैं, बुद्धिको दशवीं कहते हैं, अनन्तर आत्मा ग्यारहवां है, वह सबसे श्रेष्ठ कहके वर्णित होता है। बुद्धि निश्चय करनेवाली है और मन संशयात्मक है, वह अनन्त आत्मा कर्म्मानुमान निबन्धन अर्थात् सुख, दुःख लक्षणयुक्त कर्म्मोंके आश्रयत्वके कारण क्षेत्रसंज्ञक जीवरूपसे अनुमित होता है, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग; इन काल-चक्र जीवोंसे युक्त समस्त प्राणिपुञ्जको जो लोग स्वरूपसे पापरहित देखते हैं। वह मोहका अनुसरण नहीं करते।

२५१ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, शास्त्रवेत्ता लोग स्थूल शरी-रसे मुक्त, सूक्ष्म भूत और दुर्लक्ष्य, सूक्ष्म शरीरी आत्माको शास्त्रोक्त कर्म्म योगानुष्ठान आदिके जरिये दर्शन करते हैं अर्थात् योगी लोग समा-धिके समय लिङ्गात्माका दर्शन किया करते हैं, जैसे सूर्य्यकी किरण आकाशमण्डलमें निविड़ भावसे निवास करनेपर भी जैसे स्थूलदृष्टिके सहारे नहीं दीख पड़ती, परन्तु गुरूपदेशसे उन्हीं सर्व्वत्र विचरते हुए देखा जाता है, वैसेही स्थूल देहसे युक्त लिङ्ग शरीर स्थूल दृष्टिसे नहीं दीखता। देहसे छूटनेपर वह अतिमानुष लिङ्ग देह सब लोकोंमें विचरती है; इसे योगी लोग देखा करते हैं। जैसे सूर्य्यके किर-णमण्डलका प्रतिविम्ब जलमें भी दीखता है, वैसेही योगी पुरुष सत्त्ववन्त पुरुष मात्रमें ही प्रतिरूपसे लिङ्ग शरीरको अवलोकन किया करते हैं। संयतेन्द्रिय सत्त्व योगी लोग शरीरसे विमुक्त होके उन समस्त सूक्ष्म शरीरोंको निज लिङ्ग देह स्वरूपसे देखते हैं। जिन योगयुक्त पुरुषोंने आत्मामें कल्पित कामादि व्यसनोंको परित्याग किया है और जिन्होंने जगत्कारक प्रकृतिका अद्वैध अर्थात् प्रकृतिके तदात्म योग ऐश्वर्य्यसे भी विमुक्त हुए हैं, उन्हें क्या स्वप्नके समयमें क्या जाग्रत अवस्थामें, जैसे दिन वैसे ही रात्रिके समयमें, जैसे रात्रि वैसेही दिनके समयमें अर्थात् सब अवस्था तथा सब समयमेंही लिङ्गदेह वशीभूत रहती है। उन सब योगियोंका जीव

महदहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, इन सातों गुणोंसे सदा संयुक्त रहके इन्द्रादि लोकोंमें सदा विचरते हुए तीनों कालमें भी मिथ्याल निवन्धनसे धावित होनेसे भी अजर और अमर हुआ करता है। स्वदेह और परदेह विज्ञ योगी यदि मन तथा बुद्धिके जरिये पराभूत हो, तो वह थोड़े समयमें भी सुख दुःखका अनुभव किया करता है। वह जब सपनेमें भी कभी सुख लाभ करता, कभी दुःख भोग किया करता है, तब वह क्रोध और लोभके बशमें होकर विपदग्रस्त होता है, वह स्वप्न समयमें बहुत सा धन प्राप्त करके प्रसन्न होता, पुण्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करता और जैसे जाग्रत अवस्थामें सब विषयोंका दर्शन किया जाता है, वैसेही उस समयमें भी उसहीके अनुरूप सब वस्तुओंको देखा करता है। स्वप्नकालकी भांति जीव गर्भमें जठर उष्माके बीच शयन किया करता है। कोखके बीच दश महीनेतक बास करके भी जीव अन्नकी तरह जीर्ण नहीं होता। वह अत्यन्त तेजस्वी परमेश्वरके अंशभूत हृदयमें स्थित जीवात्माको तमोगुण और रजोगुण युक्त पुरुष देहके बीच देखनेमें समर्थ नहीं हैं। जो लोग योग शास्त्रपरायण होके उस आत्माको प्राप्त करनेकी अभिलाष करते हैं, वे अचेतन स्थूल शरीर, अमूर्त्त सूक्ष्म शरीर और बज्रकी भांति अर्थात् ब्रह्माके प्रलयमें भी अविनाशी कारण शरीरोंको अतिक्रम करनेमें समर्थ होते हैं। विभिन्न रूपसे विहित सन्न्यास धर्म्मके बीच समाधिके समयमें मैंने जो यह योगका विषय कहा, शाण्डिल्य मुनिने इसे सन्न्यासियोंके शान्तिका हेतु कहा है। इन्द्रिय इन्द्रियोंके विषय, मन, बुद्धि, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष, ये सातों सूक्ष्म विषय तथा सर्व्वज्ञता, तृप्ति अनादिका बोध, स्वतन्त्रता, सदा अलुप्त दृष्टि और अनन्त शक्ति, इस षड़ङ्गयुक्त महेश्वरको जानके, यह जगत् त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका विपरिणाम है,—इसे जो लोग जानते हैं, वे गुरु और वेदान्त बचनके अनुसार परब्रह्मका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं।

२५२ अध्याय समाप्त।

व्यासदेव बोले, हृदयक्षेत्रमें मोहमूलक एक विचित्र कामतरु विराजमान हुआ करता है; क्रोध और मान उसके महास्कन्ध, बिधित्सा उसके आलवाल, अज्ञान उसका आधार है; प्रमाद उसे सिंचन करनेवाला जल असूया उसका पत्र और वह पूर्व्वकृत दुष्कृतोंके जरिये सारवान हुआ करता है। सम्मोह और चिन्ता उसके पल्लव, शोक उसकी शाखा और भय उसका अङ्कुर होता है; वह छद्मभोहनी पिपासारूपी लताजालके जरिये परिपूरित हुआ करता है। अत्यन्त लोभी मनुष्य लोग आयस अर्थात् लौहमयके समान दृढ़पाशके जरिये संयत होकर उन्हीं सब वृक्षोंके फललाभकी अभिलाष करके उसे घेरकर उसकी सेवा किया करते हैं। जो लोग उन सब बासोंको बशमें करके उक्त वृक्षको छेदन करते हैं, वेही वैषयिक सुख दुःख त्यागनेकी बासना करनेपर सहजमेंही सुख दुःखसे पार होनेमें समर्थ होते हैं। अकृतबुद्धि मूर्ख लोग जो स्रक्चन्दन वनिता आदिके जरिये सदा उस कामतरुको सम्बर्द्धित करते हैं, विषग्रन्थिके आतुरघातकी भांति वही स्रकचन्दन वनिता आदिही उस बर्द्धकका विनाश किया करती हैं। कृती पुरुष योग प्रसादसे बलपूर्व्वक निर्व्विकल्पक समाधि स्वरूप उत्तम खड्गके जरिये उस मूलानुगत महावृक्षका मूल उद्धार किया करते हैं। इस ही प्रकार जो लोग केवल कामका निवर्त्तन करना जानते हैं, वे कामशास्त्रके बन्धनको छुड़ाके सब दुःखोंको अतिक्रम करते हैं। महर्षि लोग भोगायतन इस शरीरको पुर कहा करते हैं; भोगजनित सुख दुःख आदिके अभिमानित्व निवन्धन बुद्धिको इसकी स्वामिनी

कहते हैं। शरीरस्थ मन निश्चयात्मिका बुद्धिके अमात्य स्थानीय है; क्यों कि विचार परायण मन बुद्धिको भोगके लिये इन्द्रिय विषयस्वरूप समस्त धनको अर्पण करता है, इन्द्रियें पुरवासी स्वरूप हैं, इन्द्रिय स्वरूप पौरजनोंको पालनेके लिये मनकी महती क्रियाप्रवृत्ति अर्थात् यज्ञ दान आदि रूपसे दृष्टादृष्ट फलोंको साधन करनेवाली कर्म्म-प्रवृत्ति हुआ करती है। राजस और तामस नाम दोनों दारुण दोष कर्म्मफलोंको अन्यथा करते हुए चित्त-आमात्यकी कलुषता सिद्ध करते हैं. पुरेश्वर मन, बुद्धि और अहङ्कारके सहित इन्द्रियस्वरूप पौरगण तथा दोषयुक्त चित्त अमात्यके जरिये निर्म्मित कर्म्मफल सुखदुःख आदिको उपजीव्य किया करता है। ऐसा होनेसे राजस और तामस दोनों दोष अविहित मार्ग अर्थात् परदारा आदि भोगके जरिये सुखादिरूपी अर्थको उपजीव्य समझा करता है, शुद्ध सत्वमयत्व निवसन बुद्धि रजोगुण और सतोगुणके वशमें न होनेपर भी मनकी प्रधानताके कारण दोषकलुषित मनके सहित उसकी समता होजाती है। इन्द्रियरूपी पौरगण मनसे डरके चञ्चल होजाते हैं अर्थात् मन दुष्ट होनेपर इन्द्रियें भी दोष स्पृष्ट होकर किसी स्थानमें भी स्थैर्य्य अवलम्बन नहीं करतीं। दुष्टबुद्धि पुरुष जिस विषयको हितकर कहके निश्चय करता है, वह भी दुःखदायी अनर्थ होकर परिणाममें विनष्ट होता है। नष्ट अर्थ भी दुःखदायक हैं; क्यों कि बुद्धिके सहित मन अर्थ हानि स्मरण करके भी अवसन्न होजाता है। जब सङ्कल्परूपसे मन बुद्धिसे पृथक् होता है, तब उसे केवल मन कहा जाता है, यथार्थमें वही बुद्धि है; इसलिये उसके तापसे बुद्धि भी सन्तापित हुआ करती है। बुद्धिमें गया हुआ दुःखका फल देनेवाला रजोगुण उस बुद्धिके बीच विधृत अर्थात् प्रतिबिम्ब रूपसे स्थापित इस आत्माको आवरण करता है अर्थात् परिच्छेद परिताप आदि बुद्धिके धर्म्म तदुपहित आत्मामें प्रकाशित होते हैं, इससे मन रजोगुणके सङ्ग मिलकर सख्यता करता है अर्थात् प्रवृत्ति विषयमें उन्मुख होता है। सङ्गत मन उसही आत्मा और पौरजन इन्द्रियोंको वशमें करके रजोगुणके फल दुःखके निकट अर्पण करता है, अर्थात् जैसे कोई दुष्ट मन्त्री राजा और नगरवासी प्रजाको अपने अधीनमें करके शत्रुके निकट समर्पण करता है, वैसेही राजसिक मनके जरिये आत्मा बुद्धि और इन्द्रियां बद्ध होती हैं।

२५३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर! आकाश आदि भूतोंका निर्द्धारण गर्भ जो शास्त्र द्वैपायन मुनिके मुखसे वर्णित हुआ है, हे पापरहित! तुम अपनेको परम श्लाघायुक्त समझके उसे फिर मेरे समीप सुनो, प्रकाशमान अग्निके समान अर्थात् अज्ञानसे रहित भगवान द्वैपायनने जिसका वर्णन किया है,—हे तात! मैं उसही अज्ञानको नष्ट करनेवाले शास्त्रको फिर कहता हूं। स्थैर्य्य, गरुआई, कठोरता, प्रसवार्थता अर्थात् धान्य आदिके उत्पत्तिकी निमित्तता, गन्ध, गुरुत्व, गन्ध ग्रहण करनेकी सामर्थ्य। श्लिष्टावयवत्व, स्थापन अर्थात् मनुष्य आदिके आश्रयत्व और पञ्चभौतिकमनमें जो धृतिके अंश हैं, वे सब भूमिके गुण हैं। शीतता, स्वाद, द्रवत्व, स्नेह, सौम्यता, रसनेन्द्रिय, प्रस्रवण और भूमिसे उत्पन्न हुए चावल प्रभृतिके पचानेकी शक्ति, ये जलके गुण हैं। दुर्द्धर्षता; ज्योति, ताप, पाक, प्रकाश, शोक, राग लघुता, तीक्ष्णता और सदा उर्द्ध्वज्वलन, ये कई एक अग्निके गुण हैं। अनुष्ण, शीत, स्पर्श वागिन्द्रिय-गोलक, गमन आदि विषयोंसे स्वतन्त्रता, बल, शीघ्रता, मूत्र आदिका त्याग उत्क्षेपण आदि कर्म्म, श्वास प्रश्वास आदिकी चेष्टा,

प्राणरूपसे चिदुपाधिता और जन्म, मरण, ये कई एक वायुके गुण हैं। शब्द, व्यापकता, छिद्रता, आश्रयत्वाभाव, आश्रयान्तर, शून्यता, रूपस्पर्श शून्यता निबन्धन अव्यक्तता अविकारिता, अप्रतिघातिता, श्रवणेन्द्रियकी उपादानता और देहान्तर्गत छिद्र स्वरूपता, ये कई एक आकाशके गुण हैं। पञ्चभूतोंके यही पचास गुण प्राचीन महर्षियोंके जरिये बर्णित हुए हैं। धीरज, उपपत्ति अर्थात् ऊपापोह, कौशल, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना अर्थात् मनोरथ वृत्ति, क्षमा, वैराग्य, राग, द्वेष और अस्थिरत्व, ये नव मनके गुण हैं। इष्ट और अनिष्ट वृत्ति विशेषका बिनाश, उत्साह, चित्तकी स्थिरता, संशय और प्रतिपत्ति अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणवृत्ति, इन पांचोको पण्डित लोग बुद्धिका गुण समझते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! बुद्धि किस कारणसे पञ्चगुणान्वित हुई और इन्द्रियां ही किस लिये गुणरूपसे बर्णित हुई; आप इस सूक्ष्म ज्ञानका सब विषय मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! साधारण रीतिसे बुद्धिके पांच गुण बर्णित होनेपर भी वेद वचनके अनुसार उसे षष्टि-गुणयुक्त कहा जाता है; क्यों कि पञ्च भूतोंके पहले कहे हुए पचास गुण और स्वयं पञ्चभूत भी बुद्धिके गुणस्वरूप कहे गये हैं, बुद्धि अपने पञ्चगुणोंके सहित पूर्व्वोक्त पचपनगुणों मिलकर साठगुणोंसे संयुक्त होती है। वे सब गुण नित्य चैतन्यके सङ्ग मिलनेसे सबवृत्तियोंके जड़ होनेपर भी चैतन्यसम्बन्धसे उनके ज्ञानरूपत्व व्यवहार हुआ करते हैं सब भूतोंकी समस्त विभूति अक्षर परब्रह्मके जरिये उत्पन्न हुई हैं; परन्तु वह उत्पत्ति नित्य नहीं है,—यह वेदमें बर्णित है। हे तात! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके विषयमें दूसरे बादियोंने जो वेदविरुद्ध युक्ति कही हैं वे बिचारसे दूषित हैं; इससे तुम इस लोकमें मेरे कहे हुए नित्य सिद्ध परब्रह्मके तत्वको जानकर और ब्राह्मऐश्वर्य्य प्राप्त करके शान्त बुद्धि होजाओ।

२५४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, ये जो सब महाबलवान् राजा सेनाके बीच चेतरहित होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं, इनके बीच एक एक पुरुष अत्यन्त बलवान थे। कोई कोई दश हजार हाथीके समान बलशाली थे; ये सब युद्धभूमिमें समबल तथा तुल्य तेजवाले वीरोंके जरिये मारे गये हैं युद्धभूमिमें इनसब महाप्राणियोंको संहार करे, ऐसा मैं किसीको भी नहीं देखता हूं। ये सब बहुत बिक्रमसे युक्त और वीर्य्य तथा बलसे भरे थे; तौ भी ये महाबुद्धिमान् पुरुष प्राण रहित होके पृथ्वीपर सो गये हैं, और इन सब प्राणहीन मनुष्योंके विषयमें मृत शब्द व्यवहृत होरहा है। ये सब भयङ्कर बिक्रमी राजा लोग प्रायः बहुतेरे ही मर गये हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे यह संशय उत्पन्न हुआ है, कि 'मृत' यह नाम कहांसे उत्पन्न हुआ है; हे देव तुल्य पितामह! स्थूल शरीर वा सूक्ष्म शरीर अथवा आत्मा, इन कई एकके बीच किसकी मृत्यु होती है। किस पुरुषसे उत्पन्न होकर मृत्यु किस लिये सब प्रजासमूहको हरण करती है। आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात! पहिले समय सतयुगमें अनुकम्पक नाम एक राजा था, वह युद्धमें बाहनरहित होकर शत्रुओंके वशमें होगया। बल बिक्रममें नारायणके समान उसके हरि- नाम एक पुत्र था, वह युद्धमें शत्रुओंके जरिये सेनाके सहित मारा गया। शत्रुओंके वशीभूत और पुत्र शोकसे युक्त राजा अनुकम्पकने दैव संयोगसे शान्तिपरायण होकर एक बार पृथ्वी-

मण्डलपर महर्षि नारदका दर्शन किया। उस राजाने पुत्रका मरना और शत्रुओंके जरिये जिस प्रकार बन्धन प्राप्त हुआ था, वह सब उनके निकट निवेदन किया। अनन्तर तपोधन नारदमुनि उनका वह सब बचन सुनके उस समय पुत्र शोकको दूर करनेवाला यह लम्बायमान अख्यान कहने लगे।

नारदमुनि बोले, हे पृथ्वीनाथ महाराज! यह बहुत बड़ा उपाख्यान जिस प्रकार कहा गया था, और मैंने जैसे सुना है, उसे इस समय तुम सुनो। महातेजस्वी पितामहने प्रजा उत्पन्न करनेके समय बहुतसी प्रजाकी सृष्टि की; उस समय वे सब प्रजा अत्यन्त बुद्धिमान हुई परन्तु कोई पुरुष मृत्युके वशीभूत न हुए। उस समय कोई स्थान भी प्राणियोंसे सूना नहीं था, मानो तीनों लोक प्रजासमूहसे भर गया था; इसलिये प्रजापतिके अन्तःकरणमें संहारकी चिन्ता उत्पन्न हुई उन्होंने चिन्ता करते ही संहार विषयमें हेतुयुक्त कारण पाया। हे महाराज! क्रोध वशसे उनके इन्द्रिय छिद्रोंसे अग्नि उत्पन्न हुई। हे राजन्! पितामह उस ही अग्निके जरिये सब दिशाओंको जलानेमें प्रवृत्त हुए। हे महाराज! अनन्तर ब्रह्माके कोपसे उत्पन्न हुई अग्नि द्युलोक, भूलोक और आकाशमण्डलमें स्थित ग्रह, नक्षत्र तथा स्थावर जङ्गमके सहित समस्त जगत्को जलाने लगी। पितामहके महाक्रोधके वेगसे कुपित होनेपर उनकी क्रोधाग्निसे स्थावर जङ्गम सब जीव जलने लगे। तब पिंगल वर्ण जटासे युक्त वेदपति और यज्ञपति परवीरहन्ता महादेव पितामहके निकट उपस्थित हुए, जब भगवान् महादेव प्रजासमूहकेहितकी इच्छासे पितामहके निकट उपस्थित हुए उस समय मानो ब्रह्मा तेजसे प्रज्वलित होकर महादेवसे बोले, हे शम्भु! आज मैं तुम्हें वर ग्रहण करनेके योग्य समझता हूं; इसलिये तुम्हारी कौनसी अभिलाषा पूरी करूं; तुम्हारे हृदयमें जो प्रिय विषय विद्यमान है, आज मैं उसे पूर्ण करूंगा।

२५५ अध्याय समाप्त।

महादेव बोले, हे प्रभु पितामह! प्रजा सृष्टिके लिये ही मेरी यह प्रार्थना समझिये; आपने समस्त प्रजाकी सृष्टिकी है; इसलिये इनके ऊपर कोप न करिये। हे देव जगत्प्रभु! आपके तेजरूपी अग्निसे सारी प्रजा सब भांतिसे जली जाती है, उसे देखके मुझे करुणा हुई है, इसलिये आप इन लोगोंके ऊपर क्रोध न करिये।

ब्रह्मा बोले, मैंने क्रोध नहीं किया है और सब प्रजा न रहे,—यह भी मेरी इच्छा नहीं है केवल पृथ्वीके भारको हलका करनेके ही लिये इनके संहारको इच्छा करता हूं। हे महादेव! इस भारसे दुःखित वसुन्धराने बहुतसे बोझके कारण जलमें डूबती हुई सदा संहारके लिये मुझे उत्तेजित किया है, मैंने इन वृद्धिको प्राप्त हुई प्रजासमूहके संहारके विषयमें जब बुद्धिसे बहुत बिचार करके भी कोई उपाय न देख सका तब मेरे शरीरसे क्रोध उत्पन्न हुआ।

महादेव बोले, हे विबुधेश्वर! आप प्रसन्न होइये, प्रजाके संहारके निमित्त क्रोध न करिये स्थावर, जंगम जीव विनष्ट न होवे, समस्त पल्वल तथा वल्वज, तृण वा स्थावर जङ्गम आदि चार प्रकारके उत्पन्न हुए जीव, ये सभी भस्म प्राय हुए हैं इससे सब जगत् उपप्लुत हुआ है। हे साधु! हे भगवन्! इसलिये आप प्रसन्न होइये, मैंने यही वर मांगा, ये सब प्रजा जो कि नष्ट हुई हैं, वे किसी प्रकार फिर आगमन न करेंगी, इससे निज तेजके जरिये ही इस तेजको निवृत्ति होवे। हे पितामह! ये सब जन्तु जिसमें भस्म न हो जावें, आप जीवोंकी हितकामनासे वैसा दूसरा उपाय अवलोकन करिये, हे लोकनाथेश्वर! आपने मुझे अहङ्काराधिष्टात्वमें नियुक्त किया है; इससे प्रजासमूहका

प्रजननकी उच्छेद निबन्धनसे जिसमें अभाव न हो, आप वैसेही किसी उपायका विधान करिये। हे नाथ! यह स्थावर जङ्गम जगत् आपसेही उत्पन्न हुआ है। हे देवोंके देव! इसलिये मैं आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करता हूं, कि सब जीव मरनेके अनन्तर बार बार जन्म ग्रहण किया करें।

नारदमुनि बोले, नियत वाक्य और संयत-चित्त देव प्रजापतिने महादेवके उक्त वचनको सुनकर अन्तरात्मामें उस तेजको समेट लिया। अनन्तर सर्व्वलोक पूजित भगवान् प्रभु पितामहने अग्निको उपसंहार करके जीवोंके जन्म और मरणकी व्यवस्था कर दी। महानुभाव प्रजापतिके क्रोधज अग्निको उपसंहार करनेके समय उनके निखिल इन्द्रिय रन्ध्रोंसे एक स्त्री उत्पन्न हुई वह नारी काले और लाल वस्त्र पहने हुए दिव्य कुण्डलोंसे युक्त दिव्य आभूषणोंसे भूषित और उसके दोनों नेत्र और करतल काले थे; वह इन्द्रिय छिद्रोंसे निकलते हो उनकी दहनो ओर बैठ गई। विश्वेश्वर ब्रह्मा और रुद्र दोनों ही उस कन्याको देखने लगे। हे महाराज! उस समय सब लोकोंके ईश्वर आदिभूत ब्रह्मा उस कन्याको मृत्यु नामसे आवाहन करके बोले, तुम इन सब प्रजाको संहार करो। हे कामिनी! तुम शीघ्र प्रजाको संहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ मेरे नियोगके अनुसार तुम्हारा परम कल्याण होगा। जब कमलमालिनी मृत्युदेवीसे प्रजापतिने ऐसा कहा, तब वह कन्या अत्यन्त दुःखित होकर आंसू बहाती हुई चिन्ता करने लगी। मृत्युके आंसू गिरनेसे इकबारगी सब भूतोंका नाश न होजाय, इस ही आशङ्कासे प्रजापतिने अपने दोनों हाथकी अञ्जलीमें उसके आंसुओंको ग्रहण किया और मनुष्योंके हितके लिये फिर उसके निकट प्रार्थना की।

२५६ अध्याय समाप्त।

नारदमुनि बोले, वह विशाल नैनी अबला स्वयं ही दुःख दूर करके उस समय आवर्ज्जित लताकी भांति हाथ जोड़के बोली, हे वक्तृवर! आपने मेरे समान स्त्री क्यों उत्पन्न की; मेरे समान अबलाके जरिये भयङ्कर रौद्रकर्म्म किस प्रकार साधित होवेगा मैं अधर्म्मसे अत्यन्त डरती हूं; इसलिये आप मेरे विषयमें धर्म्मविहित कर्म्म करनेको आज्ञा करिये; आप मुझे भयार्त्त देख रहे हैं; इससे कल्याणकारी नेत्रसे अवलोकन करिये। हे प्रजेश्वर! मैं निरपराधिनी बाला हूं, बूढ़े वा युवा प्राणियोंको हरण न कर सकूंगी, मैं आपको नमस्कार करती हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। जिसके प्रिय पुत्र, सखा, भाई, माता और पिता आदिको मैं हरण करूंगी वह यदि मुझे शाप देवें,—उस ही निमित्त मैं अत्यन्त भयभीत हुई हूं; दुःखित प्राणियोंको आंखोंके आंसू मुझे सदा जलावेंगे इसलिये मैं वैसे प्राणियोंसे अत्यन्त भयभीत होकर आपको शरणागत हुई हूं। हे देव! पाप कर्म्म करनेवाले मनुष्य ही यम लोकमें गमन करें; हे बरदायक! इससे आप मुझपर कृपा करिये। हे लोकपितामह महेश्वर! मैं आपके निकट यही प्रार्थना करती हूं, कि आपकी प्रसन्नताके लिये मुझे तपस्या करनेकी इच्छा है, आप इस विषयमें आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, हे मृत्यु! मैंने प्रजा संहार करनेके लिये तुम्हें उत्पन्न किया है, इससे जाके सब प्रजाको संहार करो, इस विषयमें और बितर्क मत करो; मैंने जैसा सङ्कल्प किया है, वह अवश्य वैसा ही होगा, उसमें कभी उलट फेर न होगा। हे पापरहित अनिन्दिते! मैंने जो बचन कहा है, उसे प्रतिपालन करो। हे पराये देशको जीतनेवाले महाबाहु महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा बचन सुनके कुछ भी न बोली, केवल नम्रभावसे भगवानके निकट सिर झुकाकर स्थिति करने लगी; बार बार कह-

नेपर भी जब वह भामिनी चेतरहितकी भांति चुपी साध गई ; तब देवेश्वर ब्रह्मा आपसे आप ही प्रसन्न हुए और उन लोकनाथने बिस्मित होकर सब लोकोंको देखा। अनन्तर उन पराजयरहित भगवान्‌का क्रोध निवृत्त होनेपर वह कन्या उनके निकटसे चली गई—ऐसा हमने सुना है। हे राजेन्द्र! मृत्यु उस समय वहांसे गमन करके प्रजा संहार विषयको अनंगीकार करती हुई शीघ्रताके सहित धेनुक तीर्थमें गई, वह देवी धेनुक तीर्थमें परम दुष्कर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुई। वह पन्द्रह पद्म-बर्ष परिमाणसे एक चरणसे खड़ी होके स्थिति करने लगी। जब मृत्यु उस स्थानमें इस प्रकार दुष्कर तपस्या कर रही थी, उस समय महातेजस्वी ब्रह्मा फिर उससे यह बचन बोले, हे मृत्यु! मेरा बचन प्रतिपालन करो। मृत्यु उनके बचनका अनादर करके शीघ्रता-पूर्व्वक फिर सातपद्म बर्ष परिमाण एक चरणसे खड़ी रही। हे मानद! इसी प्रकार पर्य्याय क्रमसे उसने तेरह पद्म बर्ष व्यतीत किया। शेषमें वह फिर अयुतपद्म बर्ष पर्य्यन्त मृगसमू-होंके सहित घूमती रही। हे महाबुद्धिमान् महाराज! मृत्यु बीसहजार बर्ष तक वायु पीके रही थी। हे राजन्! अनन्तर उसने अत्यन्त कठोर मौनव्रत अवलम्बन किया, सातहजार एक बर्षतक जलमें निवास किया। हे नृपसत्तम! अनन्तर उस कन्याने गण्डकी नदीमें गमन किया, वहां वायु और जल पीके फिर नियमा-चरण करने लगी, अन्तमें वह महाभागा गङ्गा-नदी और सुमेरु पर्व्वतपर गई। वहां प्रजास-मूहको हितकामनाके लिये स्थाणुकी भांति केवल निश्चेष्ट होरही। हे राजेन्द्र! अनन्तर हिमालयकी शिखरपर जहां कि देवताओंने यज्ञ किया था ; वहांपर वह निखर्व्व बर्ष पर्य्यन्त अंगूठेके बल स्थित रही और परम यत्नसे प्रजापतिको प्रसन्न किया। उस समय सब लोकोंकी सृष्टि और प्रलयके कारण प्रजापति उससे बोले, हे पुत्री! यह क्या होरहा है? मेरा पहला बचन प्रतिपालन करो।

पितामहका बचन सुनके मृत्युने उन भग-वान्‌से फिर कहा, हे देव! मैं प्रजासमूहका संहार न करूंगी, मैं फिर आपको प्रसन्न करती हूं। देवोंके देव पितामहने उस कन्याको अधर्मके भयसे डरी हुई तथा फिर प्रार्थना करती हुई देख निज वाक्यका निग्रह करके यह बचन बोले, हे शुभे! तुम इन सब प्रजाको संयत करो, इससे तुम्हें अधर्म न होगा। हे कल्याणि! मैंने जो कुछ कहा है, वह मिथ्या न होगा; सनातन धर्म इस समय तुम्हें अवलम्बन करेगा; मैं तथा दूसरे देवता लोग सब कोई तुम्हारे हितमें रत रहेंगे। तुम्हारी यह अभिलाषा तथा और जो कुछ तुम्हारे मनमें अभिलषित विषय है; उसे प्रदान करता हूं; व्याधिसे पीड़ित प्रजा तुम्हें दोषी न करेंगी। तुम प्रति पुरुषमें निज स्वरू-पसे पुरुषत्वको प्राप्त होगी; स्त्रियोंमें स्त्रीरूपी होगी और नपुंसकोंमें नपुंसकत्व लाभ करोगी।

हे महाराज! मृत्यु प्रजापतिका ऐसा बचन सुनके फिर उस अव्यय महात्मा देवेश्वरके समीप हाथ जोड़के प्रजासंहारके विषयमें अन-ङ्गीकार बचन ही कहने लगी। देव पितामह उस समय उससे बोले, हे मृत्यु! तुम मनुष्योंको संहार करो। हे शुभे! जिसमें तुम्हें अधर्म न हो, मैं उसही उपायको सोचूंगा। हे मृत्यु! तुम्हारे जिन सब आंसुओंकी बूंदोंको गिरती हुई देखके मैंने तुम्हारे सम्मुखमें ही अञ्जली धारण की थी, वेही भयङ्कर व्याधि होकर समय उपस्थित होनेपर मनुष्योंको तुम्हारे बशीभूत करेंगी। तुम सब प्राणियोंके अन्तकालमें इक-बारगी मरणके निदान काम और क्रोधको प्रेरणा करोगी; ऐसा होनेसे नित्य धर्म तुम्हें अवलम्बन करेगा अर्थात् काम क्रोधको प्रकट कर उसहीके जरिये जीवोंका संहार करके तुम

राग द्वेषसे रहित होनेके कारण अधर्मभाजन न होगी। तुम इसी प्रकार धर्म्म पालन करोगी, किसी भांति आत्माको अधर्म्ममें निमग्न न करोगी; इसलिये तुम इच्छानुसार निज अधिकारकी अभिलाष करो और कामकी प्रकट करके अब जीवोंकेसंहार करनेमें प्रवृत्त होजाओ।

मृत्यु नामी कामिनीने उस समय शापभयसे डरके ब्रह्मासे बोली, "वैसाही करूंगी"। अनन्तर वह प्राणियोंके अन्तकालमें काम क्रोधको प्रेरणा कर और सबको मोहित करके प्राणियोंका नाश किया करती है। पहिले मृत्युके जो सब आंसू गिरे थे वेही व्याधि स्वरूप हुए हैं, उन्हीं व्याधियोंके जरिये मनुष्योंका शरीर रोगयुक्त हुआ करता है, इससे प्राणियोंके जीवन नष्ट होनेपर शोक करना उचित नहीं है इसलिये तुम शोक मत करो, बिचारके जरिये यथार्थ विषय मालूम करो। हे राजन्! जैसे इन्द्रियां सुषुप्ति अवस्थामें सत्वस्तुके सङ्ग लीन होके जाग्रत अवस्थामें फिर लौटती हैं, वैसेही मनुष्य लोग जीवन शेष होनेपर गमन करके इन्द्रियोंकी भांति पुनरागमन किया करते हैं। भयङ्कर शब्दके युक्त महा तेजस्वी भयानक वायु सब प्राणियोंका प्राणभूत है, वह वायु देहधारियोंके देहभेदसे नाना वृत्ति अर्थात् अनेक शरीरगत हुआ करता है; इसलिये वायुही सब इन्द्रियोंसे श्रेष्ठ है। देवता लोग पुण्य-क्षीण होनेसे मनुष्य होते और मनुष्य पुण्यात्मा होनेसे देवत्व लाभ करते हैं। हे राजन्! इसलिये पुत्रके निमित्त शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र स्वर्गलाभ करके आनन्दित होरहा है। इसही प्रकार देवसृष्ट मृत्यु समय उपस्थित होनेपर प्रजाको संहार करती है, उसके वेही सब आंसू व्याधि होकर समयके अनुसार जीवोंको हरण किया करते हैं।

२५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! ये सब मनुष्य आर्य्य, जैन, म्लेच्छ आदि शास्त्रीय धर्म्मके नानात्व निबन्धनसे उस विषयमें सन्देहयुक्त होते हैं; इससे धर्म्मका स्वरूप और लक्षण क्या है। यथा कहांसे धर्म्मकी उत्पत्ति हुआ करती है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये; और धर्म्म इसलोकके लिये, वा परलोकके लिये अथवा दोनों लोकोंके निमित्त है, यह भी आप मुझसे विशेष रीतिसे कहिये।

भीष्म बोले, वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन प्रकार धर्म्मके लक्षण हैं, और प्रयोजनको भी पण्डित लोग चतुर्थ लक्षण कहा करते हैं। महर्षि लोग धर्म्मके निमित्त हितकर कर्म्मोंको न्यूनाधिक भावसे निश्चय करते हैं, गार्हस्थ्य आश्रममें भी मोक्ष होती है, आलसी लोग सन्न्यास अवलम्बन करते हैं, त्याग करनेसे ही मुक्ति हुआ करती है; विषय लम्पट मनुष्य गार्हस्थ्याश्रमकी अभिलाष करते हैं इस ही प्रकार विषयभेदसे लोकयात्रा निवाहनेके लिये धर्म्मका नियम निर्णीत हुआ है। इस लोक और परलोक दोनों ओर धर्म्मके फल दीख पड़ते हैं। पापी मनुष्य निपुण भावसे धर्म्म प्राप्तिमें असमर्थ होकर पापयुक्त होता है। कोई कोई ऐसा कहा करते हैं, कि पाप करनेवाले पुरुष आपद कालमें भी पापोंसे नहीं छूटते। धर्म्मवित् पुरुष पापवादी होनेपर भी अपापवादी हुआ करते हैं, आचार ही धर्म्मकी निष्ठा है; इसलिये तुम उस आचारको अवलम्बन करनेसे ही धर्म्मको जान सकोगे। धर्म्म समाविष्ठ तस्कर जब परधनको हरता है, अथवा अराजक समयमें पराये चित्तको अपना कर लेता है, उस समय वह परम सुखी होता है; परन्तु जब तस्करके धनको दूसरे लोग हर लेते हैं, तब वह राजद्वारमें उपस्थित होता है, तब जो लोग निज धनसे सन्तुष्ट हैं, वह उनकी स्पृहा किया करता है; वह निर्भय, पवित्र

और अशंकित होकर राजद्वारमें प्रवेश करता है। अन्तरात्मामें कुछ भी दुश्चरित्र नहीं देखता। सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है, सत्यसे सारा संसार विधृत हुआ करता है, समस्त जगत् सत्यसे ही प्रतिष्ठित है। रौद्र कर्म्म करनेवाले पापाचारी मनुष्य भी पृथक् पृथक् शपथ करके सत्यके आश्रयसे अद्रोह और अविसम्वादमें स्थित रहते हैं, वे लोग यदि परस्परको प्रतिज्ञा भङ्ग करें, तो निश्चयही विनष्ट होवें, परधन हरना उचित नहीं,—यह सनातन धर्म्म है। बलवान् पुरुष पूर्व्वोक्त धर्म्मको निर्ब्बलोंके जरिये प्रवर्त्तित समझते हैं, जिस समय बलवानोंको दैवकी प्रतिकूलतासे निर्ब्बलता प्राप्त होती है, तब उन लोगोंकी भी धर्म्ममें रुचि हुआ करती है। अत्यन्त बलवान् पुरुष भी सुखी नहीं होते, इसलिये अनार्जव अर्थात् कुटिल कार्य्योंमें बुद्धि लगानी तुम्हें उचित नहीं है। सत्यवादी पुरुष असाधु, तस्कर और राजासे भयभीत नहीं होता, वह किसी पुरुषका कुछ अनिष्ट नहीं करता; इसहीसे निर्भय और पवित्र हृदयसे निवास किया करता है। गांवमें आये हुए हरिनकी भांति तस्कर सब लोगोंके समीप शङ्कित होता है, जैसे वह स्वयं बहुतसा पाप कार्य्य करता है, दूसरेको भी वैसाही दीखता है। जो शठ होता है, वह दूसरेको भी शठ समझता है; और शुद्ध हृदय तथा सदाशयवाले पुरुष सदा आनन्दित और निर्भय होकर सब ठौर विचरते हैं, अपने दुश्चरितके विषय आत्मासे पृथक् नहीं देखते। सब भूतोंके हितमें रत महर्षियोंने "दान करना चाहिये,"—इसेही धर्म्म कहा है; धनवान् मनुष्य उसही धर्म्मको निर्द्धनोंसे प्रवर्त्तित समझता है, दैववशसे जब वह भी दीनदशासे युक्त होजाता है, उस समयमें उसे भी उस ही धर्म्ममें रुचि उत्पन्न होती है; इसलिये अत्यन्त धनवान पुरुष भी कदाचित सुखी नहीं होते। जब मनुष्य दूसरेके किये हुए कर्म्मको आत्मकृत कर्म्म कहनेकी अभिलाषा नहीं करता, तब वह जिस कर्म्मको अपना प्रिय समझता है, दूसरेके लिये उसे कभी न करेगा।

जो पुरुष पराई स्त्रीका उपपति होता है; वह स्वयं दोषी है, इसलिये वह दूसरेको क्या कह सकेगा। वह यदि दूसरे पुरुषको उक्त कार्य्य करते हुए देखे तो मुझे बोध होता है, उसे कुछ न कह सकनेसे क्षमा किया करेगा। जो पुरुष स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है, वह किस प्रकार दूसरेका बधकर सकेगा; इसलिये अपने लिये जैसी अभिलाष करे, दूसरेके वास्ते भी वैसी ही इच्छा करनी उचित है। स्वीकार आवश्यकके अतिरिक्त भोग-साधन धन आदिके जरिये दीनजनोंका भरण-पोषण करे, इस ही निमित्त विधाताने कुसीद अर्थात् वृद्धिके निमित्त धन-प्रयोग प्रवर्त्तित किया है; दीन-दरिद्रोंके पालने पोषनेके लिये ही धनकी वृद्धि करनी चाहिये, नहीं तो केवल धनकी वृद्धि हो, यह उद्देश्य अत्यन्त निकृष्ट है। जिस सत्मार्गमें निवास करनेसे देवता लोग भी सम्मुखवर्त्ती हुआ करते हैं, वैसे सत्मार्गमें सदा विचरता रहे, अर्थात् सदा दम, दान और दयायुक्त होवे, अथवा लाभके समय यज्ञ, दान आदि धर्म्ममें अनुरक्त होना उत्तम कार्य्य है। हे युधिष्ठिर! प्रिय वाक्यसे जो कुछ प्राप्त होता है, मनीषी लोग उसेही धर्म्म कहा करते हैं, जो अपनेको प्रिय है, दूसरेके विषयमें वैसा ही करना चाहिये; जो अपनेको प्रिय नहीं है, दूसरेके सम्बन्धमें वैसा करना योग्य नहीं है। यह जो मैंने धर्म्म अधर्म्मका लक्षण वर्णन किया है, तुम उसकी आलोचना करो। पहले समयमें विधाताने साधुओंके दया प्रधान सत् चरित्रको ही सूक्ष्म धर्म्म लाभकी विधि निमित्तरूपसे विधान की थी। हे कुरु सत्तम! यही तुम्हारे निकट धर्म्मका लक्षण वर्णन किया

गया,— इसे सुनकर तुम किसी प्रकार अनाजीव कार्य्योंमें बुद्धि-निवेश न करना।

२५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! वेदैकगम्य, साधु समुद्दिष्ट धर्मका लक्षण अत्यन्त सूक्ष्म है, हमारी कोई प्रतिभा है, उसहीको अवलम्बन करके अनुमानके जरिये मैं यह सब प्रश्न करता हूं; मेरे हृदयमें बहुतसे प्रश्न थे, उनमेंसे आपने अधिकांशके उत्तर दिये हैं, अब दूसरी प्रकारका एक प्रश्न करता हूं, उस विषयमें कुतर्क करनेका मुझे आग्रह नहीं है, पूंछना ही मुख्य प्रयोजन है। हे भारत! यह प्रसिद्ध ही है, कि ये समस्त शरीरयुक्त प्राणी स्वयं ही जीवन लाभ करते हैं, स्वयं ही उत्पन्न होते हैं और स्वयं ही उत्तीर्ण अर्थात् देहाकारसे च्युत होते हैं; ऐसी जनश्रुति है, कि अन्नसे ये सब जीव जन्म ग्रहण करते हैं, जन्म ग्रहण करके अन्नसे ही जीवित रहते हैं, और अन्त समय अन्नमें जाके प्रवेश किया करते हैं; आपने कहा है दूसरोंके सुख दुःख उत्पादनसे जो धर्म्माधर्म्म उत्पन्न होता है वह कालान्तरमें अपना सुख दुःखप्रद हुआ करता है; इसलिये केवल वेदाध्ययनसे ही धर्म्मका निश्चय नहीं किया जा सकता; क्यों कि व्यवस्थाके अभाव निबन्धनसे वैदिक धर्म्म अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। सब पुरुषोंके धर्म्म स्वतन्त्र हैं और विषमस्थ लोगोंका स्वतन्त्र धर्म्म है; आपदका अन्त नहीं है; इसलिये धर्म्मको भी अनन्त कहना होगा। अनन्त होनेसे ही धर्म्म दुर्ज्ञेय हुआ; इसलिये अव्यवस्थित वैदिक धर्म्मका धर्म्मत्व किस प्रकार सिद्ध हो सकेगा। और सदाचारको आपने धर्म्म कहा है, परन्तु धर्म्माचरणसे ही लोगोंमें सत् हुआ करता है; इसलिये लक्ष्य और लक्षणके अन्यन्याश्रय दोषसम्पर्कसे सदाचारको धर्म्मलक्षण रूपसे किस प्रकार स्वीकार किया जावे; यह दीख पड़ता है, कि कोई प्राकृत पुरुष धर्म्मरूपसे अधर्म्म करता है और कोई असाधारण मनुष्य अधर्म्मरूपसे धर्म्माचरण करता है। शूद्र जातिको वेद सुनना शास्त्रमें मना होनेपर भी प्राकृत शूद्र धर्म्मबुद्धिके कारण मुमुक्षु होकर वेदान्त सुना करते हैं और अगस्त्य आदि असाधारण महर्षियोंने बहुतसे हिंसायुक्त अधर्म्माचरण किये हैं, इसलिये भ्रष्ट लोगोंमें शिष्ट लक्षण दीख पड़नेसे सदाचारका भी निर्णय करना अत्यन्त दुःसाध्य है; परन्तु धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने धर्म्मके यही प्रमाण निर्देश किये हैं। मैंने सुना है युग युगमें वेदोंकी घटती हुई जाती है, इसलिये कालभेदसे जब कि वेदमें भी अन्यथा देखी जाती है, तब वह अनवस्थित वेदवाक्य भी अश्रद्धेय होसकता है। सतयुगका धर्म्म स्वतन्त्र है; त्रेता, द्वापरके स्वतन्त्र धर्म्म हैं और कलियुगका धर्म्म उनसे पृथक् है, मानो यह शक्तिके अनुसार विहित हुआ है। "वेदके सब बचन सत्य हैं,"—यह केवल लोकरञ्जन मात्र है, और वेदसे निकली हुई स्मृतियें सर्व्वमुख हुई हैं; इसलिये किस प्रकार स्मृतिवाक्य प्रमाण किया जा सकता है। सबका प्रमाण वेदवाक्य सारी स्मृतियोंके प्रमाणको सिद्ध करता है, यदि यह अङ्गीकार किया जावे, तो वेदवाक्यका निरपेक्षत्व निबन्धन प्रमाण स्वीकार करना होगा और सब स्मृतियें श्रुति-संक्षेप कहके अप्रमाण रूपसे परिगणित हुआ करती हैं; परन्तु अप्रमाणरूपी स्मृतिके सङ्ग जब श्रुतिका बिरोध दीख पड़ता है, तब मूलभूत वेदवाक्यका भी अप्रमाणत्व-निबन्धन एक पक्षपातिनी युक्तिके बिना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रुति तथा स्मृति दोनोंके ही अप्रमाणके कारण शास्त्रत्व सिद्धि किस प्रकार हो सकती है।

बलवान् दुरात्मा पुरुषोंके जरिये क्रियमाण धर्म्मका जो जो स्वरूप विकृत होता है, वही

प्रनष्ट होजाता है। हम स्वयं इस धर्म्मको जानें वा न जानें अथवा जानने सकें, वा न जान सकें; तो भी धर्म्म क्षुरधारसे भी सूक्ष्म और पहाड़से भी गुरुतर है। पहले धर्म्म गन्धर्व्वनगरकी भांति अद्भुतरूपसे दीख पड़ता है, अर्थात् धर्म्मकाण्डमें कहा है, कि "चातुर्म्मास-याजीको अक्षय सुकृत होता है। हम सोमपान करेंगे, अमर होंगे"—इत्यादि श्रुतिका गन्धर्व्व नगरके समान अद्भुतत्व दीख पड़ता है। अनन्तर कवियोंके जरिये उपनिषत्के बीच वक्ष्यमाण कर्म्म फिर अदृश्यताको प्राप्त होता है, अर्थात् कार्य्यमात्र ही अनित्य हैं; कर्म्मसे जो लोक जय किया जाता है, उसका भी नाश होता है इत्यादि उपनिषत् वाक्यसे धर्म्म अत्यन्त तुच्छ बोध होता है।

हे भारत! जैसे पशुओंके पीने योग्य क्षुद्र तालावके जलको खेतमें सींचने पर सारा तालाव सूख जाता है, वैसेही शाश्वत धर्म्म अङ्गहीन होकर कलियुगके शेषमें अदृश्य होगा। इस ही प्रकार भविष्य विषयणी स्मृति है, कि निज इच्छा वा पराई इच्छा तथा दूसरे किसी कारणसे बहुतेरे असत् पुरुष वृथा आचार किया करते हैं, साधुओंके आचरित कर्म्मही धर्म्म रूपसे मालूम होते हैं परन्तु मूढ़ दृष्टिसे देखनेसे वही धर्म्म साधुओंमें प्रलापमात्र मालूम हुआ करता है। मूढ़ लोग साधुओंको उन्मत्त कहा करते हैं, और उनकी हंसी करते हैं। द्रोणाचार्य्य आदि महाजनोंने ब्राह्मणोंके कर्त्तव्य कार्य्यका अनादर करके क्षत्रियधर्म्म अवलम्बन किया था; इसलिये सर्व्व हितकर कोई व्यवहार प्रवर्त्तित नहीं होता। इसके अतिरिक्त आचारके जरिये निकृष्ट जाति भी उत्कृष्ट होती है, और उत्तम वर्ण भी निकृष्ट हुआ करते हैं। कभी कोई पुरुष दैवइच्छासे आचारके जरिये समान रूपसे ही रहते हैं, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ आदि इस विषयमें विस्पष्ट दृष्टान्त स्थल हैं जिस आचारके जरिये एक पुरुष उन्नत होता है, वही आचार दूसरेकी अवनत करता है, इसको पर्य्यालोचना करनेसे सब आचारोंमें ही अनैक्यता अर्थात् व्यभिचारित्व मालूम हुआ करता है। प्राचीन पण्डित लोग सदासे जिस धर्म्मको स्वीकार करते चले आते हैं, आपने वह विषय ही वर्णन किया; इसलिये उस प्राचीन आचारके जरिये शाश्वती मर्य्यादा स्थापित हुआ करती है, परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है, कि अनादि अविद्या प्रवृत्त स्वभावसे ही सुख-दुःख कार्य्याकार्य्य की व्यवस्था हुआ करती है। वेद प्रमाणक धर्म्मके जरिये सुख दुःख आदि कार्य्याकार्य्य की व्यवस्था नहीं होती।

२५८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धर्म्म विषयमें जाजलीके सङ्ग तुलाधारकी जो सब वार्त्ता हुई थी, इस विषयमें प्राचीन लोग उस ही पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। जाजली नाम कोई वनचारी ब्राह्मण जङ्गलमें वास करते थे, उस महातपस्वीने समुद्रके किनारे बहुत तपस्या की थी। वह धीमान् मुनि संयत और नियताहारी होकर अनेक वर्ष पर्य्यन्त चीर, मृगछाला और जटा धारण करके मलिन हुए थे। हे राजन्! किसी समय वह महातेजस्वी विप्रर्षि समुद्रके जलमें वास करते हुए सब लोकोंको देखनेके लिये उत्सुक होकर मनकी भांति वेष धारण करके विचरने लगे। अनन्तर उन्होंने वन सहित समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वीको देखकर फिर चिन्ता की, कि स्थावर जङ्गमयुक्त संसारके बीच मेरे समान वा मेरे सहित जलके बीच तथा आकाशमण्डलके नक्षत्रादि लोकोंमें गमन कर सके, ऐसा कोई भी नहीं है। वह जब जलके बीच राक्षसोंसे अदृश्यमान रहके ऐसा कह रहे थे, तब पिशाचोंने उनसे कहा, हे द्विजसत्तम!

तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है, वाराणसी (काशी) में तुलाधार नाम वणिक् व्यवसायी एक महायशस्वी मनुष्य है, तुम जैसा कहते हो, वह भी वैसा वचन नहीं कह सकता। महातपस्वी जाजलीने पिशाचोंका ऐसा वचन सुनके उन्हें उत्तर दिया, कि बहुत अच्छा, मैं बुद्धिमान यशस्वी तुलाधारका दर्शन करूंगा। ऋषि जब ऐसा वचन बोले, तब पिशाचोंने उन्हें समुद्रसे उठाकर कहा, हे द्विजवर! तुम इस ही मार्गको अवलम्बन करके गमन करो। जाजली मुनि भूतोंका ऐसा वचन सुनकर मलिन-मन होकर काशीमें तुलाधारके समीप वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जाजली मुनिने पहिले कौनसा दुष्कर कर्म्म किया था, जिससे कि उन्होंने परम सिद्धि पाई; आप मेरे समीप उसेही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महातपस्वी जाजली मुनि घोर तपस्यायुक्त हुए थे, वह सन्ध्या और सबेरेके समय स्नान और आचमनमें रत रहते थे। वह स्वाध्यायमें रत द्विजश्रेष्ठ यथानियमसे अग्निको परिचर्य्या करते थे, वाणप्रस्थ विधान जानके वेदविद्यासे प्रदीप्त हुए थे, वह वर्षाकालमें आकाशशायी और हेमन्तमें जल संश्रयी होकर तपस्या करते थे; परन्तु यह न जानते थे, कि मैं धर्म्मवान् हूं। ग्रीष्मकालमें वायु और घाम सहते थे, तौभी अपनेको धार्म्मिक समझके अभिमान नहीं करते थे। वह भूमिपर अनेक दुःखकरी शय्यापर शयन करते थे।

अनन्तर किसी प्रावृट्कालमें उस मुनिने आकाशको अवलम्बन करके अन्तरीक्षसे बार बार गिरते हुए जलको शिरपर धारण किया था। उससे उनकी सब जटा छिन्न और ग्रथित हुई थी। वह सदा वनमें घूमनेसे मलिन और मलयुक्त हुए थे। उस महातपस्वीने कभी कभी निराहारी और वायुभक्षी होकर काठकी भांति अव्यग्र भावसे निवास किया था, किसी प्रकार विचलित नहीं हुए थे। हे भारत! उसही शाखारहित वृक्षकी भांति चेष्टाहीन मुनिके शिरपर चटकपक्षी-दम्पतीने घोसला बनाया; जब पक्षी-दम्पती तृणोंसे घोसला बना रही थी, तब उन दयावान् महर्षिने उसे निवारण न किया। वह स्थाणुस्वरूप महातपस्वी जब किसी प्रकार विचलित न हुए, तब वह विहंग-दम्पती विश्वस्त होकर सहजमें ही उन महर्षिके शिर पर वास करने लगी। वर्षाकालके बीतने और शरत्काल उपस्थित होनेपर काम मोहित पक्षी मिथुन प्राकृतिक धर्म्मके अनुसार विश्वासके वशमें होकर उस मुनिके शिरपर अण्डा प्रसव किया। उस संशितव्रती तेजस्वी विप्रने उसे जाना और जानके भी वह महातेजस्वी जाजली कुछ भी विचलित नहीं हुए; वह सदा धर्म्मनिष्ठ रहनेके कारण कभी अधर्म्ममें अभिलाष नहीं करते थे। अनन्तर वे दोनों पक्षी प्रतिदिन उनके शिरपर आके आश्वासित और हर्षित होकर वास करते थे कालक्रमसे अण्डोंके परिपुष्ट होने पर उनमेंसे बच्चे उत्पन्न हुए और जन्म लेकर वहां क्रमसे बढ़ने लगे; तौभी जाजली विचलित नहीं हुए। वह चेष्टा रहित, समाधिनिष्ठ, धृतव्रत, धर्म्मात्मा चटकपक्षीके बच्चोंकी रक्षा करते हुए उस ही प्रकार स्थिति करने लगे। समयके अनुसार चटकशावकोंके पङ्ख जमे, मुनिने उसे जान लिया। अनन्तर किसी समयमें बुद्धिमान् यतव्रती महर्षि उन पक्षियोंको देखकर परम प्रसन्न हुए। पक्षी-दम्पती भी अपने बच्चोंको पूरीरीतिसे बढ़ते देख हर्षित होकर निर्भयताके सहित उनके सहित मुनिके शिर पर वास करने लगी। जब पक्षी शावकोंके पङ्ख जम गये, तब वह उड़नेवाले होकर स्थानान्तरमें गमन करके फिर सन्ध्याके समय मुनिके शिरपर आके वास करते थे; विप्रवर जाजली उससे भी

बिचलित न हुए, किसी समय वे बच्चे जनक-जननीसे परित्यक्त होके भी मुनिके शिरपर आगमन करके फिर स्थानान्तरमें गमन करते थे। सदा उनके ऐसा आचरण करने पर भी जाजली निज स्थानसे बिचलित न हुए। हे राजन्! इस ही प्रकार सारा-दिन बिताकर पक्षीशावक सन्ध्याके समय निवासके लिये उस ही स्थानमें लौट आते थे किसी समय पक्षी-वृन्द स्थानान्तरमें पांचदिन बिताकर छठवेंदिन जाजलीके शिर पर आके उपस्थित होते थे, इससे भी मुनि बिचलित न हुए। क्रम क्रमसे वे बच्चे बलवान् होनेसे स्थानान्तरमें कई दिन बिताके भी नहीं लौटते थे, कभी एक महीनेके लिये उड़के चले जाते थे; फिर लौट कर नहीं आते थे, परन्तु जाजली उस ही भांति निवास करतेथे। अनन्तर उन पक्षियोंके एक समय उड़के चले जाने पर जाजलीने बिस्मययुक्त होके समझा कि "मैं सिद्ध हुआ हूं। ऐसा ज्ञान होनेके अनन्तर उनके चित्तमें अभिमान उत्पन्न हुआ। व्रतनिष्ठ जाजली उन पक्षियोंको एकबारही निज मस्तकसे निकलते देखकर अपनेको सत्कारके योग्य समझके अत्यन्त प्रसन्न चित्त हुए। उस महा तपस्वीने नदीमें स्नान करके अग्निमें आहुति देनेके अनन्तर सूर्य्यको उदय होते देखकर उनकी उपासना की। जापकश्रेष्ठ जाजलीने शिरके बीच चटकशावकोंकी पूरीरीतिसे वर्द्धित करके "मैंने धर्म्म लाभ किया है" ऐसा वचन कहते हुए शून्य स्थलमें बाहुस्फोट करने लगे।

अनन्तर यह आकाशवाणी हुई कि, हे जाजली! तुम धर्म्म विषयमें तुलाधारके समान नहीं हुए। काशीपुरीमें तुलाधार नाम एक पुरुष बसता है। हे विप्र! तुमने जैसा कहा वह भी वैसा वचन नहीं कह सकता। हे राजन्! जाजली मुनि उस आकाशवाणीको सुनके क्रोध-वश होकर तुलाधारका दर्शन करनेके लिये सारी पृथ्वीपर घूमने लगे और जहांपर सन्ध्याका समय उपस्थित होता था, वहांपर निवास करते थे, बहुत समयके अनन्तर वह काशीपुरीमें पहुंचे, वहां पहुंचके तुलाधारको पुण्य-बस्तुओंको बेचते हुए देखा। मूलधनोपजीवी तुलाधार विप्रवर जाजलीको आते देखकर हो परम सन्तुष्ट होकर उठ खड़े हुए और स्वागत प्रश्नसे उनका सत्कार किया।

तुलाधार बोले, हे ब्रह्मन्! आप अभी आये हैं, इसे मैंने निःसन्देह जाना है। हे द्विजवर! अब मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। आपने समुद्रके तटपर सजल स्थानमें महती तपस्या की है, पहले कभी धर्म्मका नाम भी नहीं जानते थे, अर्थात् "मैं धार्म्मिक हूं" आपको ऐसा ज्ञान नहीं था। हे विप्र! अन्तमें जब आप तपस्यासे सिद्ध हुए, तब पक्षियोंके बच्चे शीघ्रही तुम्हारे शिरपर उत्पन्न हुए, आपने उनका यथायोग्य सत्कार किया। हे द्विज! जब बच्चे पङ्खवाले होकर आहारके लिये उड़के चले गये, तब आपने मनमें यह निश्चय किया, कि "चटक पक्षियोंका पालन करनेसे धर्म्म हुआ है।" हे द्विजसत्तम! अनन्तर मुझे उद्देश्य करके जो आकाशवाणी हुई, तुम उसे सुनके क्रोधके वशमें हुए और उसही निमित्त इस स्थानमें आये हो। हे द्विजवर! इसलिये मैं आपका कौनसा प्रियकार्य्य सिद्ध करूं, उसे हो कहिये।

२६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, उस समय जब बुद्धिमान् तुलाधारने जापकप्रवर जाजलीसे ऐसा वचन कहा, तब उन्होंने वक्ष्यमाण वचनसे उसे उत्तर दिया।

जाजली बोले, हे वणिक्पुत्र! तुम समस्त रस, गन्ध, बनस्पति औषधी और फलमूलोंको बेचा करते हो, तुमने नैष्ठिकी बुद्धि कहांसे पायी और किस प्रकार तुम्हें ऐसा ज्ञान

हुआ। हे महाप्राज्ञ! तुम इस ही विषयको विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप वर्णन करो।

भीष्म बोले, हे राजन्! यशस्वी ब्राह्मणके ऐसा पूछनेपर धर्म्म अर्थके तत्वको जाननेवाला तुलाधार वैश्य उस समय ज्ञानतृप्त कठोर तपस्वी जाजलीसे सब सूक्ष्म धर्म्म कहने लगा।

तुलाधार बोला, हे जाजली! लोकमें सब भूतोंके हितकर जो पुराण-धर्म्मको जानते हैं, मैं रहस्यके सहित उस सनातन धर्म्मको जानता हूं; जीवोंसे द्रोह न करके अथवा आपदकालमें अल्प द्रोह आचरण करके जो जीविका निर्व्वाही जाती है, वही परम धर्म्म है। हे जाजली! मैं वैसा ही वृत्ति अवलम्बन करके जीवन व्यतीत किया करता हूं। मैंने परच्छिन्न तृणकाठोंसे यह गृह बनाया है। हे विप्रर्षि! अलक्त, पद्मक और तुङ्गकाष्ठ, कस्तूरी आदि विविध सुगन्धित वस्तु और नमक आदि रसकी वस्तुयें, मद्यके अतिरिक्त इन सब वस्तुओंको मैं दूसरेके हाथसे खरीदके कपटरहित होकर वचन, मन और कर्म्मके जरिये बेचा करता हूं। हे जाजली! जो सब प्राणियोंके सुहृत् तथा सब जीवोंके हितमें रत रहते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले हैं।

हे जाजली! मैं किसीको किसी विषयमें अनुरोध नहीं करता, किसीके सङ्ग विरोध नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता और किसीके समीप किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता। मैं सब भूतोंमें समदर्शी हूं, इसलिये तुम मेरा व्रत अवलोकन करो। हे जाजली! सब भूतोंमें मेरा तुलादण्ड समान भावसे खड़ा है। हे विप्रवर! मैं आकाशमण्डलमें स्थित विविध रूपवाले बादलसमूहोंकी भांति जगत्की विचित्रता देखकर दूसरेके किये हुए कार्य्योंकी प्रसंसा नहीं करता और निन्दा भी नहीं करता हूं। हे बुद्धिमान् जाजली! इस ही भांति तुम मुझे सब भूतों और ढेले, पत्थर तथा सुवर्णमें समदर्शी समझो। जैसे अन्धे, बहरे और उन्मत्त आदि पुरुषोंके इन्द्रियगोलक उस ही इन्द्रियाधिष्ठात्र देवताओंके जरिये आच्छादित होनेपर भी वे लोग श्वास लेते हुए जीवन धारण किया करते हैं, मैं उसे देखकर अपनेमेंही वैसी उपमा दिया करता हूं। जैसे बूढ़े, आतुर और दुर्ब्बल पुरुष विषयोंसे निस्पृह होते हैं, वैसे ही अर्थ और काम्य वस्तुके उपभोग विषयमें मुझेभी स्पृहा नहीं है। जब यह जीव किसी प्राणीसे नहीं डरता और इससे भी दूसरे भयभीत नहीं होते; जब जीव किसी विषयकी कामना नहीं करता और किसीसे भी द्वेष नहीं करता, तब वह ब्रह्मलाभ किया करता है। जिसका भूत भविष्य कोई धर्म्म नहीं है, जिससे किसी भूतको भय नहीं होता, वही अभयपद पाता है। मृत्यु सुखके समान क्रूर वचन कहनेवाले कठोर दण्डधारी जिस पुरुषसे सब लोग व्याकुल होते हैं, उसे महत् भय प्राप्त होता है। मैं यथावत् वर्त्तमान पुत्र पौत्रोंके सहित अहिंसामय महानुभव बूढ़ोंके चरित्रका अनुवर्त्तन किया करता हूं। किसी अंशमें विरुद्ध सदाचारसे मोहित शाश्वत वैदिक धर्म्म अनुदिष्ट हुआ है, इस ही निमित्त चाहे विद्यावान् हों, चाहे जितेन्द्रिय ही हों, वा काम क्रोध विजयी बलवान् हो क्यों न हों, सब पुरुष ही धर्म्म विषयमें मोहित हुआ करते हैं! जो दान्त पुरुष द्रोहरहित अन्तःकरणसे साधुओंके सङ्ग सदाचरण करता है, हे जाजली! वह बुद्धिमान् पुरुष आचारके जरिये शीघ्र ही धर्म्मलाभ करनेमें समर्थ होता है। जैसे नदीके प्रवाहमें बहता हुआ काठ यदृच्छावशसे दूसरे काठके सङ्ग मिल जाता है और उस स्थानमें दूसरे काष्ठ परस्पर मिल जाते हैं; कभी तृण काठ करीष आदि नहीं दीख पड़ते, मनुष्योंके कर्म्मप्रवाहके जरिये पुत्र स्त्री आदि संयोग वियोग भी वैसा ही है। जिससे कोई जीव भी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, हे

मुनि! वेही सब भूतोंसे सदा अभय लाभ करते हैं। हे विद्वन्! जैसे वाड़वानलसे किनारेपर रहनेवाले सब जलचर और चिल्लार करनेवाले हिंसक भेड़ियेसे बनचर जीव डरते हैं, वैसे ही जिससे सब लोक उद्वेगयुक्त हुआ करते हैं उसे महत् भय प्राप्त होता है इस ही प्रकार जीवोंको अभय दानरूपी आचार जिसमें सब तरहके उपायसे उत्पन्न हो, उस विषयमें यत्न करना उचित है। जो लोग सहायसम्पत्तिसे युक्त होते हैं, वे इस लोकमें ऐश्वर्य्यशाली और परलोकमें परम सुखी होते हैं। इस हीसे कवि लोग सब शास्त्रोंमें अभयदाता पुरुषोंको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। जिनके अन्तःकरणमें थोड़ा सा वाह्यसुख लेखाकी भांति प्रतिष्ठित है, वे भी कीर्त्तिके लिये अभयदान करें और निपुण मनुष्य भी परब्रह्मको प्राप्तिके लिये अभयदानमें दीक्षित होवें। तपस्या, यज्ञ, दान और बुद्धियुक्त बचनसे इस लोकमें जो सब फल भोग हुआ करते हैं, अभयदानके सहारे वे सब फल प्राप्त होते हैं। जगत्‌में जो लोग सब प्राणियोंको अभयदक्षिणा दान करते हैं, वे सब यज्ञयाजनके फलस्वरूप अभयदक्षिणा पाते हैं। सब प्राणियोंको अहिंसासे बढ़के श्रेष्ठ धर्म्म और कुछ भी नहीं है। हे महामुनि! जिससे कोई जीव कभी किसी प्रकार व्याकुल नहीं होते, उसे सब प्राणियोंसे अभय प्राप्त होता है; और जिससे गृहगत सर्पकी भांति सब लोग व्याकुल होते हैं, वह ऐहिक और पारलौकिक धर्म्म प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, जो सब प्राणियोंके आत्मभूत और समान भावसे सब जीवोंको देखते हैं, देवता लोग भी उस ब्रह्मलोक आदिके अनभिलाषी साधक पदके इच्छुक होकर उनके आचरित मार्गमें विचरण करते हुए मोहित होते हैं। हे जाजली! जीवोंको अभय दान सब दानसे उत्तम है; यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं; इसलिये आप इस विषयमें श्रद्धा करिये। सब काम्य कर्म्म स्वर्गफल साधनके हेतु कभी शुभम होते, कभी स्वर्गफल भोगान्तर पतन आदिके निमित्त दुर्भग हुआ करते हैं; इसलिये काम्य कर्म्मोंको क्षयिष्णुता देखकर सज्जन लोग सदा उसकी निन्दा किया करते हैं। हे जाजली! स्थूल धर्म्म यज्ञ आदिसे सूक्ष्म अभयदान धर्म्मका अनुष्ठान करनेसे फलहीन नहीं होता, ब्रह्मप्राप्ति और स्वर्गलाभके लिये वेदमें शम दम आदिके साधन और यज्ञ आदि धर्म्म विहित हुए हैं। अभय दान धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे वह पूर्ण रीतिसे जाना नहीं जाता; वेदके बीच किसी स्थलमें वैधहिंसाको विधि है, कहीं पर अहिंसाकी विधि बलवती हुई है; इससे वैदिक धर्म्म अत्यन्त ही अन्तर्गूढ़ है। सब आचार जाननेके लिये उद्यत होने पर भी उसके बीच अनेक प्रकारके विभिन्न व्यवहार मालूम हुआ करते हैं। जिन सब बैलोंको वृषण-काटे जाते हैं, और नासिकामें छेद किया जाता है। वे बहुत सा बोझा ढोनेमें समर्थ हुआ करते हैं; मनुष्य उनका बन्धन और दमन करते हैं। जो जीवोंको मार कर भक्षण करते हैं, उनकी निन्दा क्यों नहीं करते; मनुष्य लोग मनुष्योंको दासत्व शृङ्खलमें बांध रखते हैं। दूसरा जातकी बात तो दूर रहे, वे लोग स्वजातिके लोगोंको रात दिन बध, बन्धन और निरोध करके दुःख भोग कराते हैं; इसके अतिरिक्त अपने बध, बन्धनसे जो दुःख होता है, उस विषयमें भी वे लोग अनभिज्ञ नहीं हैं; पञ्चइन्द्रिययुक्त जीवोंमें सब देवता ही निवास किया करते हैं। सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, ऋतु और यम, ये सब देवता जिस जीवदेहमें निवास करते हैं, उन जीवोंके बेचनेमें जब कोई फल नहीं है, तब मृतजीवोंके विषयमें विचारको क्या आवश्यकता है। बकरे, अग्नि; मेढ़े, घोड़े, जल, पृथ्वी, गौ, बछड़े और सोमरस

बेचनेसे मनुष्य सिद्ध नहीं होता। हे ब्रह्मन्! इसलिये तेल, घृत, मधु और औषधि बेचनेकी बार्त्ता कुछ कार्य्यकरी नहीं है। मनुष्य लोग दंश मच्छरोंसे रहित स्थानमें सहजमें ही सम्वर्द्धित पशुओंको उनकी माताके प्रिय जानके भी अनेक भांतिसे आक्रमण करके बहुतसे कीचड़युक्त देश तथा मशकोंसे परिपूरित स्थानमें स्थापित करते हैं, दूसरे धूर्त्त लोग वाहनोंके जरिये पीड़ित होकर अवसन्न होते हैं; मुझे बोध होता है, ऐसे पशु पीड़न कर्म्मकी अपेक्षा भ्रूणहत्या अधिक पापयुक्त नहीं है। जो लोग कृषिकर्म्मको उत्तम समझते हैं, मैं उनकी भी प्रशंसा नहीं करता; क्यों कि कृषि कर्म्म भी अत्यन्त दारुण है। हे जाजली! लोहमुख हल भूमि और भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंको नष्ट करता है, और हलमें जुते हुए वृषभोंकी ओर देखो वे कितना क्लेश सहा करते हैं। गज अवध्य हैं, इसहीसे उनका नाम अघ्नी है; इसलिये कौन पुरुष उन्हें मारनेमें समर्थ हुआ करता है। जो पुरुष वृषभ अथवा गजको हिंसा करता है वह बहुत ही अमङ्गल किया करता है। जितेन्द्रिय ऋषियोंने नहुषके समीप यह विषय कहा था। उन्होंने कहा था, गज मातृस्वरूप और वृषभ प्रजापति स्वरूप है; तुमने उनका वध किया है। हे नहुष! इससे तुमने बहुत ही अकार्य्य किया है, तुम्हारे निमित्त हम सब कोई व्यथित हुए हैं। हे जाजली! जैसे इन्द्रका ब्रह्महत्याका पाप स्त्रियोंमे रज रूपसे निक्षिप्त हुआ था, वैसेही उन महाभाग ऋषियोंने नहुषके किये हुए गो-वृषभ हत्याके पापको सब प्राणियोंके बीच एक सौ एक रोग रूपसे निक्षेप किया। ब्रह्महत्या और गोहत्याका पाप समान है, इसीसे लोग नहुषको भ्रूणहत्या करनेवाला कहा करते हैं,—इससे हम लोग उसका होम न करेंगे। उन समस्त तत्वार्थदर्शी महानुभाव जितेन्द्रिय शान्त महर्षियोंने नहुषके विषयमें ऐसा कहकर तथा ध्यानपूर्व्वक उसे गोहत्या करनेमें प्रवृत्त न देखकर उसके किये हुए पापोंको प्रजासमूहमें रोगरूपसे संक्रामित किया था। हे जाजली! इस लोकमें ऐसा घोर अकल्याणकर आचारके प्रचलित रहनेपर भी अर्थात् मधुपर्कमें पशुवध आदि प्रथित रहनेपर भी तुम निपुण भावसे उसे समझनेमें समर्थ नहीं होते हो। कारणके अनुसार धर्म्माचरण करे, जिससे जीवोंको भय न हो, उसे ही धर्म्म जाने; गतानुगतिक होके लोक व्यवहार न करे। हे जाजली! सुनो जो लोग मुझपर प्रहार करें, अथवा जो प्रशंसा करें, वे दोनों ही मेरे पक्षमें समान हैं; मुझे हर्ष-बिषाद कुछ भी नहीं है। मनीषी लोग इस ही प्रकार धर्म्मकी प्रशंसा किया करते हैं, यति लोग भी युक्तिपूरित उक्त धर्म्मको सेवा किया करते हैं, धर्म्मशील मनुष्य सदा निपुण नेत्रसे उक्त धर्म्मको अवलोकन करते हैं।

२६१ अध्याय समाप्त।

जाजली मुनि बोले, तुमने तुला धारण करके यह धर्म्म प्रवर्त्तन किया है, इससे जीवोंके स्वर्गद्वार और जीविकाका अवरोध होता है। कृषिसे अन्न उत्पन्न होता है, तुम भी उसहीसे जीवन धारण किया करते हो; पशु हिंसा न करनेसे यज्ञ पूर्ण नहीं होता, तुम उसही यज्ञको निन्दा करके नास्तिकता प्रकाशित करते हो। लोग प्रवृत्ति मूलक धर्म्मको परित्याग करके कदाचित् जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं होते।

तुलाधार बोला, हे द्विज जाजली! मैं निज वृत्तिका विषय कहता हूं, मैं नास्तिक नहीं हूं और यज्ञको भी निन्दा नहीं की है, यज्ञवित् पुरुष अत्यन्त दुर्ल्लभ हैं; मैं ब्राह्मण यज्ञको नमस्कार करता हूं। जो सब ब्राह्मण यज्ञ प्रक-

रण जानते हैं, उन्होंने योगरूप निज यज्ञ परित्याग करके इस समय हिंसामय क्षत्रिय यज्ञ अवलम्बन किया है। हे ब्रह्मन्! वित्तपरायण लोभी आस्तिक लोगोंने वेद वाक्योंको न जानके सत्यकी भांति भासमान मिथ्याके प्रवर्त्तन करनेके "कारण इस यज्ञमें यह दक्षिणा दान करनी योग्य है," इस ही प्रकार यज्ञका प्रशस्तता साधन की है। हे जाजली! इसही निमित्त यजमानके साध्य सत्वमें भी यथायोग्य दक्षिणा दान न करनेसे चोरी और अकल्याणकर विपरीत कार्य्योंकी उत्पत्ति हुई है। नमस्कार स्वरूप हवि, स्व-शाखोक्त वेदपाठ और औषध स्वरूप सुकृतसे प्राप्त हुआ जो हव्य है, उसहीके जरिये देवता लोग प्रसन्न हुआ करते हैं, शास्त्र निदर्शनके अनुसार देवताओंकी पूजा हुआ करती है। कामनावान् मनुष्योंके इष्टापूर्त्तसे विगुण सन्तानोंकी उत्पत्ति होती है। यजमानके लोभी होनेसे उसकी सन्तान भी लोभी होती है; यजमानके रागद्वेषसे रहित होनेसे उसकी सन्तान भी वैसीही हुआ करती है। यजमान अपनेको जैसा समझता है, सन्तान भी वैसीही होती है। आकाशसे निर्म्मल जल बरसनेकी भांति यज्ञसे ही प्रजा समूहकी उत्पत्ति हुआ करती हैं। हे ब्रह्मन्! अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्य्यमण्डलमें पहुंचती है, सूर्य्यसे वृष्टि उत्पन्न होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न हुआ करता है, और अन्नसे ही प्रजासमूहकी उत्पत्ति होती है। यज्ञनिष्ठ मनुष्योंने फलानुसन्धान न करके यज्ञसे ही सब काम्य वस्तुएं पायी हैं। उस समय यज्ञके प्रभावसे पृथ्वीमें बिना जोते ही शस्य उत्पन्न होते और वृक्षोंमें अनायास ही फल लगते थे; इसहीसे लोग कृषिकार्य्यके निमित्त भूमिमें रहनेवाले सर्प आदि प्राणियोंकी हिंसामें लिप्त नहीं होते थे। तिसके अनन्तर मनुष्य यज्ञ आदि कर्मोंके फल, कर्त्ताको नहीं देखते थे। जो लोग "यज्ञ करनेसे फल है, वा नहीं"—इसही भांति सन्देहयुक्त होकर किसी प्रकारका यज्ञ करते हैं, वे लोग असाधु, दम्भी, धन लोलुप और लोभी कहके विख्यात होते हैं। हे द्विजवर! जो पुरुष कुतर्कसे वेदोंका अप्रमाण सिद्ध करता है, वह उसही अशुभ कर्म्मसे पापाचारियोंके लोकमें गमन किया करता है, और उसीही इस लोकमें पापात्मा वा अत्यन्त अकृतप्रज्ञ कहा जाता है, वैसे पुरुषकी कभी मुक्ति नहीं होती। नित्य कर्म्मोंको अवश्य करना चाहिये, उनके न करनेसे भय होता है, इसे जो लोग जानते हैं, वेही ब्रह्मनिष्ठ हैं। इस लोकमें जो पुरुष अपनेमें वयोवर्णका अध्यास करके कर्त्तृत्व मालूम नहीं करते वेही ब्राह्मण हैं; अर्थात् कर्त्तृत्वभिमान और फलाभिलाष परित्याग करके कर्म्माङ्गोंमें ब्रह्मदृष्टि करते हुए जो लोग अशन पान आदिकी भांति कर्म्म किया करते हैं, उन्हें ही ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है। ऐसे ब्राह्मणोंके कर्म्म विगुण होने और अपवित्र कुत्ते, शूकर आदि पशुओंके जरिये विघ्नित होनेपर भी श्रेष्ठ रूपसे परिगणित हुआ करते हैं, यह श्रुतिमें वर्णित है; परन्तु मेरा यह कर्म्म इस विघ्नसे नष्ट हुआ है, ऐसा ज्ञान होनेपर उसके लिये प्रायश्चित्त करना होगा, यह भी वेदमें वर्णित है। जो सब पुरुष सत्य कहने और इन्द्रिय संयमकोही यज्ञ समझते हैं, परम पुरुषार्थ प्राप्त करनेमें जिन्हें लोभ होरहा है; वित्त वा विषयोंसे जिनकी तृप्ति हुई है और जो दूसरे दिनके लिये अर्थसंग्रह नहीं करते, वेही अमत्सरी हुआ करते हैं। जो सब योगनिष्ठ पुरुष क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके तत्वको जानते तथा प्रणव अध्ययन करते हैं, वे दूसरोंको सन्तुष्ट किया करते हैं। सब देवता और समस्त वेदस्वरूप प्रणव ब्रह्मवित पुरुषमें प्रतिष्ठित होरहे हैं। हे जाजली! उसही ब्रह्मवित् पुरुषके तृप्त होनेसे आदित्य आदि देवता तृप्त और संतुष्ट होते हैं। जो सब रसोंसे तृप्त

हुए हैं, वे जैसे कोई दूसरे रसान्तरका अभिनन्दन नहीं करता, वैसेही प्रज्ञान तृप्ति पुरुषोंको अनायास ही नित्यतृप्ति हुआ करती है।

धर्म्मही जिनका एक मात्र अवलम्ब है, धर्म्मसे ही जो लोग सुखी हुआ करते हैं, उन्होंने ही समस्त कार्य्याकार्य्योंके निश्चय किये हैं, और कर्म्मके जरिये जिनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ है वह प्राज्ञ पुरुष हमारे स्वरूपसे बुद्धिके बीच चिदाभासमय पुरुषसे बढ़के और कोई भी नहीं है,—इसे ही अवलोकन करते हैं। जो सब ज्ञान विज्ञानसे युक्त सात्विक पुरुष संसारके पार जानेकी अभिलाष करते हैं, वे लोग जिस स्थानमें जानेसे शोक नहीं करना होता च्युत नहीं होना पड़ता, व्यथित नहीं होना पड़ता, उस ही पुण्याभिजन नाम अत्यन्त पुण्यप्रद पवित्र ब्रह्मलोक पाते हैं। वे स्वर्गकी कामना नहीं करते, धनसाध्य कर्म्मोंसे परब्रह्मकी पूजा करनेके अभिलाषी नहीं होते, केवल साधुमार्ग अर्थात् योगमें निवास करते हुए अहिंसाके जरिये ईश्वरकी आराधना किया करते हैं। वे लोग वनस्पति, फलमूलोंको हवनीय रूपसे जानते हैं, धनार्थी ऋत्विक् वैसे निर्द्धन यजमानोंका याजन नहीं करते; उक्त द्विजातियोंके सब कर्म्म समाप्त होनेपर भी वे लोग प्रजासमूहके विषयमें अनुग्रहको अभिलाष करके अपनेको ही अर्थ कल्पना करते हुए मानसयज्ञ पूर्ण किया करते हैं। लोभी ऋत्विक सब वैसे निर्द्धन पुरुषोंका याजन नहीं करते, तब अवश्यही वे लोग मोक्षकी इच्छासे रहित पुरुषोंका ही याजन किया करते हैं। साधु लोग स्वधर्म्माचरणके जरिये दूसरोंका उपकार करते हैं, वे लोग समबुद्धिके कारण धर्म्मफलकी कामना नहीं करते। हे जाजली! इस ही लिये मैं सर्व्वत्र समबुद्धि होरहा हूं, अर्थात् सत् और असत् वृत्तिकी विभिन्नता निबन्धनसे मैं सदाचरणका ही अनुसरण किया करता हूं। हे महामुनि! कर्म्मठ वा उपासक ब्राह्मण लोग इस लोकमें सदा जो सब पुनरावृत्तिप्रद मार्ग प्रदर्शक और अपुनरावृत्ति प्रदमार्ग पदर्शक यज्ञ याजन करते हैं वे उस ही देवयान पथके जरिये पितृलोक और देवलोकमें गमन किया करते हैं। हे जाजली! देवयान् पथसे गमन करनेपर भी कर्म्मठ पुरुषोंका पुनरागमन हुआ करता है, और मनको निग्रह करनेवाले उपासकोंको पुनरावृत्ति नहीं होती, अर्थात् दिव्य पथसे गमन करनेपर भी दोनोंके सङ्कल्पभेद निबन्धनसे कर्म्मठ ब्राह्मणोंकी आवृत्ति और उपासकोंकी अनावृत्ति हुआ करती है; इसलिये कर्म्ममें रत कर्म्मठ ब्राह्मणों और मनको निरोध करनेवाले उपासक ब्राह्मणोंमें बहुत ही विलक्षणता है। सत्य सङ्कल्प उपासकोंकी मनकी सङ्कल्पसिद्धिके जरिये वृषभ स्वयं जुतके हल खींचते हैं और गौवें दूध दोहन किया करती हैं; उनके मानसिक यज्ञ सङ्कल्पसे ही सिद्ध होते हैं; वे लोग सङ्कल्प सिद्ध होनेसे यूपदक्षिणा आदि यज्ञके द्रव्योंको मनसे ही उत्पन्न किया करते हैं। जिन्होंने इसही प्रकार योगाभ्यासके जरिये चित्तशोधन किया है, वे मधुपर्कमें गो हिंसा कर सकते हैं। हे ब्रह्मन्! जो लोग उस प्रकार विशुद्धचित्तवाले नहीं हैं, वे लोग पशुहिंसा करनेसे अवश्यही प्रत्यवायभागी होंगे, इसलिये उनके लिये औषधियोंसे ही यज्ञसाधन विहित हुआ करता है। त्यागका ऐसा माहात्म्य होनेसे ही मैंने त्यागका पुरष्कार करके तुम्हारे समीप वैसा बचन कहा है। जिसे आशा और आरम्भ नहीं है, वे किसीको नमस्कार वा प्रशंसा नहीं करते, जो क्षीण नहीं हैं, परन्तु जिनके सब कर्म्म क्षीण हुए हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण जानते हैं। जो पुरुष वेद श्रवण, देवजप्रन ब्राह्मणोंको दान नहीं करता और स्त्रियोंकी तृप्ति लाभकी इच्छा किया करता है, वह असुर स्वभाववाला मनुष्य देव-

मार्ग वा पितर मार्ग किसी पथमें भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। आशाहीनता आदि पूर्व्वोक्त वाक्यको देवताकी भांति सेवनीय समझनेसे यथा विधि यज्ञस्वरूप परमात्माको प्राप्त किया जाता है।

जाजली मुनि बोले, हे वणिक्! मैंने आत्मयाजी योगियोंके तत्वको नहीं सुना है, इस ही निमित्त तुम्हारे निकट यह दुर्ज्ञेय विषय पूछता हूं। पहलेके महर्षियोंने इस प्रकार योगधर्म्मकी आलोचना नहीं की है, इससे लोकके बीच यह रहस्य धर्म्म प्रवर्त्तित नहीं हुआ है। हे महाप्राज्ञ वणिक्! यद्यपि आत्मतीर्थ अर्थात् आत्मस्वरूप यज्ञभूमिमें पशुतुल्य मन्दबुद्धि मनुष्य मानसिक यज्ञजनित सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते, तब वे लोग किस कर्म्मके जरिये सुखलाभके अधिकारी होंगे उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो। मैं तुमपर अत्यन्त श्रद्धा करता हूं।

तुलाधार बोले, जिन सब दम्भिकोंके यज्ञ श्रद्धाहीनताके कारण अयज्ञरूपसे प्रतिपन्न हुआ करते हैं, वे लोग आन्तरिक वा बाह्य कोई यज्ञ करनेके योग्य नहीं हैं। श्रद्धावान् मनुष्योंको एक ही गऊके जरिये बाह्यक्रतु सिद्ध हुआ करता है; क्यों कि घृत, दूध, दही, विशेष करके पूर्णाहुति, असमर्थके विषयमें गोपूंछसे पितृतर्पणके निमित्त पूंछके रोम, अभिषेक आदि निबन्धनमें गोशृङ्ग और खुररज, इन सात प्रकारकी वस्तुओंसे गोयज्ञके कार्य्य सिद्ध हुआ करते हैं। इस पशुहिंसारहित घृतादिके बीच यज्ञविधिसे घृत आदि वस्तु देव उद्देश्यसे विनियोगके लिये मानसिक श्रद्धाको पत्नीरूपसे कल्पना करनी होती है; क्यों कि अपत्निक पुरुषका वैदिक यज्ञ सिद्ध नहीं होता। यज्ञको अत्यन्त सेवनीय-देवत समझनेसे यज्ञरूपी विष्णुको यथावत् प्राप्त किया जाता है। अपवित्र पशुओंसे पुरोडास ही पवित्ररूपसे वर्णित हुआ करता है। हे जाजली! जिससे आत्मसाधन होता है, वही यज्ञभूमि है, आत्माही सरस्वती आदि समस्त नदी और पवित्र शैलस्वरूप है; इसलिये आत्माको न जानके अन्य तीर्थोंका अतिथि मत बनो। हे जाजली! इस लोकमें जो लोग इस ही भांति अहिंसामय धर्म्माचरण करते हैं और अर्थित्व वा समर्थित्व तारतम्यके अनुसार धर्म्मानुष्ठान किया करते हैं, वे शुभलोकोंकी पाते हैं।

भीष्म बोले, तुलाधार इस ही प्रकार युक्तिसङ्गत वा सदा साधुओंसे सेवित इस समस्त धर्म्मकी प्रशंसा किया करता है।

२६२ अध्याय समाप्त।

तुलाधार बोला, साधु वा असाधुओंसे अवलम्बित इस पथको उत्तम रीतिसे मालूम करो, ऐसा होनेसे ही उसका जैसा फल है उसे जान सकोगे। ये सब अनेक जातीय पक्षी इस स्थानमें विचर रहे हैं तुम्हारे उत्तम अङ्गसे जो उत्पन्न हुए थे, वे सब और बाज तथा दूसरी जातिके पक्षी भी इनके बीच विद्यमान हैं, इन सबोंने अपने घोसलोंमें प्रवेश करनेके निमित्त हस्तपदादि संकुचित किये हैं। हे ब्रह्मन्! इस लिये इस समय तुम इन्हें आवाहन करके देखो। यह देखिये, पक्षीवृन्द तुमसे समादृत होके तुम्हारा सम्मान कर रहे हैं। हे जाजली! पुत्रोंको आह्वान करो, तुम इनके पिता हुए हो, इसमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस जाजली मुनिके बुलाने पर पक्षियोंने अहिंसामय धर्म्म वचनके अनुसार प्रत्युत्तर दिया। हे ब्रह्मन्! हिंसाके जरिये किया हुआ कर्म्म इसलोक और परलोकमें श्रद्धा नष्ट करता है, श्रद्धा नष्ट होनेपर श्रद्धाहीन मनुष्यको विनष्ट किया करता है, लाभ हानिमें समदर्शी, श्रद्धावान्, शान्त, दान्त पुरुष "यज्ञ करनायोग्य है"—ऐसे ही अभिसन्धि करके अर्थात्

कर्त्तृत्वाभिमान अथवा फलाभिसन्धि न करके यदि यज्ञका अनुष्ठान करें, तो उनके अनुष्ठित यज्ञसे कदापि अनिष्ट फलकी उत्पत्ति न होवे। हे द्विज! ब्रह्मविषयणी श्रद्धाको सूर्य्यके समान प्रकाशमान सत्वकी पुत्री अर्थात् सात्विकी कहा जाता है; वह श्रद्धा पालन करती है, इसहीसे सावित्री और शुद्ध जन्म प्रदान करती है, इसीसे प्रसवित्री रूपसे कही जाती है। वाक्य, मन वा श्रद्धाके उस बहिरङ्ग अर्थात् जप और ध्यानजनित धर्म्मसे श्रद्धा ही सब प्रकार श्रेष्ठ है। हे भारत! मन्त्र आदि उच्चारण करनेके समय स्वर-वर्ण विपर्य्ययके जरिये जो वाक्य नष्ट होता है, और व्यग्र चित्तसे जो देवताओंके ध्यान आदि विनष्ट होते हैं, श्रद्धा उसका समाधान करती है; परन्तु वचन, मन और कर्म्म, श्रद्धाहीन पुरुषको परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते हैं, कि पवित्र और अश्रद्धावान् तथा श्रद्धावान् और अपवित्र पुरुषके वित्तको देवता लोग यज्ञ कर्म्ममें समानही समझते हैं। श्रोत्रिय होके भी जो पुरुष कृपणता व्यवहार करता है, और धान्य बेचके भी जो वदान्य होता है, देवताओंने विचार करके उन दोनोंके अन्नको समान भावसे कल्पना किया था। प्रजापतिने उस ही लिये उनसे कहा था, हे देवतावृन्द! तुम सबने जो कुछ कहा है, वह अत्यन्त विषम हुआ है। वदान्य पुरुषके श्रद्धायुक्त अन्न भक्षणीय हैं, अश्रद्धासे सिद्ध हुए अन्न भक्षणीय नहीं है, और कृपण तथा वृद्धि जिवीका अन्न न खाना चाहिये। केवल अश्रद्धावान् मनुष्य देवताओंको हवि दान करनेके योग्य नहीं हैं, उनका भी अन्न अभक्षणीय है; ऐसा धर्म्म जाननेवाले पुरुष कहा करते हैं। अश्रद्धा ही परम पाप स्वरूप है, और श्रद्धा ही पापको दूर किया करती है। जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुली परित्याग करता है, श्रद्धावान् मनुष्य उस ही प्रकार पाप परित्याग किया करते हैं। श्रद्धाके सहित निवृत्ति मार्गको अवलम्बन करना ही सब पवित्रताके बीच श्रेष्ठ है, राग आदि दोषोंसे जो लोग निवृत्त हुए हैं, वेही श्रद्धावान् और पवित्र हैं, उन्हें तपस्या, शीलता और धर्म्म अभ्याससे क्या प्रयोजन है। ये श्रद्धामय पुरुष सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन प्रकारको श्रद्धाके बीच जैसी श्रद्धासे युक्त होते हैं, तब वह उस ही नामसे अर्थात् सात्विक, राजसिक और तामस नामसे प्रसिद्ध हुआ करते हैं। धर्म्मार्थदर्शी साधुओंने इसही प्रकार धर्म्म वर्णन किया है; धर्म्मदर्शन नाम मुनिसे पूछकर उससेही हम लोगोंने इस प्रकार धर्म्मका लक्षण जाना है। हे महाप्राज्ञ जाजलो! तुम श्रद्धा करनेसे परम पदार्थ पाओगे; जो वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और वेदार्थ अनुष्ठान करनेमें श्रद्धा किया करते हैं, वेही धर्म्मात्मा हैं। हे जाजलो! जो लोग कर्त्तव्य मार्गमें निवास करते हैं, वेही गौरवयुक्त हैं।

भीष्म बोले, अनन्तर महाप्राज्ञ तुलाधार और जाजलो मुनि थोड़े ही समयमें सुर लोकमें जाके निज कर्म्मके उपार्ज्जित अपने अपने स्थानको पाके सुख पूर्व्वक विहार करने लगे। तुलाधारके जरिये इसही प्रकार अनेक तरहके विषय कहे गये थे; तुलाधारने पूर्व्वरीतिसे सनातन धर्म्म जाना था, और जाजलो मुनिके समीप कहा था।

हे कौन्तेय! द्विजश्रेष्ठ जाजलोने उस विख्यात वीर्य्य तुलाधारका सब वचन सुनके शान्तिमार्ग अवलम्बन किया था। तुलाधारने यथा विहित दृष्टान्तके जरिये मौनव्रती विप्रवर जाजलोके निकट इस ही प्रकार अनेक भांतिके विषय कहा था; तुम अब फिर किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो।

२६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पुरुष-पशुओंके विषयमें कृपा करनेके निमित्त महा राजा बिचख्नु ने जो कुछ पहले कहा था, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। उक्त राजा गोमेध यज्ञमें वृषभोंके शरीरको कटे हुए देखने और गौवोंका अत्यन्त बिलाप सुननेसे कातर होके यज्ञभूमिको देखकर लोकके बीच गौवोंको "स्वस्ति होवे"—यही वाक्य निश्चय किया था। गोहिंसा आरम्भ होनेपर उक्त राजाके जरिये यही आशीर्व्वचन कल्पित हुआ था। जिनकी मर्य्यादा बिचलित हुई है वैसा बिमूढ़ शरीर ही आत्मा है, वा देहके अतिरिक्त कोई दूसरा आत्मा है ऐसे संशययुक्त चित्तवाले नास्तिक पुरुषोंने यज्ञादिके जरिये बड़ाई पानेकी अभिलाष करते हुए पशुहिंसाकी प्रशंसा की है; परन्तु सब अर्थ और वेदोंके तत्वको जाननेवाले धर्म्मात्मा मनुने सब कर्म्मोंमें ही अहिंसाकी प्रशंसा की है। इच्छानुसारी मनुष्य यज्ञके अतिरिक्त स्थलमें भी पशुहिंसा किया करते हैं, इसलिये प्रमाणके जरिये हिंसा और अहिंसा दोनोंके बलाबलको जान कर सूक्ष्म धर्म्म अवलम्बन करे, सब प्राणिओंके बिषयमें हिंसा न करना ही धर्म्मावर्म्मोंमें उत्तम है। गांवके समीप निवास करते हुए संशितव्रती होकर वेदविहित चतुर्म्मास याजियोंको अक्षयपुण्य होता है, इत्यादि फलश्रुति परित्याग करके आचारबुद्धिके जरिये पुरुष गृहस्थाचार रहित होवे, सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करे, पुरुषोंके बिषयमें यही कल्याणकारी है, ऐसा ही समझके निष्कर्म्म अवलम्बन करना चाहिये, और जो फलकी इच्छा करके कर्म्म करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे अत्यन्त क्षुद्र मनुष्य हैं।

यदि मनुष्य यज्ञवृक्ष-यूपोंको उद्देश्य करके वृथा मांस भक्षण करें, तो वह कुछ भी प्रशंसनीय धर्म्म नहीं है। यज्ञ करनेवाले मनुष्य कभी वृथा मांस भक्षण नहीं करते, मद्य, मांस, मछली, मधु, आरक, कृश रोदन अर्थात् तिल मिले हुए चावलोंका भक्षण करना धूर्त्तोंके जरिये प्रवर्त्तित हुआ है, यह वेदके बीच वर्णित नहीं है। अभिमान, मोह और लोभके वशमें होकर मनुष्योंको मद्य सेवनमें इच्छा हुआ करती है। ब्राह्मण लोग सब यज्ञोंमें सर्व्वव्यापी आत्माको ही जानके तृप्त होते हैं; दूध और फूलोंसे उसकी पूजा हुआ करती है, उसमें मधु मांस आदिका प्रयोजन नहीं है। जो सब यज्ञीय वृक्ष वेदमें वर्णित हैं, और जो कुछ करने योग्य यथा जो कुछ शुद्ध आचारके सहारे संस्कारयुक्त हुआ करता है, महत् सत्व और शुद्ध अन्तःकरणके सहित वह सभी देवाईरूपसे बिहित हुआ है।

युधिष्ठिर बोले, शरीर और समस्त आपदा आपसमें बिबाद किया करती हैं, अर्थात् आपदा शरीरको अवसन्न करती हैं, और शरीर भी आपदको नष्ट करनेकी इच्छा किया करता है; इससे अत्यन्त हिंसारहित पुरुषको शरीरयात्राका निर्व्वाह किस प्रकार सिद्ध होसकता है।

भीष्म बोले, जिससे शरीर ग्लानि युक्त वा मृत्युके वशीभूत न हो, वैसे ही कार्य्योंमें प्रवृत्त होना चाहिये, समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करे, अर्थात् शरीरके अनुकूल धर्म्म कार्य्य करे, धर्म्मके अनुरोधसे शरीर नष्ट न करे।

२६४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप हमारे परम गुरु हैं, इससे हिंसामय कार्य्यदुष्कर होनेसे भी गुरु बचनके अनुसार यदि उसे अवश्य करना पड़े, तो विलम्ब वा शीघ्रताके सहित किस प्रकारसे उसकी परीक्षा करनी होगी, उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहिले समयमें अङ्गिरा-वंशमें चिरकारीके किये हुए कर्म्मके जरिये जो घटना हुई थी, प्राचीन लोग इस बिषयमें उस ही

व्यभिचार दोषमें स्त्री अपराधिनी नहीं है, पुरुष ही अत्यन्त महत् व्यभिचार दोषका आचरण करनेसे अपराधी हुआ करता है। भर्त्ता ही स्त्रियोंके लिये परम श्रेष्ठ और परम देवता स्वरूप है; इसलिये उसहीके वेषधारी इन्द्रको अवलोकन करने पर पुरुष न मालूम होनेसे निज पति जानके ही जब मेरी माताने इन्द्रको अङ्ग समर्पण किया है, तब उसका इसमें कुछ अपराध नहीं हो सकता; देवराज ही इस विषयमें सब तरहसे अपराधी हैं। स्त्रियां अल्प-बलवाली होनेसे सब कार्य्योंमें ही पुरुषोंके अधीन हैं; इसलिये उनके कुछ अपराध नहीं हो सकते। पुरुष सब विषयोंमें अपराधी है, क्यों कि जबर्दस्ती किये हुए व्यभिचार विषयमें स्त्रियोंका अपराध नहीं है; पुरुष ही उस विषयमें सब प्रकारसे दोषी हैं। मैथुन जनित तृप्तिके निमित्त किसी स्त्रीने इन्द्रके विषयमें जो वचन कहा था, देवराज उन्हीं सब वचनोंको व्यक्त रूपसे स्मरण करा देनेसे सब तरहसे निःसन्देह अपराधी हुआ है; इसलिये इन्द्रके अपराधसे मुझे मातृहत्या करनी योग्य नहीं है। जो हो, एक तो स्त्री, उस पर भी सर्व्वाधिक गौरवशालिनी माता अवध्य है, इसे पशुके समान मूर्खपुरुष भी विशेष रूपसे जानते हैं; इसलिये मैं किस प्रकार माताका जीवन नष्ट करूंगा। पण्डित लोग पिताको देवताओंका समवाय कहा करते हैं, अर्थात् पिताको सन्तुष्ट करनेसे स्वर्ग मिलता है और मर्त्य तथा अमर्त्योंके समवाय स्नेहके कारण माताके निकटवर्त्ती हुआ करता है, अर्थात् माता इस लोकमें पालयित्री और अदृष्टके अनुसार परलोकमें परम सुख प्रदान किया करती है।

चिरकारीके चिरकारित्व निबन्धनसे इस ही प्रकार बहुत बिचार करते हुए बहुत समय बीत गया। तिसके अनन्तर उसका पिता उसहीके सम्मुख आ पहुंचा। महाबुद्धिमान् मेधातिथि गौतम तपस्यामें समय बिताते थे, उस समय वह निज पत्नीका मरना अनुचित समझकर अत्यन्त सन्तापित होकर दुःखसे आंसू बहाने लगे, वह शास्त्रके पढ़ने और धीरजके प्रभावसे पश्चाताप करके बोले, तीनों लोकके ईश्वर इन्द्र अतिथि-व्रत अवलम्बन करके ब्राह्मणका रूप बनाकर मेरे आश्रमपर आये थे, मैं उन्हें वचनसे प्रसन्न करके स्वागत प्रश्नसे आदर करके यथा रीतिसे पाद्य अर्घ प्रदान किया और कहा, कि आज मेरे आश्रममें तुम्हारा आगमन होनेसे मैं सनाथ हुआ हूं। देवराज प्रसन्न होंगे, ऐसा समझके मैंने ये सब वचन कहे थे, इस बिषयकी चिन्ता करनेसे मालूम होता है, यह अमङ्गल उपस्थित हुआ है, अर्थात् इन्द्रकी चपलतासे मेरी स्त्रीमें दोषस्पर्श होनेसे अहल्याका उसमें कुछ अपराध नहीं हुआ है। इसलिये इस विषयमें अहल्या, मैं और स्वर्गपथगामी इन्द्र, इन तीनोंके बीच कोई भी अपराधी नहीं है, धर्म्मसम्बन्धीय प्रमाद ही इस विषयमें अपराधी है। ऊर्द्ध्वरेता मुनि लोग कहते हैं, प्रमादसे ही ईर्षाजनित बिपद उपस्थित होती है, मैं ईर्षासे आकर्षित होकर पापसागरमें डूबा हूं; सती सीमन्तिनी भरणीयभार्य्याने न जाननेसे ही पर पुरुषका संसर्ग किया, मैंने उसे मारनेकी आज्ञा दी है, इस समय कौन मुझे उस पापसे परित्राण करेगा। मैंने प्रमादके वशमें होकर उदारबुद्धि चिरकारीको मातृहत्या करनेकी आज्ञा दी है, आज यदि वह चिरकारी हो तो वही मुझे इस पापसे परित्राण करेगा। हे चिरकारिन्! तुम्हारा कल्याण होवे, हे चिरकारी! तुम्हारा मङ्गल हो, आज यदि तुम चिरकारी बनो, तभी तुमने यथार्थ चिरकारी नाम धारण किया है। आज तुम मुझे और अपनी माताको परित्राण करो; मैंने जो तपस्या उपार्ज्जनकी है उसकी रक्षा करो और आत्माको पापपुञ्जसे परित्राण करके

चिरकारी नामसे बिख्यात् होजाओ। तुम्हारी असाधारण बुद्धिमत्तासे चिरकारित्व गुण स्वभावसिद्ध है, आज तुम्हारा वह गुण सफल होवे, तुम चिरकारी होजाओ। हे चिरकारी! माताने तुम्हें प्राप्त करनेकी लालसासे बहुत समयतक आशा की थी, बहुत समय तक गर्भमें धारण किया था; इसलिये अब तुम अपने चिरकारित्व गुणको सफल करो। हे चिरकारी! हम लोगोंका चिरसन्ताप देखके तुम मेरी आज्ञाको पालन करनेमें प्रवृत्त होकर भी बोध होता है, बिलम्ब कर रहे हो।

हे राजन्! महर्षि गौतमने उस समय इस ही प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर निकट आये हुए चिरकारी पुत्रको देखा, चिरकारी भी पिताको देखकर अत्यन्त दुःखित हुआ और शस्त्र त्यागके सिर झुकाकर पिताको प्रसन्न करनेकी इच्छा की। अनन्तर गौतम उसे सिर झुकाके पृथ्वीमें गिरते और पत्नीको लज्जासे पत्थरके समान देखकर अत्यन्त हर्षित हुए, परन्तु महात्मा गृहस्थ गौतमने निर्ज्जन जङ्गलके बीच उस पत्नी और समाहित पुत्रके सहित उस समय पृथक् भाव अवलम्बन नहीं किया। उनके "बध करो"—ऐसी आज्ञा देकर निज कर्म्म साधन करनेके लिये प्रवासमें चले जानेपर उनका पुत्र माताके निमित्त हाथमें शस्त्रलेकर भी विनीतभावसे खड़ा था, अनन्तर उन्होंने आश्रममें आके अपने दोनों चरणोंपर गिरे हुए पुत्रको देखकर यही समझा, कि चिरकारी भयसे शस्त्र ग्रहण करनेकी चपलताको रोकता है। अनन्तर पिताने बहुत समयतक प्रशंसा करके मस्तक सूंघकर दोनों भुजा पसारके पुत्रका आलिङ्गन किया और "चिरजीवी हो" ऐसा वचन कहके उसे आशीर्व्वाद दिया। प्रीति और हर्षसे युक्त होकर महाप्राज्ञ गौतम इस ही प्रकार पुत्रको अभिनन्दित करते हुए बक्ष्यमाण रीतिसे कहने लगे। हे चिरकारी! तुम्हारा कल्याण होवे; तुम सदाके वास्ते चिरकारी बनो। हे सौम्य! सदाके वास्ते तुम्हारा चिरकारित्व हुआ, मैं कभी दुःखित न होऊंगा, मुनिसत्तम विद्वान् गौतमने धीरबुद्धिवाले चिरकारी लोगोंके गुणोंको बर्णन करके यह सब गाथा कही थी। सदा विचार करके लोगोंके संग मित्रताबन्धन करे, बहुत समयतक विचार करके किये हुए कार्य्यको परित्याग करे, बहुत समयतक सोचके मित्रता करनेसे वह चिरस्थायी हुआ करती है। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म्म, अप्रिय कार्य्य और कर्त्तव्यके अनुष्ठान विषयमें चिरकारी मनुष्य श्रेष्ठ होता है। सुहृत, बन्धु, सेवक और स्त्रियोंके अव्यक्त अपराधके विषयमें चिरकारी पुरुष उत्तम हुआ करता है। हे कुरुवंशबर्द्धन भारत! इस ही प्रकार गौतम पुत्रके चिरकारित्व निबन्धनसे वैसे कर्म्मके जरिये उस समय प्रसन्न हुए थे; इसलिये पुरुषको कार्य्यमात्रमें ही इस ही प्रकार बिचार करके निश्चय करनेसे कभी परितापग्रस्त नहीं होना पड़ता, जो लोग सदा दोषको धारण किया करते हैं, चिरकाल ही कर्म्ममें नियमित रहते हैं, वे तनिक भी पश्चातापयुक्त कार्य्यमें लिप्त नहीं होते, सदा बृद्धोंकी उपासना करे, सदा उनके पश्चात् बैठकर उनका सत्कार करे, सदा धर्म्मकी सेवामें नियुक्त रहे और सदा धर्म्मकी खोज करे। सदा विद्वानोंका सङ्ग, शिष्ट पुरुषोंकी सेवा और आत्माको बिनीत करनेसे सदाके लिये अनवद्यता प्राप्त हुआ करती है, दूसरेके बहुत समयतक पूछनेपर धर्म्मयुक्त वचन कहे, ऐसा होनेसे सदाके लिये दुःखित नहीं होना पड़ेगा। महातपस्वी द्विजश्रेष्ठ गौतम उस आश्रममें कई वर्ष व्यतीत करके अन्तमें पुत्रके सहित स्वर्गमें गये।

२६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुप्रवर पितामह! राजा किस प्रकार प्रजाको रक्षा करे, किस भांतिसे ही दण्डविधान रहित करके प्राणिहिंसासे निवृत्त रहे; उसे ही आपसे पूछता हूं, आप ऊपर कहे हुए विषयको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा सत्यवानके संग द्युमत्सेनके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। हमने सुना है, पिताकी आज्ञासे सत्यवानके जरिये दण्डाई पुरुष बधके लिए उपस्थित होने पर "दण्डनीय पुरुषोंके दण्ड न होनेका विषय पहले किसीने नहीं कहा है," सत्यवानने ऐसा ही कहा था। कभी अधर्म्म धर्म्म होता है और धर्म्म भी कभी अधर्म्म हुआ करता है; परन्तु प्राणिहिंसा करना धर्म्म है,—यह कभी सम्भव नहीं होसकता।

द्युमत्सेन बोले, हे सत्यवान! अहिंसा ही यदि धर्म्म हुआ, तो राजा डाकुओंके दमन करनेके लिये उनका वध न करनेसे वर्णसङ्कर आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, जबकि हिंसा न करनेसे धर्म्मकी रक्षा नहीं होती, तब केवल अहिंसाको ही किस प्रकार धर्म्म कहा जासकता है। और अधर्म्म प्रधान कलियुगमें "यह वस्तु मेरी है, यह उसकी है," ऐसा निश्चय नहीं होसकता; और डाकुओंको न मारनेसे तीर्थयात्रा तथा वाणिज्य व्यवहार आदिका निभना अत्यन्त कठिन है; इसलिये हिंसाके जरिये जिसमें वर्णसङ्कर न हो, वह विषय यदि तुम्हें विदित हो, तो उसे तुम मेरे समीप वर्णन करो।

सत्यवान बोले, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको ब्राह्मणोंके अधीन करना उचित है, ऊपर कहे हुए तीनों वर्णोंके धर्म्मपाशमें बद्ध होनेपर दूसरे प्रतिलोम और अनुलोमजात सूत मागध आदि सङ्कर जातीय पुरुष क्षत्रियादिकोंकी भांति धर्म्माचरण करेंगे। उनके बीच जो पुरुष ब्राह्मणोंका वचन अतिक्रम करेगा, ब्राह्मण उसका विषय राजासे कहे कि यह पुरुष मेरा वचन नहीं सुनता; इससे राजा उसके लिये दण्ड विधान करे, नीतिशास्त्रकी विधिपूर्व्वक आलोचना न करके शरीरके अविनाश विषयमें जो शास्त्र विहित हुआ है; उसमें अन्यथा करना उचित नहीं है। जब राजा डाकुओंके मारनेमें प्रवृत्त होता है, तब उनके पिता, माता, भार्य्या और पुत्र आदि निहत हुआ करते हैं; इसलिये दूसरेके अपकार करनेपर भी राजाको अवश्य पूरी रीतिसे विचार करना चाहिये। दुष्ट पुरुष किसी समय साधु चरित्रवाले होते हैं, और असाधुओंसे भी साधु सन्तान उत्पन्न हुआ करती हैं; इसलिये मूल सहित संहार न करना चाहिये, यह सनातन धर्म्म है; हिंसा न करनेसे भी दूसरे कार्य्योंके कारण प्रायश्चित्त विहित होता है, यह निश्चय वचन है। उद्वेजन अर्थात् सर्व्वस्व हरना, भय दिखाना, बांधना विरूप करना और वध दण्डसे डाकुओंको स्त्री आदिको पुरोहित समाजमें कष्ट देना उचित नहीं है। जब डाकू लोग पुरोहितके समीप शरणागत होके कहें, कि "हे ब्रह्मन्! हम अब फिर ऐसा कार्य्य नहीं करेंगे," तब उन्हें छोड़ना उचित है, यही विधाताका शासन है। दण्ड और मृगछालधारी सिरमुंडे सन्यासी यदि निन्दित कर्म्म करें, तो उन्हें भी अवश्य शासन करना चाहिये, बड़े लोग भी यदि शासन कर्त्ताके निकट बार बार अपराध करें तो उन्हें डाकुओंकी भांति बधदण्डमें दण्डित न करके देशसे निकाल देना चाहिये।

द्युमत्सेन बोले, निज निज नियमोंसे प्रजापालन किया जा सकता है, वे सब नियम जब तक लङ्घित न हों, तब वही धर्म्मरूपसे वर्णित हुआ करते हैं। बध दण्ड न करके राजा सबकोही पराभूत कर रखे, ऐसा होनेसे ऊपर कहे हुए डाकू लोग उत्तम रीतिसे सुशासित हुआ

करेंगे, मृदुस्वभाव, सत्यनिष्ठ, अल्पद्रोह करनेवाले और अवमन्यु पुरुषोंके अपराधी होनेपर पहले उन्हें धिक्कारके जरिये दण्ड देना विहित था। अनन्तर उन लोगोंको वाक् दण्डसे शासन करना व्यवहृत हुआ था, कुछ समयके अनन्तर उक्त अपराधियोंके विषयमें सर्व्वस्व हरण रूपी दण्डप्रचलित हुआ; अब कलियुगके प्रारम्भसे बधदण्ड व्यवहृत हुआ है। एक पुरुषके मारे जानेपर भी दूसरा नहीं डरता; इसलिये डाकुओंके पक्षवाले सब लोग ही बधके योग्य हैं। सुना है कि दस्यु पुरुष मनुष्य देवता, गन्धर्व्व और पितरोंमेंसे किसीका भी आत्मीय नहीं है; इसलिये डाकुओंके बध करनेसे उनकी भार्य्या आदिका बध नहीं होता; क्यों कि उन लोगोंके सङ्ग किसीका भी सम्बन्ध नहीं है। जो मूर्ख पुरुष श्मशानसे मुर्देका अलङ्कार और पिशाच तुल्य मनुष्योंसे देवताओंकी शपथ करके वस्त्र आदि हरण करता है, उस नष्टबुद्धि पुरुषके विषयमें सदाचार निर्देश करनेमें कौन पुरुष समर्थ होसकता है।

सत्यवान् बोले, अहिंसाके जरिये यदि दुष्टोंको साधु बनानेमें सामर्थ न हो, तो कोई यज्ञ आरम्भ करके उनका नाश करना चाहिये, क्यों कि पापी लोग यज्ञके पशु होकर स्वर्गमें गमन किया करते हैं, यह वेदमें वर्णित है; इसलिये बधाई पुरुषोंको भी यज्ञके बीच प्रवेश कराके उनका उपकार करना उचित है। राजा लोग लोकयात्रा निबाहनेके लिये परम तपस्या किया करते हैं, वे उत्तम चरित्रवाले होनेपर भी "हमारे राज्यमें डाकू हैं," ऐसा जाननेसे, वैसे डाकुओंसे लज्जित होते हैं। भय दिखानेसे ही प्रजा साधु होती है, राजा इच्छानुसार दुष्कृतशाली प्रजाको नहीं मारता। यज्ञमें प्रयोजन होनेसे सुकृतके जरिये उन्हें प्रचुर रीतिसे शासन किया करता है। राजाके सदाचार करनेसे प्रजा उसहीके अनुसार सदाचार अवलम्बन करती है; श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण पुरुष भी उसहीके अनुसार चला करते हैं। लोग इस ही प्रकार क्रमसे कल्याण लाभ करते हैं, मनुष्य बड़े लोगोंके अनुवर्त्तनसे सदा निरत हुआ करते हैं। जो राजा अपने चित्तको सावधान न करके दूसरेको शासन करनेकी इच्छा करता है, उस विषयेन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले राजाकी प्रजा हंसी किया करती है, जो पुरुष दम्भ और मोहके वशमें होकर राजाके सङ्ग तनिक भी अनुचित व्यवहार करे, उसे जिस उपायसे होसके, शासन करना उचित है; ऐसा होनेसे वह पापसे निवृत होगा। जो पापकर्म्म करनेवाले पुरुषको पूर्ण रीतिसे शासन करनेकी इच्छा करे, पहले उसे आत्म-नियमित करना योग्य है। अनन्तर पुत्र सहोदर आदिको महत् दण्डके सहारे शासित करना उचित है। जिस राज्यमें पाप करनेवाले नीच लोग अत्यन्त महत् दुःख नहीं पाते, अवश्य ही वहां पापकी बढ़ती और धर्म्मकी घटती हुआ करती है; करुणाशील विद्वान् ब्राह्मणोंने ऐसेही अनुशासन किये हैं। हे तात! अत्यन्त करुणाके सबब प्रजासमूहके विषयमें धीरज देनेवाले पितामहके जरिये मैं इस ही प्रकार अनुशिष्ट हुआ था। सतयुगमें राजाओंने इस ही प्रथम कल्प शासन अर्थात् अहिंसामय दण्डसे ही पृथ्वी मण्डलको वशमें किया था। त्रेतायुगमें तीनपाद धर्म्मके सहारे प्रजा शासन होता था, द्वापरमें दोपाद धर्म्म और कलियुगमें एकपाद धर्म्म प्रवृत्त हुआ है। धिगदण्ड, वाक् दण्ड, आदान दण्ड और बधदण्ड युगके क्रमसे प्रजासमूहके विषयमें प्रवृत्त हुआ करते हैं। कलियुगके उपस्थित होनेपर समय-विशेषमें राजाके दुश्चरित्रसे धर्म्मके सोलह अंशोंका एक अंश मात्र, शेष रहेगा। हे सत्यवान्! यदि अहिंसामय प्रथम कल्प दण्डविधानसे धर्म्म शङ्कर हो, तो परमायु, शक्ति और काल निर्देश

करके राजा दण्डकी आज्ञा करे। सत्यके निमित्त अर्थात् ब्रह्म प्राप्तिके हेतु इस लोकमें अत्यन्त महत् धर्म्मफलको त्यागना न चाहिये जीवोंके ऊपर कृपा करके स्वयम्भू मनुने उसे कहा है।

२६६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! समस्त ऐश्वर्य्य, ध्यान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म्म, इन छहों गुणोंका हेतु जो योग धर्म्म जीवोंके विषयमें अविरोध भावसे जिस प्रकार उभयभागी अर्थात् गार्हस्थ्य और सन्न्यास, इन दोनोंमें उपयोगी होता है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। गार्हस्थ्य पञ्चसूना अनिवार्य्य है, जो धर्म्ममें समस्त विषय सब भांतिसे परित्यज्य है, उक्त दोनों धर्म्म एक ही कार्य्यकेलिये प्रवृत्त होने पर अर्थात् गृहस्थ पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनके जरिये जीविका निर्व्वाह करनेसे तत्त्वज्ञाननिष्ठ, अतिथिप्रिय, श्राद्ध करनेवाले तथा सत्यवादी होनेसे मुक्त होंगे। और योगी पुरुष प्राणायामसे पापोंको जलाकर धारणासे किल्विष नाश, प्रत्याहारके जरिये सङ्ग परिहार और ध्यानके सहारे जीवत्व आदि गुणोंको परित्याग करें; इसलिये उक्त दोनों धर्म्मोंके तुल्यअर्थ होनेपर भी उनके बीच कौन कल्याणकारी है।

भीष्म बोले, गार्हस्थ्य और योग धर्म्म दोनों ही महा ऐश्वर्य्यसे युक्त तथा अत्यन्त दुश्चर हैं, दोनोंमें ही महत् फल हैं, और दोनों धर्म्म साधुओंके आचरित हैं; इस समय मैं तुम्हारे समीप उक्त दोनों धर्म्मोंका प्रमाण वर्णन करता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुननेसे धर्म्म विषयमें तुम्हारा संशय दूर होगा। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें कपिल और गौके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं तुम उसे सुनो। पहिले समयमें राजा नहुष नित्य-निश्चय पुरातन वेदविधि देखकर गृहमें आये हुए अतिथियोंके निमित्त गऊ मारनेमें प्रवृत्त हुए थे मैंने ऐसा सुना है; अदीन स्वभाववाले सत्वगुण अवलम्बी, संयममें रत नियताहारी, ज्ञानवान् कपिलने वधके लिये लाई गई उस गऊको देखा था। वह भयरहित सत्यसंश्रयी, अशिथिल और नैष्ठिकी बुद्धिसे युक्त थे—इस ही लिये उस गऊको देखकर 'हा वेद!' ऐसा वचन कहके आक्षेप प्रकाश किया था। स्यूमरश्मि ऋषि योगबलसे उस गऊके शरीरमें प्रवेश करके कपिल मुनिसे बोले, क्याही आश्चर्य्य है! यदि सब वेद ही गर्हित रूपसे सम्मत हुए तब दूसरा कौन हिंसारहित धर्म्म लोगोंको अभिमत होगा। सन्तोषयुक्त श्रुतिबलसे विज्ञानदर्शी तपस्वी लोग ऋषियोंसे प्रकट हुए वेदवाक्योंको नित्य विज्ञानमय परमेश्वरका वाक्य कहके मान्य करते हैं, इसलिये वेदवाक्यके एक अक्षरको भी अप्रमाणित करनेमें किसीकी सामर्थ नहीं है। जो फलकी आशासे रहित, दोषहीन वीतराग और अव्याप्त समस्त कामत्व निबन्धनसे सब प्रकार निरारम्भ है, उस परमेश्वरके वचन वेदोंमें क्या किसी पुरुषको कुछ कहनेकी शक्ति है।

कपिल बोले, मैंने वेदोंकी निन्दा नहीं की है, और किसी विषयमें कुछ विषम वाक्य कहनेकी इच्छा भी नहीं करता, पृथक् पृथक् आश्रमवालोंके सब कर्म्म एक प्रयोजनके हैं, इसे मैंने सुना है। क्या सन्न्यासी, क्या वाणप्रस्थ, क्या गृहस्थ, क्या ब्रह्मचारी, सब ही परम पद लाभ किया करते हैं। चारों आश्रमोंसे ही आत्माको प्राप्त किया जाता है, इस ही लिये ब्रह्मचर्य्य आदि चारों आश्रम देवयान पथ रूपसे प्रसिद्ध हैं, इन चारोंमें उत्कर्ष और अपकर्ष तथा बलाबलके विषय वर्णित हुए हैं, कि सन्न्यासी मोक्षलाभ करते हैं, वाणप्रस्थ ब्रह्म लोक पाते

है, गृहस्थ पुरुष स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं, और ब्रह्मचारी ऋषिलोकमें वास करते हैं। ऐसा ही जानके स्वर्गादिप्रद यज्ञादि कर्म्म आरम्भ करे; यही वैदिक मत और वेदके प्रकारणान्तरमें कर्म्म न करनेकी भी विधि है, इस ही प्रकार नैष्ठिकी जनश्रुति भी श्रवणगोचर हुआ करती है, अर्थात् सन्न्यास ही सबके विषयमें परम मोक्ष साधन है। जो सब काम्य वस्तुओंको परित्याग करते हैं, वे परब्रह्मको जानके परमपद पाते हैं। कर्म्म न करनेसे कोई दोष नहीं होता, परन्तु यज्ञ आदि कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे हिंसा आदिसे बहुतेरे दोष हुआ करते हैं। जब शास्त्र इस प्रकार है, तब कर्म्म त्याग और कर्म्मानुष्ठानके बलाबल अत्यन्त ही दुर्व्विज्ञेय हैं, क्यों कि दोनोंमें ही निन्दा और प्रशंसाको तुल्यता है। आगमशास्त्रोंके अतिरिक्त जो कुछ हिंसाशास्त्र हैं, यदि वे प्रत्यक्ष हों और तुमने उन्हें देखा हो, तो उसे ही कहो।

स्यूमरश्मि बोले, "स्वर्गकी इच्छाकरनेवाले पुरुष यज्ञ करे" सदा ऐसी ही जनश्रुति सुनी जाती है। पहले फलकी कल्पना करके उसके अनन्तर यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। बकरे, घोड़े, मेढ़, गज, पक्षियें और गांव तथा जङ्गलकी सब ओषधियें प्राणियोंके अन्न हैं; यह वेदमें प्रतिपन्न हुआ है; इसलिये जो जिसका अन्न है, उसके खानेमें कोई दोष नहीं है। प्रतिदिन सन्ध्या और भोरके समयमें अन्न निरूपित हुआ करता है; पशुसमूह और समस्त धान्य यज्ञके अङ्ग हैं; यह भी वेदके बीच विहित है। प्रजापतिने ऊपर कहे हुए पशुओंको यज्ञके लिये उत्पन्न किया है, और उन्हींके जरिये देवताओंका यज्ञ कराया था। ऊपर कहे हुए पशु, ग्राम और अरण्यभेदसे सात प्रकारके हैं, वे परस्पर श्रेष्ठ हैं। गज, बकरे, मनुज, घोड़े, मेढ़, खच्चर और गदहे, ये सातों ग्रामपशु हैं; और सिंह, बाघ, बराह, महिष, भैंसे, भालू और बन्दर, ये सातों जङ्गली कहके वर्णित हुआ करते हैं। यज्ञमें विनियुक्त भूभागको महर्षि लोग उत्तम संज्ञक कहा करते हैं और यह पहलेसे ही पण्डितोंके जरिये अनुज्ञात हुआ है। कौन विद्वान् पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार मुक्तिके उपाय करनेमें अभिलाषी नहीं होता; सब कोई अपनी सामर्थ्यके अनुसार यज्ञ कार्य्य करें। मनुष्य, पशु, वृक्ष और समस्त ओषधियें स्वर्गकी कामना किया करती हैं, स्वर्गके अतिरिक्त सुख नहीं है। ओषधि, पशु, वृक्ष, वीरुत्, घृत, दूध, दही, हवि भूमि, दिक् श्रद्धा और काल, ये बारह और ऋक्, यजु, साम तथा यजमानको मिलाके सोलह, और अग्निस्वरूप गृहपति सप्तदश रूपसे कहे जाते हैं। येही सत्तरह यज्ञके अङ्ग हैं, यज्ञ ही लोकस्थितिका मूल है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। घृत, दूध, दही, शकृत्, आमिक्षा, त्वक्, पुच्छलोम, शृंग और खुरके जरिये गोयज्ञका कार्य्य सिद्ध हुआ करता है। सब वस्तुओंमेंसे यज्ञके लिये प्रत्येकमें जो जो विहित होता है, वह सब एकत्रित होकर दक्षिणायुक्त ऋत्विकोंके सहित यज्ञको पूर्ण करता है। ऊपर कही हुई सब सामग्रियोंको समाप्त करनेसे यज्ञ निवृत्त हुआ करता है। यज्ञके लिये ही सब वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं, यह यथार्थ श्रुति कानोंसे सुनी जाती है। प्राचीन मनुष्य इस ही भांति यज्ञके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते थे; वे किसीकी हिंसा नहीं करते थे फलकी कामनासे कोई कर्म्म नहीं करते थे। और किसीसे द्रोह नहीं करते थे। "यज्ञ करना कर्त्तव्य है," ऐसा समझके फलकी इच्छा न करके जो लोग यज्ञ करते हैं, उनके यज्ञमें पहले कहे हुए सब यज्ञाङ्ग और यज्ञमें कहे हुए यूपकाष्ठ यथारीतिसे विधिपूर्व्वक निज निज कार्य्योंसे परस्परका उपकार करते हैं। जिसमें सब वेद प्रतिष्ठित

होरहे हैं, मैं उस ऋषिप्रणीत आम्नाय-वाक्यका दर्शन करता हूं, कर्म्म-प्रवर्त्तक ब्राह्मण वाक्य-दर्शन निबन्धनसे विद्वान् लोग भी उस वेद-वाक्यको अवलोकन किया करते हैं। ब्राह्मणसे यज्ञकी उत्पत्ति होती है और ब्राह्मणमें यज्ञ अर्पित हुआ करता है, सब जगत् यज्ञका आसरा किये हैं, और यज्ञ भी सदा जगत्‌को अवलम्बन कर रहा है। ओंकार ही वेदका मूल है, इसलिये प्रणवका उच्चारण करके यज्ञादि कार्य्योंको करना चाहिये। नमःस्वाहा, स्वधा, वषट् इत्यादि मन्त्रोंके यथा शक्ति जिसके गृहमें प्रयोग होते हैं; त्रिभुवनके बीच उसे ही परलोकका भय नहीं है; सब वेद और सिद्ध महर्षि लोग इस विषयमें ऐसा ही कहा करते हैं। ऋक्, यजु, साम आदि शब्द, ये सब विधि पूर्व्वक प्रयुक्त होकर जिसमें निवास करते हैं, वेही द्विज-पदवाच्य होते हैं। हे द्विज! आम्नप्राधान, सोमपान और इतर महायज्ञोंसे जो फल होता है, उसे तो आप जानते हैं। इसलिये विचार न करके यजन और याजन करना उचित है। स्वर्गप्रद ज्योतिष्टोमादि अनुष्ठानके जरिये जो यज्ञ करते हैं, परलोकमें उन्हें अत्यन्त महत् स्वर्ग फल प्राप्त हुआ करता है। जो यज्ञ नहीं करते, उनका यह लोक और परलोक नष्ट होता है। जो वेदगत अर्थवाद जानते हैं, उस अर्थवादके दोनों फल सामर्थ्य ही इस विषयमें प्रमाण है, यह भी उन्हें अविदित नहीं है।

२६७ अध्याय समाप्त।

कपिल बोले, सविशेष अवस्थामें स्थित, यम नियम आदिसे युक्त, योगी लोग इश्वत्व रूपसे परिच्छिन्न ब्रह्माण्ड पर्य्यन्त कर्म्म फल अवलोकन करते हुए परमात्माका दर्शन किया करते हैं; सब लोकोंके बीच इन लोगोंके सङ्कल्प कभी मिथ्या न होवे। जो सर्दी, गर्म्मीसे उत्पन्न हुए हर्ष विषादसे रहित हैं, जो किसीको नमस्कार वा आशीर्व्वाद नहीं करते, ज्ञानयुक्त होनेसे वासनाके हेतु सब पापोंसे जो लोग मुक्त हुए हैं, वे स्वभावसिद्ध पवित्र और आनेवाले दोषोंसे रहित योगी पुरुष परम सुखसे विचरते रहते हैं। अपवर्ग और सन्न्यास विषयकी बुद्धिसे जिन्होंने निश्चय किया है, वे ब्रह्माभिलाषी ब्रह्मभूत योगी लोग ब्रह्मको ही अवलम्बन किया करते हैं, जिन्हें शोक नहीं है, और रजोगुण नष्ट हुआ है, उनके निमित्त नित्य सिद्ध सनातन लोक निर्म्मित है, परमपद पाके फिर उन्हें गृहस्थ धर्म्मकी क्या आवश्यकता है।

स्यूमरश्मि बोले, यदि यही परम उत्कर्ष और यही चरम-गति हुई, तोभी बिना गृहस्थोंके आसरेसे दूसरे आश्रमोंके निर्व्वाह नहीं होसकते। जैसे जननीका आसरा करके सब जन्तु जीवन धारण करते हैं, वैसे ही गृहस्थाश्रमके अवलम्बसे सब आश्रमवाले वर्त्तमान रहते हैं। गृहस्थ ही यज्ञ किया करता है, गृहस्थ ही तपस्या करता है; सुखकी इच्छा करके जो कुछ चेष्टा की जाती है, गार्हस्थ ही उसका मूल है। प्राणिमात्र ही सन्तानके उत्पन्न होनेसे सब भांतिसे सुखी होते हैं, गृहस्थाश्रमके अतिरिक्त दूसरे किसी आश्रममें भी वह पुत्रोत्पत्ति सम्भव नहीं होती, वाह्य औषधि धान्य आदि और शैलज ओषधि सोमलता इत्यादि जो कुछ दीख पड़ती हैं, प्राण उन ओषधि स्वरूप है; क्यों कि अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यके निकट उपस्थित होती है, सूर्य्यसे वर्षा उत्पन्न होती है, जल बरसनेसे अन्न उपजता है, और अन्नसे प्रजासमूहकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसलिये ओषधि स्वरूप प्राणसे पृथक् जब दूसरा कोई पदार्थ नहीं दीखता, तब गृहस्थाश्रम ही जगत्‌की उत्पत्तिका कारण

है; 'गृहस्थाश्रममें मोक्ष नहीं होती' किस पुरुषका यह बचन सत्य होसकता है। श्रद्धा-रहित, बुद्धिहीन, सूक्ष्म दर्शन बिवर्ज्जित, प्रतिष्ठाहीन, आलसी, श्रान्त और निज कर्म्मसे सन्तापयुक्त, कार्य्यल आदि दोषोंसे गृहस्थ धर्म्म प्रतिपालन करनेमें असमर्थ मूर्ख पुरुष ही प्रवज्याधर्म्ममें शमगुणको अधिकता दर्शन किया करते हैं। तीनों लोकोंके हितके निमित्त यह नित्य निश्चल मर्य्यादा है, कि भगवान् वेदवित् ब्राह्मण जन्म पर्य्यन्त पूजनीय हैं। प्रमाणान्तरोंसे अगम्य स्वर्गादि और ऐहिक कर्म्मफलसिद्धि बिषयमें जो सब मन्त्र हैं, वह गर्भाधानके पहलेसे ही द्विजातियोंमें निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

मृत-देहको जलाना, फिर शरीर प्राप्ति, मरनेके अनन्तर श्राद्ध तर्पण आदि वैतरणीके समयमें गजदान, आद्य श्राद्धके समयमें वृषोत्सर्ग और सब पिण्डोंमें जल सिञ्चन, ये सब मन्त्रमूलक हैं; ज्योतिर्म्मय, कुशापर सोनेवाले क्रव्यात् और पितर लोग मृतकके सम्बन्धमें ऊपर कहे हुए कार्य्योंकी मन्त्रसम्मत कहा करते हैं; वेद जब इन मन्त्रोंके कारणताको घोषणा कर रहे हैं और मनुष्य लोग जब पितर देवता तथा ऋषियोंके निकट ऋणी हैं, तब किसी पुरुषको किस प्रकार मोक्ष होसकती है। सब मन्त्र शरीर हीन मुक्त पुरुषोंके उपकारके लिये नहीं हैं; इसलिये उस प्रकार अशरीरता लक्षण मोक्ष नहीं है। वेदवाक्योंका जिसमें पूर्ण रीतसे ज्ञान नहीं होता, वह सत्यको भांत आभासमान मिथ्याधर्म्म है; सम्पत्तिरहित आलसी पण्डितोंके जरिये वह मिथ्या धर्म्म प्रवर्त्तित हुआ है, जो वेदवित् ब्राह्मण वेदशास्त्र विहित यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करता है, वह पापोंसे आच्छत वा आकर्षित नहीं होता; बल्कि वह यज्ञ और यज्ञीय पशुओंके सहित ऊर्द्धलोकमें गमन करता है; और वह स्वयं सर्व्वकामसे तृप्त होकर दूसरोंको तर्पित किया करता है; इसलिये-अग्निहोत्र आदि कर्म्म समुचित उपासनारूपी ज्ञानसे ही मोक्ष होती है, इससे वह गृहस्थाश्रममें ही सिद्ध हुआ करती है। वेदोक्त कर्म्ममें अनादर, शठता वा मायासे पुरुष महत् ब्रह्मपद नहीं पाता, वेद जाननेवाले ब्राह्मण ही वेदोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठानसे ब्रह्मपद प्राप्त किया करते हैं।

कपिलमुनि बोले, दर्शपौर्णमास, अग्निहोत्र और चातुर्म्मास यज्ञ बुद्धिमान् मनुष्योंको चित्तशुद्धिके कारण हुए हैं; इसलिये उक्त यज्ञादि कर्म्मोंमें सनातन धर्म्म विद्यमान है, हिंसायुक्त पशुबध आदि कार्य्योंमें कोई धर्म्म नहीं है। जो यज्ञादिकोंका अनुष्ठान नहीं करते, वेही धैर्य्यशील हैं, इससे वेही राग आदि दोषोंसे रहित ब्रह्मज्ञ शब्दके वाच्य होते हैं। वेही सन्न्यासी ब्रह्मदर्शनके जरिये अमृताभिलाषी देवर्षि और पितरोंकी तृप्तिसाधन किया करते हैं। जो सब भूतोंके आत्मभूत और सब प्राणियोंमें समदर्शी हैं, गुणाभिलाषी देवता लोग भी उस निर्गुण पुरुषके पदलाभ करनेमें मुग्ध हुआ करते हैं। बाहु, वाक्य, उदर और उपस्थ, ये चारों द्वारकी भांति जिसे आवरण कर रखते हैं; देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, ये चारों जिसके भोगसाधन सुखस्वरूप हैं, मनुष्य गुरूपदेशसे इस शरीरके भीतर स्थित सर्व्वमय पुरुषको विराट, सूत्र, अन्तर्य्यामी और शुद्ध-चैतन्य इन चारों भांतिसे जानता है। जो उसे जाननेकी इच्छा करे, वह दोनों भुजा, बचन, उदर और उपस्थकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेमें यत्नवान् होवे। बुद्धिमान पुरुष जुआ न खेले, दूसरेका वित्त न हरे, जिसके सङ्ग यौन-सम्बन्ध होनेकी सम्भावना नहीं है, उसे याजन न करे, क्रुद्ध होके किसीके ऊपर प्रहार न करे; जो लोग इस ही प्रकार व्यवहार करते हैं, उनके हाथ पांव उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं। आक्रोश

करनेकी इच्छा न करे, तथा बचन न कहे, खलता और लोभोंके अपवादको परित्याग करे; जो लोग सत्यव्रती, मितभाषी और प्रमाद रहित हैं, उनका बचनरूपी द्वार उत्तम रीतिसे रचित हुआ करता है। अनशन (उपवास) अवलम्बन न करे और अधिक भोजन भी न करना चाहिये, अलोलुप होकर साधुओंमें मिलित होवे, इस लोकमें देहयात्रा निबाहनेके लिये थोड़ासा आहार करे; जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, उनके जठर द्वारकी उत्तम रीतिसे रक्षा हुआ करती है। यज्ञ सम्बन्धी पत्नीसे बिमुक्त न होवे, यथा विधि परिणीता पत्नीके रहते दूसरी पत्नी का पाणिग्रहण करके प्रथम परिणीता पत्नीको धर्म्म, अर्थ, काम विषयमें बिभागवती न करे और ऋतुकालके अतिरिक्त दूसरे समयमें पत्नीको आह्वान न करे, स्वयं भार्य्याव्रत अर्थात् परस्त्री त्याग व्रत धारण करे; जो लोग ऐसा आचरण करते हैं, उनके उपस्थ द्वारकी रक्षा हुआ करती है। जिस मनीषी पुरुषके उपस्थ, उदर, बाहु और बचन ये चारों द्वार पूर्ण रीतिसे रक्षित हुए हैं, वही ब्रह्मपदवाच्य होता है; और जिसके पहले कहे हुए सब द्वार रक्षित नहीं होते उसके सब कार्य्य ही निष्फल होते हैं, वैसे पुरुषको तपस्यासे क्या प्रयोजन है, यज्ञकी ही कौनसी आवश्यकता है, और धैर्य्यका ही क्या प्रयोजन हैं; जिसके उत्तरीय वस्त्र नहीं है, जो आस्तरणशून्य स्थानमें बाहुको तकिया रूपसे सिरसे नीचे रखके शयन किया करते हैं, उन दम गुणावलम्बी पुरुषोंको देवता लोग ब्राह्मण समझते हैं। जो मननशील होकर एकबारही सुख वा दुःखका अनुशीलन न करके सुख दुःख आदि सब विषयोंमें रत रहते हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण समझते हैं। किसी प्राणियोंसे जिन्हें भय नहीं है, और जिनसे सब प्राणियोंको भय नहीं होता; जो सब भूतोंके आत्मभूत हैं, देवता लोग उन्हें ब्राह्मण समझते हैं। दान और यज्ञादि क्रियाके फल चित्तशुद्धिके बिना मनुष्य ब्राह्मण्य क्या है, उसे नहीं जान सकते; मूढ़ लोग वह सब न जानके ही स्वर्गकी कामना किया करते हैं। जो सदाचार अवलम्बन करनेसे संश्रित आश्रमोंमें निज कर्म्मोंके सहित तपस्या अर्थात् वेदान्त श्रवणादि स्वरूप आलोचना संसारके मूल अज्ञानको जलाती है, वही अनादि है, मुमुक्षु पुरुषोंका नित्य अनुष्ठेय है, सत्य फलक और धर्म्ममें ग्रथित सदाचार आचरण करनेमें असमर्थ मनुष्य प्रत्यक्ष फलमय नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि संज्ञक परम ऐश्वर्य्ययुक्त अबिनाशी कर्म्मोंको अनैकान्तिक और निष्फल देखते हैं। आचार ही निरापद्धर्म्म है, उनमें प्रमाद नहीं है, और काम, क्रोध आदिका आक्रमण नहीं है। इस लोकमें यज्ञादि कार्य्य अत्यन्त दुर्ज्ञेय हैं; यद्यपि वे जाने जाते हैं, तौभी अत्यन्त दुष्कर हैं, यद्यपि उसका अनुष्ठान किया जाता है, तौभी उसका परिणाम क्षययुक्त हुआ करता है, इसी ही तुम आलोचना कर रहे हो।

स्यूमरश्मि बोले, हे भगवन्! कर्म्मकरो अथवा कर्म्म त्याग करो, इस ही प्रकार परस्पर बिरुद्ध दोनों पक्षके उपदेश देनेवाले वेद वाक्यकी प्रमाणता जिस प्रकार सिद्ध होती है, और जिस प्रकार त्याग सफल हुआ करता है, ये दोनों पथ ही वेदमें बर्णित हैं; अतएव आप उनकी यथार्थता मेरे समीप बर्णन करिये।

कपिल बोले, आप ब्रह्म प्राप्तिके उपाय भूत योगमार्गमें स्थित होकर इस जीवदेहमें प्रत्यक्ष दर्शन करिये, आप कर्म्मठ होकर जो अभिलाष किया करते हैं, इस लोकमें उस सुख आदिका अनुभव स्वरूप प्रत्यक्ष क्या है?

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! मैं स्यूमरश्मि हूं, ज्ञान प्राप्तिके लिये इस गोशरीरमें प्रविष्ट

हुआ हूं; कल्याणकी इच्छा करके सरल भावसे प्रत्युत्तर देता हूं, और निज पचको समर्थ न करनेके लिये नहीं कहता हूं, मुझे यह घोर संशय है, आप उसे दूर करिये। आप सत्यमें निवास करते हुए इस शरीरमें प्रत्यच दर्शन करते हैं, इससे आप जिस प्रकार उपासना किया करते हैं, उसमें प्रत्यच पदार्थ क्या है; प्रधान तर्क वेदविरोधी लोकायत, आर्हत, सौगत और कापालिक आदि सब शास्त्रोंको परित्याग करके यथावत् आगम शब्दका अर्थ मुझे विदित हुआ है। वेदवाक्य और वेदार्थनिर्णायक पूर्व्व मीमांसा, उत्तर-मीमांसा, सांख्य, पातञ्जल और तर्क शास्त्रोंका भी आगम कहा जाता है, इसलिये आश्रम धर्म्मोंको अतिक्रम न करके सब आगम शास्त्रोंकी उपासना करनेसे फल सिद्धि हुआ करती है। आगमोंके निश्चय निबन्धनसे गता-गति, दिव्य भोगोंकी प्राप्ति आदि प्रत्यचरूपी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है। जैसे एक नौकामें निबद्ध दूसरी नौका बन्धनके सहित नदीके प्रवा-हमें ह्रयमान् होकर किसी पुरुषको दूसरे किनारे पर नहीं पहुंचा सकती, हे विप्र! हम लोग उस ही प्रकार कर्म्म-नौकामें निबद्ध होकर पूर्व्व कर्म्म वासना-बन्धनसे जन्म, जरा, मृत्यु प्रवाहके पार होनेमें असमर्थ हैं। हे भगवन्! इसलिये मैं आपका शरणागत शिष्य हुआ हूं, आप मुझे इस प्रत्यच पदार्थ ज्ञानकी शिचा दीजिये। इस संसारमें कोई पुरुष भी त्यागशील नहीं है, कोई सन्तुष्ट नहीं है, कोई पुरुष भी शोकहीन नहीं है, कोई मनुष्य रोग रहित नहीं है, कोई चिकिर्षा शून्य नहीं है, कोई पुरुष आसक्तिहीन नहीं है, और जिसमें पारिपाट्य न हो, ऐसा पुरुष हो नहीं है। आप भी मेरी भांति प्रसन्न होते और शोक किया करते हैं, और आप लोगोंमें भी समस्त इन्द्रिय-विषय सब जीवोंके सहित समान ही हैं; इसलिये मैंने सुखाभिलाषी सब वर्णोंके सुखको अनुभव किया है। अब यदि सुखका निर्णय करना हो, तो अपचयहीन सुख कौनसा है, आप मुझे उसहीका उपदेश करिये।

कपिल मुनि बोले, सब वैदिक शास्त्र समस्त प्रवृत्तिके बीच जो मोच विषयके अनु-ष्ठान करनेका उपदेश करते हैं, उस मोचका अनुष्ठान जिसमें है, वही अपचयरहित सुखका अवलम्ब है। जो पुरुष ज्ञानका अनुसरण करता है, उसके शम दम आदिके हेतुसे उत्पन्न हुआ ज्ञान समस्त संसारका बिनाश किया करता है। ज्ञानके बिना जो वैदिक कर्म्ममें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, वह प्रवृत्ति ही जन्म मरण प्रवाहरूपी क्लेशसे प्रजासमूहको पीड़ित करती है। आप ज्ञानी और सब तरहसे निरा-मय हैं; इसलिये आप लोगोंके बीच क्या किसीने कभी ऐकात्म्य ज्ञान प्राप्त किया है। कोई कोई वितण्डावादी शास्त्रके यथार्थ मर्म्मको न जानके काम और क्रोधमें फंसनेसे अहङ्कारके वशमें हुआ करते हैं। शास्त्र-दस्यु पुरुष शास्त्रोंके अभिप्रायको न जानके स्वगत, स्वजा-तीय और विजातीय, इन तीनों परिच्छेदोंसे रहित ब्रह्मवस्तुका अपलाप करते हुए शम दम आदिके साधनमें उदासीनता अवलम्बन करके दम्भ और लोभके वशमें हुए हैं। वैसे मनुष्य केवल फलाभावको देखते हैं; ज्ञान, ऐश्वर्य्य आदि गुणोंको आत्मसंवेद्य समझके दूसरेमें योजना नहीं करते; उन तमोगुण प्रधान देहधारियोंके लिये तम ही परम अव-लम्ब है, जिस जन्तुकी जैसी प्रकृति है, वह वैसी ही प्रकृतिके वशवर्त्ती होता है, उसके काम, क्रोध, द्वेष, दम्भ, मिथ्या, मद आदि प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणसमूह सदाही वर्द्धित हुआ करते हैं। जो सिद्धान्त वाक्यमें निरत यतिलोग परमग-तिकी कामना किया करते हैं, वे ध्यानपूर्व्वक यह सब आलोचना करके शुभाशुभ परित्याग करें।

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! मैंने शास्त्रके अनुसार कर्म्मकी प्रशस्तता और सन्न्यास धर्म्मकी अप्रशस्तता वर्णन की है, शास्त्रके अर्थको बिना जाने वाक्यके बिलाससे प्रवृत्ति नहीं होती। न्यायके अनुगत जो कुछ व्यवहार है, वही शास्त्र और जो अन्यायके अनुगत है, वही अशास्त्र है, ऐसी ही जनश्रुति श्रुतिगोचर हुआ करती है। यह निश्चय है, कि शास्त्रके अति-रिक्त कोई प्रवृत्ति नहीं होती, वेदशास्त्रोंसे जो भिन्न है, वही अशास्त्र है, यह वेदमें प्रतिपन्न है। अविज्ञानके वशमें होकर हतप्रज्ञ हीनबुद्धि तमसे आवृत बहुतेरे पुरुष जो प्रत्यक्ष-सिद्ध पदार्थका ही मान्य किया करते हैं, वे लोग केवल इस लोकको ही देखते हैं, वे कृतहानि और अकृताभ्यागम आदि शास्त्रके दोषोंको नहीं देखते। जो अन्यान्य अवैदिक मतको अवलम्बन करके लोकायत नास्तिक लोग शोक किया करते हैं, हम लोग वैसे मतका आसरा करनेसे उन्हीं लोगोंको भांति शोकभाजन होंगे। शीत उष्ण आदि स्पर्श पशु, पामर और पण्डित आदि सबके पक्षमें समान हैं, हम लोग आत्माका अनुभव न कर सकनेसे स्वरूप निष्ठासे रहित हीनविषयोंमें बुद्धियुक्त हैं, इस ही लिये अज्ञानसे छिपे हुए हैं। सिद्धान्त-विष-यमें सब तरहसे उपापोह-कुशल होकर आपने अनन्त वाक्य प्रकाश करके एक मात्र सुखार्थी वर्ण और चारों आश्रमोंके प्रवृत्ति विषयमें हमारे चित्तको शान्तिरूपी जलसे अभिषिक्त किया। केवल योगयुक्त सब तरहसे कृतकृत्य चित्त विजयी पुरुष शरीर मात्रके सहारे धर्म्मा-चरण करने और वेदवाक्यको अवलम्बन करके "मोक्ष है," यह वचन कहनेमें समर्थ होता है, अर्थात् जो लोग सब तरहसे धर्म्माचरण कर सकते हैं, उन्हें ही "मोक्ष है,"—इस वचनका उल्लेख करना उचित है। जिस पुरुषने नीति-शास्त्रको अतिक्रम किया है, सब लोग ही उसकी निन्दा किया करते हैं, उसके पक्षमें कुटुम्बगण-संश्रित कर्म्म करना अत्यन्त दुष्कर है; दान, अध्ययन, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति और समस्त व्यवहार, यह सब करनेपर भी यदि किसीको मोक्ष न हो, तब उस कर्त्ता और कार्य्यको धिक्कार है और वैसा परिश्रम भी निरर्थक है। यदि वेदवाक्यका अमान्य करके कोई ऊपर कहे हुए कर्म्मोंको न करे, तो उसकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। हे भग-वन्! इसलिये मैं आपके समीप एक मोक्ष विषयका ही वृत्तान्त विस्तारके सहित शीघ्र सुननेकी अभिलाष करता हूं, आप उसे वर्णन करिये; मैं आपके निकट आया हूं आप मुझे शिक्षा दीजिये। हे ब्रह्मन्! आप मोक्षके विष-यको जिस प्रकार जानते हैं, मैं वैसी ही शिक्षाकी इच्छा करता हूं।

२६८ अध्याय समाप्त।

कपिल मुनि बोले, वेद ही सब लोगोंके धर्म्म शिक्षामें प्रमाण है; इसलिये वेद वाक्यका अमान्य करना किसीको भी उचित नहीं है। सब वेदवाक्य दो भागोंमें विभक्त हैं, पहला कर्म्मोपासना काण्ड, दूसरा ज्ञानकाण्ड, इन दोनों काण्डोंको ही सबको जानना योग्य है। जो लोग कर्म्मोपासना काण्डमें निपुण हुए हैं, वे परब्रह्मको जाननेके अधिकारी होते हैं। गर्भाधान आदि वैदिक संस्कारोंसे जो शरीर शुद्ध होता है, वैसे पवित्र शरीरवाले ब्राह्मण ब्रह्मविद्याके योग्य पात्र हुआ करते हैं। मोक्षके उपयोगी चित्त शुद्धि रूप कर्म्म फलोंकी सीमा नहीं है, इसे प्रत्यक्ष देखिये। यह फल अनु-मान् वा ऐहिक प्रमाणके जरिये नहीं जाना जाता; यह इस लोकमें साक्षिक प्रत्यक्ष फल है। धन संग्रहसे रहित, लोभहीन, राग, द्वेष वर्जित निष्काम पुरुष धर्म्म जाननेसे यज्ञ

किया करते हैं। सत्पात्रको दान करनेसेही धनकी सार्थकता होती है, जिन लोगोंने कभी पाप कर्म्मका सहारा नहीं लिया है, अग्निहोत्र आदि कर्म्मोंके अनुष्ठानमें सदा रत रहते हैं; जिनके मनके सङ्कल्प पूर्ण रीतिसे सिद्ध हुए हैं। पवित्र ज्ञानमें निश्चय हुआ है; जिन लोगोंमें क्रोध, असूया, अहङ्कार और मत्सरता नहीं है; ज्ञानके उपाय श्रवण, मनन और निदिध्यासनमें जिनकी निष्ठा है; जन्म, कर्म्म और विद्या, ये तीनों ही जिनके पवित्र हैं, जो सब प्राणियोंके हितमें रत हैं, वेही सत्पात्र हैं; उन्हें ही दान करनेसे धनकी सार्थकता हुआ करती है।

पहिले समयमें जनक आदि राजा और याज्ञवल्क्य आदि बहुतेरे ब्राह्मण गृहस्थ होके भी निज कर्म्मोंका समादर करते हुए विधिपूर्व्वक योगके अनुष्ठानमें नियुक्त थे। वे सब भूतोंमें समदर्शी सरलतायुक्त, सन्तुष्ट और ज्ञाननिष्ठ थे, धर्म्म और धर्म्म फल सत्य सङ्कल्पत्व आदि उन लोगोंको प्रत्यक्ष दीखते थे। वे लोग पवित्र और निरुपाधिक ब्रह्ममें श्रद्धावान् थे; वे लोग पहले चित्तशुद्धि करके व्रताचरण करते थे। कृच्छ्रकाल और दुर्गम स्थलमें भी सब कोई मिलके धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, वही उन लोगोंका परम सुख था। उन लोगोंको किसी प्रकार प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं थी, वे लोग सत्य धर्म्मको अवलम्बन करके अत्यन्त तेजस्वी हुए थे; विषय बोध करानेवाली बुद्धिसे अनुरुद्ध नहीं होते थे, धर्म्म छल, और वञ्चना आदि नहीं जानते थे; वे सब कोई इकट्ठे होकर अहिंसामय धर्म्मका अनुष्ठान करते थे, उन लोगोंके लिये कदाचित् कोई प्रायश्चित्त विहित नहीं था; क्यों कि जो लोग वैसी रीतिसे निवास करें, उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है; मैंने ऐसा सुना है कि दुर्व्वल और असमर्थ पुरुषोंके ही लिये प्रायश्चित्त विहित हुआ है।

इस ही भांति अनेक प्रकारके यज्ञ करनेवाले प्राचीन ब्राह्मण तीनों वेदोंकी अनुशीलन करते हुए वृद्ध हुए हैं, पवित्रता और सच्चरित्रताके सहारे यशस्वी हुए हैं, तथा नित्य यज्ञ करते हुए आशाबन्धन बिमोचन किये हैं, उन ज्ञानवान् ब्राह्मणोंके यज्ञ और वेदोक्त कर्म्म आगमके अनुसार निर्व्वाहित हुआ करते हैं; जिन लोगोंके काम क्रोध वशीभूत हुए हैं, वे दुस्तर कर्म्मोंको किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें सब शास्त्र और समस्त सङ्कल्प यथा समय फलित होते हैं। जो लोग निज कर्म्मोंसे विख्यात् और स्वभावसे ही पवित्र चित्तवाले हैं, उन सरल, शमनिरत, निज कर्म्मोंको विधिपूर्व्वक करनेवाले योगियोंके सब कर्म्म अनन्त ब्रह्ममें अर्पित हुआ करते हैं, हमलोगोंकी शाश्वती श्रुति इसे प्रतिपादन करती है। वैसे अदीन स्वभाववाले दुष्कर कर्म्मशील निज कर्म्मसे सम्पूर्ण काम मनुष्योंकी तपस्या ही अविद्याको निवर्त्तन करनेमें समर्थ होती है। जो सदाचार साधुओंके आपद्धर्म्माचारसे विभिन्न है, सावधानतासे युक्त और काम क्रोधके जरिये अनभिभूत है, जिसके बीच पहले समयमें सब वर्णोंकी समस्त जातियोंमें अपूज्य लोगोंका पूजन और पूजने योग्य पुरुषोंका अपूजन आदि कोई व्यतिक्रम नहीं था; ब्राह्मण लोग कहते हैं, सूक्ष्म धर्म्मके अनुष्ठानमें असमर्थ पुरुषोंके जरिये वह एक ही सदाचार चार प्रकारके रूपसे विभक्त होकर चारों आश्रमोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। उस अद्भुत, प्राचीन, नित्य, निश्चल सदाचारकी विधिपूर्व्वक अवलम्बन करनेसे साधु पुरुष गृहसे निकलके अर्थात् सन्न्यास धर्म्मके सहारे परम गति प्राप्त किया करते हैं। चारों आश्रमोंके बीच जो लोग ऊपर कही हुई विधिसे सदाचार अवलम्बन करते हैं, उनकी मोक्ष हुआ करती है। कोई कोई घरसे निकलके बनवासी होते हैं, कोई ब्रह्मचारी होके गृहस्थाश्रम अवलम्बन

करके अन्तमें जङ्गलका सहारा लेते हैं। उक्त सदाचारसे युक्त द्विजाति लोग मुक्त होकर ज्योतिर्म्मय शरीर धारण करके आकाशमण्डलमें निजस्थानपर स्थित तारा वा नक्षत्रोंकी भांति दीख पड़ते हैं। ज्ञानी पुरुष वैराग्यसे वेदविहित अनन्त ब्रह्मत्व पाते हैं, वैसे पुरुषोंको यदि फिर संसारमें आना पड़े तो वे प्रारब्ध-कर्म्मसे योनि-प्रवेशके निमित्त पापफल दुःखादिसे लिप्त नहीं होते। जिन लोगोंने इस ही प्रकार ब्रह्मचर्य्य करते हुए मुमुक्षु होकर आत्मनिश्चय किया है और योगयुक्त हैं, वेही यथार्थ ब्राह्मण हैं; उनसे अतिरिक्त ब्राह्मण विप्रकी आकृति मात्र अर्थात् काठके हाथीकी भांति केवल नामधारी हैं; इस ही प्रकार शुभ वा अशुभ कर्म्मही पुरुषके नामको प्रकाशित करते हैं। जिनकी चित्तवृत्ति शुद्ध हुई है, वे त्वं पदार्थका दर्शन और तत्त्वमसि वाक्यके अर्थको जाननेसे सब वस्तुओंको ही अनन्त ईश्वरमय समझते हैं, यही हम लोगोंकी शाश्वती श्रुति हैं। वासनाहीन, शुद्धस्वभाववाले मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंकी जाग्रत,स्वप्न और सुषुप्त्याभिमानो विश्व तैजस प्राज्ञोक्त चौथी अर्थात् परमात्म विषयवाली जो उपनिषत विद्या है। उस ही निमित्त धर्म्म सब वर्ण और आश्रमोंके सम्बन्धमें साधारण हुआ करता है, अर्थात् सम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधि स्वरूप धर्म्म वर्णाश्रम मात्रमें ही साधारण है। शुद्ध निरुद्धचित्तवाले ब्राह्मण तुरीय ब्रह्मको पाते हैं। सन्तोष मूल त्यागशाली पुरुषको ज्ञानका अधिष्ठान कहा जाता है; जिसमें अपवर्गप्रद, ब्रह्म साक्षात्काररूपिणी नित्यवृत्ति वर्त्तमान है, वही सम्प्रदाय परम्परासे प्रचलित यतिधर्म्म है। उक्त धर्म्म आश्रमान्तर धर्म्मसे मिश्रित हो, अथवा न हो वैराग्यके अनुसार आराध्य होता है। कल्याणके लिये परम पुरुषके समीप जो मनुष्य गमन करते हैं, उनके बीच दुर्व्वल पुरुष भी अवसन्न नहीं होते, पवित्र पुरुष ब्रह्मपदकी कामना करके संसारसे मुक्त होते हैं।

स्यूमरश्मि बोले, हे ब्रह्मन्! जो लोग प्राप्त धनसे विषयसम्भोग; दान, यज्ञ और अध्ययन करते हैं, तथा जो लोग सन्न्यास धर्म्मको अवलम्बन करते हैं; परलोकमें उनके बीच कौन पुरुष स्वर्गविजयी होता है। मैं इसे ही पूछता हूं, आप मेरे समीप इस ही विषयको यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, सब दान ही शुभ और गुण युक्त हैं, परन्तु त्याग करनेसे जो सुख होता है, उसे दान करनेवाले अनुभव नहीं कर सकते। त्यागशील पुरुष अनेक दृष्ट सुख लाभ करते हैं, इसे तुम भी अनुभव करते हो।

स्यूमरश्मि बोले, आप गृहस्थ होके भी ज्ञाननिष्ठ हैं, कर्म्मकाण्ड विषयमें भी निश्चय किये हैं; परन्तु आश्रममात्रमें ही निष्पत्तिकालमें एक ही मोक्ष फल वर्णित हुआ करता है। ज्ञान और कर्म्मकी तुल्य प्रधानता अथवा प्रधान और निकृष्ट भावसे कुछ विशेषता नहीं दीख पड़ती; इसलिये आप इस विषयको विधि पूर्व्वक मेरे निकट यथावत् वर्णन करिये।

कपिल मुनि बोले, कर्म्मसे स्थूल और सूक्ष्म शरीर शोधित हुआ करता है। ज्ञान ही मोक्षका साधन है, सब कर्म्मोंके सहारे चित्तके दोष दूर होनेपर ब्रह्मानन्द स्वरूप प्रीतिज्ञानमेंही निवास किया करती है। सब प्राणियोंमें दयारूपी अनृशंसता क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य वचन, सरलता, अद्रोह, अनभिमान, लज्जा, तितिक्षा और कर्म्मसे उपरति, येही ब्रह्म प्राप्तिके उपाय हैं; ज्ञानी लोग इस ही उपायके सहारे परमपद पाते हैं। विद्वान् पुरुष मन ही मन इस ही प्रकार कर्म्म निश्चय मालूम करे; सब भांतिसे शान्त स्वभाव, पवित्र चित्त, ज्ञाननिष्ठ और सन्तोष युक्त ब्राह्मणोंकी जो गति मिलती है, उसे ही परमगति कहा जाता

है, जिसमें परम गतिका लक्षण निरूपित हुआ है, वही वेदोंसे जानने योग्य कर्म्म ब्रह्म-स्वरूप है, कर्म्मके अनुष्ठान और ब्रह्मज्ञान लाभ करके भी जो लोग निरहङ्कारस्वरूपसे दीखते हैं, पण्डित लोग उन्हें ही वेदज्ञ कहते हैं; उनके अतिरिक्त मनुष्य भाथी नामक चर्म्म कोष स्वरूप है, अर्थात् वे लोग केवल सांस लेते और छोड़ते हैं। वेदवित् पुरुष जानने योग्य सब विषयोंको ही जानते हैं, वेदमेंही समस्त ज्ञेय विषय प्रतिष्ठित हैं; वर्त्तमान, अतीत और अनागत, सब विषयोंकी ही निष्पत्ति वेदमें विहित हुई है। यह दृश्यमान् जगत् प्रतीति कालमें वर्त्तमान रहता है, और वाधकालमें इसका अभाव होता है, अर्थात् ज्ञानवान् मनुष्योंके निकट प्रतीयमान जगत् मायानगरकी भांति असत् है, और अज्ञानियोंके निकट यह यथार्थमें असत् होनेपर भी वज्रपिञ्जरेकी भांति दृढ़ हुआ करता है। तत्वज्ञ पुरुषोंके समीपमें यह परिदृश्यमान् सब विषय ही सत्, असत् और निर्व्विशेष सविशेष लय स्थान सब शास्त्रोंमें ही यह निष्पत्ति निरूपित हुई है। क्षेत्र, आराम, गृह-पशु, पत्नी, गृह पुत्र, शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहङ्कार पर्य्यन्त परित्यक्त होनेपर निर्व्विकल्प समाधि अवस्थामें पूर्णरीतिसे आत्मदर्शन हुआ करता है, यह वेदवाक्यसे निश्चित हुआ है। मनुष्योंके जो एक सौ आनन्द है, गन्धर्व्वोंका वह एक ही आनन्द है, इत्यादि क्रमसे सौगुणा वर्द्धमान् ब्रह्मानन्दमें अकामहत श्रोत्रियको जो आनन्द होता है, वही आनन्द स्वरूप सन्तोष अपवर्गोंके अनुगत और प्रतिष्ठित होरहा है, जो अबाधित सत्य स्वरूप अधिष्ठानत्व निबन्धन है, जो मूर्त्तामूर्त्त प्रपञ्चात्मक है, जो सबके आत्म स्वरूपसे विदित और स्थावर जङ्गम शरीरोंमें तदात्म-निबन्धनसे जानने योग्य है, जो दुःखरहित सुख स्वरूप है, जो सबसे श्रेष्ठ मङ्गलमय है, और जिससे अव्यक्तकी उत्पत्ति हुई है, वही अपरिणामी परब्रह्म है। तेज अर्थात् इन्द्रिय बिजयकी सामर्थ क्षमा अर्थात् बुराई करनेवाले पुरुषके विषयमें भी क्रोध न करना, शान्ति अर्थात् निष्कामत्व निबन्धन सब कार्य्योंसे उपरति, ये तीनों ही शुभ और अनामय हैं अर्थात् दुःखसे रहित सुख प्राप्तिके हेतु हैं, जो लोग बुद्धिके सहारे देखते हैं, वेही बुद्धि नेत्रवाले पुरुषोंके उक्त क्षमा तेज और शान्तिके जरिये अज्ञान दूर होने पर आकाशकी भांति आसक्ति रहित अकृत्रिम जिस सनातन ब्रह्मको पाते हैं, ब्रह्मवित्से अभिन्न उस परब्रह्मको नमस्कार करता हूं।

२६९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह! वेदोंमें धर्म्म, अर्थ और काम, ये तीनों विषय वर्णित हैं, तिसके बीच कौनसे विषयका लाभ होना उत्तम है आप मेरे समीप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, पहले समयमें कुण्डधारने प्रीतिपूर्व्वक भक्तके निमित्त जो उपकार किया था, इस विषयमें वही इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं। किसी निर्द्धन ब्राह्मणने फलकी कामनासे "धर्म्म करूंगा" इस ही प्रकार चिन्ता की थी। अनन्तर धर्म्म भी धनसाध्य है, ऐसा बिचार करके यज्ञके लिये धनकी इच्छासे घोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ। अन्तमें वह दृढ़निश्चय करके देवताओंकी पूजा करने लगा, परन्तु देवपूजा करके भी अभिलषित धन न पाया। अनन्तर उसने सोचा, कि ऐसा भी कोई देवता है, जो मनुष्योंसे जड़ीकृत न हुआ हो और जो शीघ्र ही मेरे ऊपर प्रसन्न हो सके। ब्राह्मण चित्त स्थिर करके इस ही प्रकार चिन्ता कर रहा था, उस ही समय देवताओंके अनुचर कुण्डधार नाम जलधरको अपने समीपमें स्थित देखा। उस महाबाहु कुण्डधारको देखते

ही उसे भक्ति उत्पन्न हुई, सोचा कि यही मेरे कल्याणका उपाय करेगा ; क्योंकि इसका रूप कल्याणकारी बोध होता है। ऐसा सोचके वह अकेला उस देवके निकट जाके बोला, यही मुझे शीघ्र ही बहुतसा धन दान करेगा। अनन्तर ब्राह्मण अनेक प्रकारसे माला, गन्ध और धूप आदि बहुतसी पूजाकी सामग्रियोंसे जलधरकी पूजा की। थोड़े ही समयके बीच जलधर सन्तुष्ट होकर ब्राह्मणके उपकारके विषयमें अत्यन्त तत्पर होकर यह वचन बोले, कि ब्रह्महत्या करनेवाले, मद्य पीनेवाले, चोर और भग्नव्रती पुरुषोंकी निष्कृतिके विषय साधुओंके जरिये विहित हुए हैं; परन्तु कृतघ्न पुरुषोंकी किसी प्रकार भी निष्कृति नहीं है। आशाका पुत्र धर्म्म, असूयाका पुत्र क्रोध और निष्कृतिके भी लोभ नामक पुत्र है; परन्तु कृतघ्न लोग पुत्रलाभके अधिकारी नहीं होते। अनन्तर उस ब्राह्मणने उस समय कुशकी शय्यापर सोनेसे कुण्डधारके प्रभावसे सब भूतोंको देखा; तपस्या इन्द्रियविजय और भक्तिवशसे भोगवर्ज्जित वह शुद्धचित्तवाला ब्राह्मण रात्रिमें कुण्डधारके विषयमें भक्तिका निदर्शन देखा। हे युधिष्ठिर! उसने उस समय देखा कि "महाभाग महातेजस्वी माणिभद्र वहांपर देवआज्ञासे याचकोंको फल बांट रहे हैं"। उसने देखा, कि वेही देवता लोग शुभकर्म्म करनेवाले पुरुषोंको राज्य तथा धन आदि दान कर रहे हैं और अशुभ कर्म्म करनेवालोंसे पहलेके दिये हुए राज्य आदि प्रत्याहरण कर रहे हैं। हे भरतकुलतिलक! अनन्तर महातेजस्वी कुण्डधार यचोंके सम्मुख देवताओंके समीप पृथ्वीपर गिरे। देवताओंके वचनके अनुसार महात्मा माणिभद्र पृथ्वीपर गिरे हुए कुण्डधारसे बोले, हे कुण्डधार! क्या कामना करते हो?

कुण्डधार बोले, यह ब्राह्मण मेरे ऊपर अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ है; इसलिये देवता लोग यदि मुझपर प्रसन्न हुए हों, तो इसके ऊपर कुछ कृपा करें, मैं यही कामना करता हूं, और उसके सिद्ध होनेसे मैं सुखी होऊंगा।

अनन्तर माणिभद्र देवताओंके वचनके अनुसार महातेजस्वी कुण्डधारसे फिर कहने लगे। माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार! उठो, उठो तुम्हारा कल्याण हो; तुम कृतकृत्य और सुखी होगे, यह विप्र यदि धनार्थी हुआ हो, तो इसे धन दान करूं। यह ब्राह्मण तुम्हारा सखा है, इससे यह जितना धन मांगे, वह असंख्य होनेपर भी देवताओंकी आज्ञासे मैं इसे वही दूंगा, हे युधिष्ठिर! कुण्डधार मनुष्य जीवन अत्यन्त चञ्चल और अस्थिर हैं, ऐसा समझकर ब्राह्मणकी तपस्याके निमित्त मनोयोगी हुए।

कुण्डधार बोले, हे धन देनेवाले! मैंने ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं की है, मैंने अनुगत भक्तके ऊपर कृपा की है, इसलिये दूसरी प्रकारकी कुछ अभिलाष करता हूं, रत्नपूरित पृथ्वी अथवा बहुतसे रत्न सञ्चय की मैं भक्तके लिये इच्छा नहीं करता हूं, यह धार्म्मिक हो, यही मेरा अभिलाष है; इसकी बुद्धि धर्म्ममें रत हो, यह धर्म्मको उपजीव्य करके जीवनका समय बितावे और यह धर्म्मको ही प्रधान जानके धर्म्मात्मा हो, मेरा यह अनुग्रह सफल होवे।

माणिभद्र बोले, राज्य और विविध सुख ही धर्म्मके फल हैं, इससे यह शारीरिक क्लेशसे रहित होके सदा उन सब फलोंको भोग करे।

भीष्म बोले, महायशस्वी कुण्डधारने बार बार धर्म्महीके लिये प्रार्थना की, क्योंकि निष्काम धर्म्म ही काम और अर्थसे उत्तम है, अनन्तर देवता लोग उस कुण्डधारके ऊपर प्रसन्न हुए।

माणिभद्र बोले, हे कुण्डधार! सब देवता लोग तुम्हारे और इस ब्राह्मणके ऊपर प्रसन्न हुए हैं, यह ब्राह्मण धर्म्मात्मा होगा और

इसकी मति धर्म्ममें ही अविचलित भावसे स्थित रहेगी। हे युधिष्ठिर! अनन्तर जलधर दूसरे पुरुषके लिये अत्यन्त दुर्लभ इच्छानुसार वर पाके प्रसन्न और कृतकार्य्य हुए, द्विज सत्तम भी अपने समीपमें सूक्ष्म चीरवस्त्र देखकर निर्वेद-युक्त हुए।

ब्राह्मण बोला, मैं जब धर्म्मज्ञानसे अनभिज्ञ हूं, तब और कौन पुरुष धर्म्मज्ञ होगा। इस-लिये मैं धर्म्मके जरिये जीवन व्यतीत करनेके लिये बनमें गमन करूं, वही मेरे विषयमें कल्याणकारी है।

भीष्म बोले, हे महाराज! वह द्विजवर निर्वेद होकर देवताओंकी कृपासे उस समय बनमें जाके घोर तपस्या करने लगा; क्रमसे वायुभक्षी होकर अनेक वर्ष बिताया; तौभी उसका जीवन नष्ट न होनेसे वह अद्भुत बोध हुआ। बहुत समयतक धर्म्ममें श्रद्धावान् और उग्र तपस्यामें वर्त्तमान रहनेसे उसे दिव्य दृष्टि उत्पन्न हुई, ऐसी बुद्धि प्रकट होनेपर उसने बिचारा, कि अब मैं प्रसन्न होकर यदि किसीको धन दान करूं, तो मेरा वचन मिथ्या न होगा। अनन्तर वह प्रसन्न बदन होकर फिर तपस्या करने लगा। जो वह केवल अभि-ध्यान किया करता था। सिद्ध होके बार बार उसहीकी चिन्ता करने लगा, कि मैं प्रसन्न होकर यदि किसी पुरुषको राज्य दान करूं, तो वह शीघ्र ही राजा होजाय, मेरा वचन कदापि मिथ्या न होगा। हे भारत! उस ब्राह्मणकी तपस्याके योगसे सुहृदतासे आक-र्षित होकर कुण्डधारने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया, अनन्तर द्विजवरने सहसा कुण्डधारको समागत देखके विस्मित होकर उन्हें आलिङ्गन कर विधिपूर्व्वक पूजा की। उस समय कुण्डधार बोले, हे द्विजवर! तुम्हें उत्तम दिव्य नेत्र प्राप्त हुआ है, इसलिये तुम इस ही नेत्रसे राजाओंकी गति और सब लोकोंको देखो, तब ब्राह्मण कुण्ड-धारके बचनके अनुसार दूरसे ही दिव्य नेत्रके सहारे सहस्रों राजाओंको नरकमें डूबते देखा।

कुण्डधार बोले, तुम इच्छानुसार मेरी पूजा करके यदि दुःख पाते हो, तब मैंने तुम्हारा क्या किया। तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा ही क्या हुई; देखो देखो, तुम फिर विशेष रूपसे अव-लोकन करो, मनुष्य किस लिये अभिलषित वस्तुकी कामना करता है; स्वर्गका द्वार सबके ही लिये अवरुद्ध होरहा है, विशेष करके मनु-ष्यको वहां प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

भीष्म बोले, अनन्तर उस ब्राह्मणने काम, क्रोध, निद्रा, तन्द्रा, लोभ, मद और आलसको दूर करके कितने ही पुरुषोंको स्थित देखा। उस समय कुण्डधार बोले, इन्हीं सब लोगोंके जरिये स्वर्गका द्वार संरुद्ध होरहा है, क्यों कि मनुष्योंसे देवताओंको भय हुआ करता है। उक्त द्वारको रुद्ध करनेवाले देव वाक्यके अनु-सार सब प्रकारसे विघ्न उत्पन्न करते हैं; देव-ताओंके जरिये बिना अनुज्ञात हुए कोई पुरुष धार्म्मिक नहीं होता, इस समय तुम तपस्याके सहारे राज्य और धनदान करनेमें समर्थ हुए हो।

भीष्म बोले, अनन्तर वह धर्म्मात्मा ब्राह्मण सिर झुकाके कुण्डधारके चरणपर गिरा और उनसे कहा, आपने मेरे ऊपर बहुत ही कृपा की है। पहले मैंने काम और लोभके वशमें होकर आपके स्नेहको न जानके जो असूया की है, आप मेरे उस अपराधको क्षमा करिये, कुण्डधारने उस द्विजवरसे "मैंने क्षमा किया," ऐसा कहके दोनों भुजाओंसे उसे आलिङ्गन करके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। ब्राह्मण भी उस समय कुण्डधारकी कृपासे तपस्याके जरिये सिद्धि प्राप्त करके सब लोकोंमें बिचरने लगा। उसने आकाश मार्गमें गमन, सङ्कल्पित विषय सिद्धि और धर्म्म शक्ति तथा योगसे जो परमगति मिलती है, वह सब प्राप्त की थी। देवता, ब्राह्मण साधु लोग, यक्ष, मनुष्य और

चारण गण इस लोकमें धार्म्मिकोंका ही सत्कार किया करते हैं। धनवाले तथा भोगाभिलाषी लोगोंका कोई कभी भक्तिके सहित सत्कार नहीं करता। तुम्हारी बुद्धि जब धर्म्ममें रत हुई है, तब देवता लोग तुम्हारे ऊपर अवश्य ही भलीभांति प्रसन्न हैं, धनमें सुखका लेशमात्र नहीं है, धर्म्म ही परम सुख हुआ करता है।

२७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अनेक प्रकारके यज्ञ और तपस्याका फल चित्तशुद्धि अथवा ईश्वर प्रीति है, इसलिये धर्म्म वा स्वर्ग फलके निमित्त विनियुक्ति यज्ञ कैसा है।

भीष्म बोले, यज्ञके लिये जो उञ्छवृत्ति ब्राह्मणका प्राचीन इतिहास नारद मुनिके जरिये वर्णित हुआ था, इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप उसे ही वर्णन करता हूं।

नारदमुनि बोले, धर्म्म प्रधान विदर्भ राज्यमें उञ्छवृत्ति नाम कोई ब्राह्मण था; वह यज्ञरूपी भगवान् विष्णुकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त समाहित हुआ। उस समय सावां धान्य भक्षणीय था, सुर्य्यपर्णी और सुवर्चला शाक स्वाभाविक तीते और विरस होनेपर भी उसके तपोप्रभावसे स्वादिष्ट हुए थे। हे शत्रु तापन! उसने बनके बीच सब प्राणियोंकी अहिंसाके जरिये सिद्धिलाभ करके फल मूलके सहारे स्वर्ग साधन यज्ञ किया था। पुष्करमालिनी नाम उसकी एक साध्वी भार्य्या थी; वह सदा व्रत करनेसे अत्यन्त कृशित हुई थी; पतिको हिंसामय यज्ञ करता हुआ जानके वह यज्ञकी कुछ भी अनुकूलता न करनेसे स्वामीके जरिये यज्ञपत्नी रूपसे यज्ञ स्थानमें लायी गई, उस समय पत्नी पतिके शापभयसे अत्यन्त डरकर उसके स्वभावकी अनुवर्त्तिनी हुई। स्वयं गलित मयूर पुच्छसे उसका वस्त्र विस्तारित था, यज्ञ कामना न रहनेपर भी पतिकी आज्ञाके वशमें होके उसने उस समय यज्ञ किया था; सद्‌ंशमें उत्पन्न होकर यदि कोई भार्य्याका अनादर कर स्वयं यज्ञ करे, तो वह अधार्म्मिक होता है, इस ही लिये उन्होंने सपत्निक होकर यज्ञ किया था। उस बनमें निकटमेंही सहवासिक नाम एक मृग था। वह उस उञ्छवृत्तिके निकट आके बोला तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म्म किया है, मन्त्र और अङ्गहीन होकर यदि यह यज्ञ विकृत हो, तो तुम मुझे अग्निमें डालकर आनन्दित होके स्वर्गमें जाओ। अनन्तर सवितृमण्डलकी अधिष्ठात्री देवी सावित्री उस यज्ञमें स्वयं प्रकट होकर "मेरे निमित्त इस पशुको अग्निमें होम करो" ऐसा बचन कहनेपर उस ऋषिने उन्हें उत्तर दिया; "मैं सहवासीका बध न कर सकूंगा" सावित्री ऐसा उत्तर पाके निवृत्त होकर यज्ञकी अग्निमें प्रविष्ट हुई। बोध होता है, यज्ञमें कुछ विघ्न है, वा नहीं, उसे जाननेके लिये उन्होंने रसातलमें प्रवेश किया। तब मृग फिर उस बद्धाञ्जलि सत्य संज्ञक उञ्छवृत्ति ऋषिके समीप अपनेको अग्निमें होम करनेकी प्रार्थना की। सत्य ऋषिने हरिनका शरीर स्पर्श करके उसे गमन करनेकी आज्ञा दी। हरिन उनकी आज्ञाके अनुसार आठ पग जाके फिर निवृत्त होके बोला, हे सत्य! तुम्हारा मङ्गल हो, तुम मेरी हिंसा करो, मैं मरके सद्गति पाऊंगा; मैं तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूं। उससे तुम रमणीय अप्सराओं और महानुभाव गन्धर्व्वोंकी विचित्र विमानोंपर देखो। अनन्तर सत्य-संज्ञक ऋषि 'मुझे ऐसा ही सुख हो' इस ही प्रकार स्पृहयालु नेत्रसे पशुओंके सहित यजमानोंकी स्वर्ग-गतिको बहुत समय तक देखकर और हरिनको स्वर्गाभिलाषी समझके 'हिंसा करनेसे ही स्वर्गवास होगा,' ऐसा निश्चय किया। धर्म्मने किसी कारणसे अनेक

वर्षतक हरिनका रूप धरके उस बनमें वास किया था। उन्होंने उसकी ही निष्कृतिके लिये आत्माको मृगत्वसे मोचन किया, नहीं तो हिंसा कभी यज्ञकी समीचीन विधि नहीं है। "पशु बध करके स्वर्ग लाभ करूंगा।" ऋषिके ऐसे अभिप्रायसे ही महत् तपस्या पूर्ण रीतिसे नष्ट हुई; इसलिये हिंसा कदापि यज्ञ विषयमें हित कारिणी नहीं है। अनन्तर भगवान् धर्म्मने स्वयं उस ऋषिकी यज्ञ याजन कराया, ऋषि भी तपस्याके सहारे हिंसामय यज्ञमें अनभिला-षिणी पुष्करधारिणी पत्नीके सहित परम समा-धिको प्राप्त हुए; अहिंसामय धर्म्म ही सब फलोंको देनेवाला है, हिंसा-धर्म्म स्वर्गप्रद रूपसे हितकर मात्र है। ब्रह्मवादी पुरुष जिस धर्म्मका आचरण करते हैं, मैंने तुम्हारे निकट उस ही सत्य धर्म्मका विषय वर्णन किया।

२७१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार पापात्मा होता है। किस भांति धर्म्मा-चरण करता है। किससे निर्वेद लाभ करता है, और किस तरहसे ही मोक्ष लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे भरत कुलतिलक! सब धर्म्म ही तुम्हें विदित है, इस केवल मर्य्यादाके निमित्त तुम प्रश्न करते हो; इसलिये निर्व्वेदके सहित मोक्ष, पाप और धर्म्मके विषयको सुनो। शब्दादि विषय-पञ्चकके अर्थको जानके मनुष्य इच्छानुसार उसमें प्रवृत्त होता है, उन सब विषयोंके प्राप्त होनेपर उसमें काम अथवा द्वेष उत्पन्न होता है। अनन्तर मनुष्य विषयके निमित्त यत्नवान् होकर महत् कर्म्म आरम्भ करता है, और अभिलषित रूप और गन्धोंको बार बार सेवन करनेकी इच्छा किया करता है। क्रम क्रमसे उसमें राग द्वेष और मोहकी उत्पत्ति होती है। जो पुरुष लोभ मोहमें अभिभूत और राग द्वेषमें आसक्त हुआ है; उसकी बुद्धि धर्म्ममें प्रविष्ट नहीं करती, वह छल पूर्व्वक धर्म्माचरण किया करता है, कपटताचरण पूर्व्वक धर्म्मानुष्ठान करता है, और कपटतासे ही धन प्राप्त करनेकी इच्छा किया करता है। हे कुरुनन्दन! कपटताके जरिये धनप्राप्ति सिद्ध होनेसे उसहीमें बुद्धि निविष्ट करता है; पण्डितों और सुहृदोंके निवारण करने पर भी पित्रादि द्रोहरूपी पापाचरण करनेकी इच्छा किया करता है; अहार और व्यवहार विषयमें लज्जा छोड़के सुखी होता है; इस ही प्रकार न्याया-नुगत विधि बोधित उत्तर देनेमें लज्जित नहीं होता। हे भारत! तैसे मनुष्योंके राग मोह जनित कायिक बाचिक, और मानसिक तीनों प्रकारके अधर्म्म बर्द्धित हुआ करते हैं। वह सदा दूसरेके अनिष्टकी चिन्ता किया करता है, जिससे दूसरेका अनिष्ट हो, वैसा ही वचन कहता है, और दूसरोंकी बुराई किया करता है। साधु पुरुष उस अधर्म्ममें प्रवृत्त मनुष्यके दोषोंको देखते हैं, और उसके समान पापाचारी पुरुष वैसे मनुष्यके सहित बन्धुतावस्थन किया करते हैं; ऐसा पापाचारी पुरुष जब इस लोक-मेंही सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, तब परलोकमें उसे सुख कहां है; यहांतक जो कुछ कहा, उसे पापात्माका लक्षण जानो। अब धर्म्मात्माका लक्षण कहता हूं, उसे मेरे समीपमें सुनो। जो लोग दूसरोंके हितकर कार्य्योंको धर्म्म समझते हैं, वह कल्याण लाभ करते और कल्याणकारी धर्म्मके सहारे अभि-लषित गन्तव्य स्थानमें गमन किया करते हैं। जो लोग बुद्धिसे पहले ही ऊपर कहे हुए दोषोंको अवलोकन करते हैं, और सुख दुःखके विचारमें चतुर होकर साधुओंकी सेवा किया करते हैं; उन्हें साधु सदाचार और अभ्यास निबन्धनसे ज्ञान, बुद्धि तथा धर्म्ममें रति होती

है, और वे लोग धर्म्मको ही उपजीव्य करके जीवन व्यतीत किया करते हैं। अनन्तर वे धर्म्मसे धन प्राप्त करनेमें मन लगाते हैं और जिसमें सब गुण देखते हैं, उसहीका मूल सींचा करते हैं; इस ही प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य धर्म्मात्मा होते और साधु मित्र लाभ करते हैं; वे लोग मित्र और धन लाभ निबन्धनसे इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित होते हैं।

हे भारत! शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध विषयमें मनुष्य जो संकल्प सिद्धि लाभ करता है, उसे ही पण्डित लोग धर्म्मका फल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! वैसे मनुष्य धर्म्म फल प्राप्त करके हर्षित नहीं होते, वह तृप्त न होकर ज्ञाननेत्रके सहारे वैराग्य लाभ करते हैं। प्रज्ञावत् मनुष्य जिस समय काममें और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धमें अनुरक्त होते हैं, उस समय उनका चित्त चिन्ताके वशमें नहीं होता। वे कामसे रहित होते हैं। परन्तु धर्म्मको परित्याग नहीं करते। वे सब लोकोंको नाशमान देखके धर्म्मफल स्वर्गादिके परित्याग विषयमें यत्नवान् होते हैं। अनन्तर वे लोग उपायके अनुसार मोक्षके लिये अनुष्ठान करके धीरे धीरे निर्व्वेद लाभ करते और पापयुक्त कर्म्म परित्याग किया करते हैं। इस ही प्रकार मनुष्य धर्म्मात्मा होते और परम मोक्ष पाते हैं। हे तात भारत! तुमने जो पाप धर्म्म, मोक्ष और निर्व्वेदका विषय मुझसे पूछा था, वह सब मैंने तुम्हारे समीप कहा। हे युधिष्ठिर! इसलिये तुम सब अवस्थामें ही धर्म्ममें प्रवृत्त रहना। हे कौन्तेय! जो लोग धर्म्म-पथमें निवास करते हैं, उन लोगोंको शाश्वती सिद्धि प्राप्त होती है।

२७२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने कहा है, कि उपायके अनुसार मोक्ष होती है, अनुपायके जरिये मोक्ष नहीं होती; परन्तु वह कौनसा उपाय है, उसे मैं विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पापरहित महाप्राज्ञ! तुम निपुण भावसे सदा जिस उपायके जरिये मोक्षकी खोज किया करते हो, तुममें ही उसका निदर्शन समुचित होता है, अर्थात् मोक्षके उपाय विषयमें निज बुद्धि ही साक्षी देती है। घट बनानेके समय जैसी बुद्धि होती है, घट उत्पन्न होने पर वह नहीं रहती अर्थात् साध्य विषयमें चिकिर्षा बुद्धि उत्पन्न होती है; परन्तु सिद्धवस्तु ब्रह्मविषयमें आवरणका अपगम होनेपर ज्ञानमात्र स्थित रहता है; इस लिये मोक्ष धर्म्म विषयमें प्रकाशकी भांति वस्तुतत्वके अभिव्यञ्जक शम दम आदि निवृत्ति धर्म्ममें दूसरे कोई प्रवृत्ति धर्म्म कारण नहीं होते। यज्ञ आदि कर्म्म निष्काम पुरुषोंकी चित्त शुद्धि करके निवृत्ति-धर्म्मके हेतुमात्र हुआ करते हैं। पूर्व्व-समुद्रगामी पथ कभी पश्चिम समुद्रमें गमन नहीं करता; इसलिये तुम एकमात्र मोक्षके ही मार्गको विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप सुनो। धीर पुरुष क्षमाके जरिये क्रोधको नष्ट करे, संकल्प वर्ज्जित होके कामको त्यागे और आलस त्यागके सात्विक धर्म्म भगवद्ध्यान आदिसे निद्राको नष्ट करनेमें समर्थ होवे; सावधानताके जरिये लोकापवाद भयको रक्षा करे; 'त्वं' पदार्थके अनुशीलनसे श्वास निरोध करे और धैर्य्यसे इच्छा, द्वेष और वनिताभिलाषको निवृत्त रखे; तत्ववित् पुरुष तत्वाभ्यासके जरिये भ्रम, संमोह और अनेक कोटिके संशयोंको परित्याग करे और ज्ञान अभ्यासके सहारे निद्रा और प्रतिभा अर्थात् अननुसन्धान और अन्यानुसन्धान परिवर्ज्जित करे; दाह आदिसे अनुत्पादक हित, जीर्ण और परिमित भोजन आदिके जरिये श्लेष्म अजीर्ण प्रभृति उपद्रव तथा ज्वर वा अतीसार आदि रोगोंको जय करे; सन्तोष,

हेतु, लोभ, मोह और तत्वदर्शन अर्थात् सब विषयोंके अनर्थक रूप दर्शन निबन्धन विषयोंको जय करे, करुणासे अधर्म और प्रतिपालनके जरिये धर्म्मको जय करे। उत्तरकालके जरिये आशाको जीते और अभिलाष त्यागकर अर्थको जय करनेमें प्रवृत्त होवे। धीर पुरुष विषयोंकी अनित्यताके निमित्त स्नेह, वायु निग्रहके जरिये क्षुधा, करुणासे निज चित्तकी समुन्नति, परितोषसे तृष्णा, उद्योगसे आलस और वेदमें विश्वास करके विपरीत तर्कोंको जय करे। मौनावलम्बनसे बहुत बोलना और पराक्रमके जरिये भय परित्याग करे, बुद्धिसे वचन और मनको स्थिर करे; ज्ञाननेत्र अर्थात् शुद्ध 'त्वं' पदार्थके बोधसे उस बुद्धिको संयम करे। ज्ञान अर्थात् शुद्ध "त्वं" पदार्थको आत्मबोधके जरिये अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है ऐसे ज्ञानके जरिये संयत करे और बुद्धिवृत्तिको परम चैतन्य प्रकाशके जरिये नियमित करे, अर्थात् इन्द्रियोंको मनमें मनको बुद्धिमें बुद्धिको 'त्वं' पदार्थ में, त्वं पदार्थको ब्रह्माकार वृत्तिमें और उस वृत्तिको विशुद्ध आत्मामें क्रमसे लीन करके निज रूपमें निवास करे। ऋषि लोग जो पञ्चयोग दोषोंको जानते हैं, उन्हें नष्ट करके प्रशान्त और पवित्र कर्म्मवाले मनुष्योंको इसे अवश्य जानना चाहिये।

योग साधनके लिये यत-वाक्य होके काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न, इन पाचों दोषोंको त्यागके परमात्माकी सेवा करे; ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, वचन, लज्जा, सरलता, क्षमा, पवित्रता, अहारशुद्धि और इन्द्रिय-संयम, इन सबसे तेजकी वृद्धि तथा पापका नाश होता है। जो उक्त विधिके अनुसार आचरण करते हैं, उनके सब संकल्प सिद्ध होते और विज्ञानमें प्रवृत्ति हुआ करती है। वे पापरहित, तेजस्वी लघु भोजन करनेवाले जितेन्द्रिय मनुष्य काम क्रोधको वशमें करके ब्रह्मपदकी प्राप्तिके लिये अभिलाष करें। वेदान्त श्रवण आदि अभ्यास निबन्धनसे समुद्भूत, वैराग्यसे अवङ्गले सन्तोष और क्षमाके जरिये दृढ़ता जनित काम क्रोधका त्याग परिपूर्ण कामनाके हेतु अदीनता, दर्प और अहंकारहीनता, निर्भयत्व निबन्धनसे अनुद्वेग और सदा किसी निर्दिष्ट स्थानमें अनवस्थिति, येही मोक्षके मार्ग हैं; ये मार्ग प्रसन्न निर्म्मल और पवित्र हैं, और कामना वा अकामनासे शरीर मन तथा वचनके नियमोंको भी मोक्षका मार्ग कहा जाता है। मोक्ष साधनमें प्रवृत्त पुरुषको निष्काम योग अवश्य करना चाहिये।

२७३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, असित देवल और नारदके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्योंमें मुख्य वृद्ध देवल मुनिको सुखसे बैठा हुआ जानकर नारद मुनिने जीवोंकी उत्पत्ति और लयका विषय पूछा।

नारदमुनि बोले, हे ब्रह्मन्! यह दृश्यमान् स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलयके समय किसमें जाके लीन होता है। आप मेरे निकट उसे ही कहिये।

असित मुनि बोले, परमात्मा निखिल प्राणियोंकी बुद्धि-वासनासे प्रेरित होकर कर्म्मोद्भवके समय जो आकाश आदिकोंसे जरायुजादि जीवोंको उत्पन्न करता है, भूतचिन्तक मनीषी लोग उन्हें ही पञ्चभूत कहा करते हैं। अधर्म्ममें रत, अधर्म्म त्यागनेकी इच्छा करनेवाले, धर्म्मारम्भी और धर्म्ममें रत, कलि, द्वापर, त्रेता तथा सत्य संज्ञक चतुर्युगात्मक काल बुद्धिसे प्रेरित होकर पञ्च महाभूतोंसे सब जीवोंको उत्पन्न करता है। यह काल, बुद्धि और पञ्चमहाभूत, चैतन्यस्वरूप ईश्वर तथा अचेतन

प्रकृति, इन सबसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु है,—जो लोग ऐसा कहते हैं, उनके वचन अत्यन्त अलीक हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे नारद! इन पञ्च महाभूतोंको नित्य निश्चल और स्थिर जानो, ये अत्यन्त महत् तेजराशि स्वरूप हैं, काल स्वभाविक ही इनमें षष्ठमरूपसे कहा जाता है। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि इन पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कोई पदार्थ नहीं था, इसमें सन्देह नहीं है। ऊपर कहे हुए पञ्चभूतोंसे पृथक् दूसरा कुछ भी नहीं है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे कोई प्रमाण वा युक्ति अवलम्बन नहीं करते,—यह निःसन्दिग्ध है। सब कार्य्योंके अनुगत उक्त पञ्चभूत और काल जिसके कार्य्य हैं, उसे ह। असत् शब्द वाच्य जानो। पञ्च महाभूत, काल अर्थात् जीव, भावनापूर्व्वक संस्कार और अज्ञान ये अष्टभूत अनादि वा अखण्डरूपसे विद्यमान होरहे हैं; ये ही स्थावर जङ्गम सब भूतोंकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। स्थावर जङ्गम सब जीव उक्त अष्टभूतोंसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लीन होजाते हैं। उक्त भूतोंको अवलम्बन करके सब जन्तु पांच प्रकार विनष्ट हुआ करते हैं, जीवोंका शरीर भूमिमय है, कान आकाशमय है, नेत्र अग्निमय, है, वेग वायुमय है और रुधिर जलमय हुआ करता है। नेत्र, नासिका, कान, जिह्वा और त्वचा, ये पांचो इन्द्रियां इन्द्रिय विषय शब्द आदि ज्ञानके द्वारस्वरूप हैं ऐसा ऋषि लोग कहा करते हैं। देखना, सुनना, सूंघना, छूना और चखना; ये पांचो गुण पञ्च इन्द्रियोंमें युक्तिके अनुसार पांच प्रकारसे निवास करते हैं। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये पांचो गुण पञ्च इन्द्रियोंके द्वार हैं, पांच प्रकारसे इनकी प्राप्ति हुआ करती है इन्द्रियोंके सहारे रूप, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द, ये सब गुण मालूम नहीं होते; परन्तु क्षेत्रज्ञ अर्थात् विज्ञानात्मा इन्द्रियोंके जरिये इन सब गुणोंका ज्ञान किया करता है। इन्द्रियोंसे चित्त श्रेष्ठ है, चित्तसे मन उत्तम है, मनसे बुद्धि उत्तम है और बुद्धिसे क्षेत्रज्ञ परम श्रेष्ठ है। जीव पहले इन्द्रियोंके जरिये सामान्य रीतिसे पृथक् पृथक् विषयोंका ज्ञान करता है; फिर मनसे उन विषयोंका विचार करके बुद्धिसे निश्चय किया करता है। अध्यात्मविचार करनेवाले महर्षि लोग चित्त, श्रोत्रादि पांचो इन्द्रिय, मन और बुद्धि, इन आठोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं; हाथ, पैर, गुदा, मेहन और मुख, इन पांचोंको कर्म्मेन्द्रिय कहा करते हैं, इसे सुनो। जल्पना और आहार साधनके निमित्त मुखको इन्द्रिय कहा जाता है, दोनों पांव गमनेन्द्रिय हैं, दोनों हाथ कार्य्य करनेको इन्द्रिय हैं और गुदा तथा उपस्थ मल मूत्र और कामिक उत्सर्गके हेतु इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुआ करती हैं। पञ्च इन्द्रियोंके बीच बल षष्ठरूपसे माना जाता है; ज्ञान, चेष्टा और इन्द्रियोंके सब गुणोंको शास्त्रके अनुसार मैंने वर्णन किया।

जब इन्द्रियां श्रमके कारण निज कर्म्मोंसे विरत होती हैं, उस समय इन्द्रियोंके सम्यक रूपसे परित्याग निबन्धनसे मनुष्य निद्रित हुआ करते हैं; इन्द्रियोंके शान्त होनेपर यदि मन शान्त न होकर विषय सेवन करे, तो जानना चाहिये, कि उसे ही स्वप्न दर्शन कहा जाता है। जाग्रत समयके सात्विक, राजसिक और तामसिक भोगप्रद कर्म्मयुक्त कर्म्मोद्भावक सब भाव स्वप्नकालमें भी प्रकाशित हुआ करते हैं। आनन्द ऐश्वर्य्य, ज्ञान और परम वैराग्य, ये सब सात्विकी वृत्ति हैं, सतोगुण अवलम्बन करनेवाले पुरुषोंकी स्मृत वासना निमित्तीभूत उन आनन्द आदि भावोंको स्वप्न समयमें भी अवलम्बन करती है, अर्थात् सात्विक पुरुष जाग्रद्वासनाके हेतु भूत आनन्द आदिको स्वप्नकालमें भी स्मरण किया करता है। कर्म्म गतिका-अनुसारिणी वासना सात्विक, राजसिक, और ताम-

सिक जीवोंके बीच जो कोई जीव जाग्रत अवस्थामें जिस भावसे संस्थित रहते हैं, स्वप्नकालमें भी उस ही भावको स्मरण करा देती है, अर्थात् जाग्रत अवस्थामें किये हुए कर्म्मोंके संस्कार जनित वासनाके प्रभावसे स्वप्नकालमें भी उक्त सब भाव आलोचित होते हैं; इसलिये जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थामें ही तुल्य भाव हैं परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें मनके अभावसे समस्त कल्पनाका अभाव होता है, इससे उस अपुनरावृत्ति स्वभाव-नित्य सुषुप्तिको ही मुक्ति कहा जाता है।

पूर्व्वोक्त चौदह इन्द्रियों अर्थात् पञ्चकर्म्म इन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय बलात्मक प्राण, चित्त, मन, बुद्धि और सत्, रज, तमोगुण, इन सत्तरहोंको अवलम्बन करके भोक्ता जीव शरीरमें निवास करता है; अथवा शरीरधारियोंके ऊपर कहे हुए सब गुण शरीरके सहित संस्थित होते हैं; शरीरका बियोग होनेपर वे शरीरयुक्त नहीं रहते; पश्चात्तरसे यह पञ्चभौतिक शरीर पञ्चभूतोंकी समष्टिमात्र है; इसमें एकमात्र अनुभव और भोक्ता शरीरके सहित पूर्व्वोक्त अठारह गुण निवास करते हैं। उक्त उन्नीस गुण जठरानलके सहित बीस होकर पञ्चभौतिक शरीरके आश्रित रहते हैं। इन बीस गुणोंके अतिरिक्त इक्कीसवां कोई महान् पदार्थ प्राणके सहित इस शरीरको धारण करता है और उसहीके प्रभावसे शरीरका नाश हुआ करता है। जैसे घटनाशके विषयमें मुद्गर निमित्तमात्र है, पुरुष ही घट भेद किया करता है, वैसेही देह धारण वा देहनाशमें वायु निमित्त मात्र है, महान् पदार्थ ही उसका कर्त्तृपदवाच्य है। जैसे घट आदि वाह्य पदार्थ उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर विनष्ट होते हैं, वैसेही जीव पुण्य पापोंके शेष होनेपर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। कालक्रमसे फिर सञ्चित पुण्य पापके जरिये प्रेरित होकर कर्म्मसम्भव शरीरमें प्रवेश करता है। जैसे मनुष्य शीर्ण गृहसे गृहान्तरमें गमन करता है, वैसेही जीव कालि प्रेरित होकर अविद्याकाम कर्म्मके जरिये देहान्तर सिद्ध करता हुआ एक शरीरको छोड़के दूसरा शरीर धारण किया करता है। कृतनिश्चय बुद्धिमान् लोग देह सम्बन्धी मरण आदिके विषयमें शोक नहीं करते, देह और पुत्रादिकोंके सहित आत्माका सम्बन्ध न रहने पर भी भ्रमवशसे सम्बन्ध देखनेवाले मूर्ख लोग मरन आदि निबन्धनसे शोक किया करते हैं। यह जीव किसीका भी नहीं है, और इसका भी कोई नहीं है; जीव सदा शरीरमें सुख दुःख भोगते हुए अकेला ही निवास करता है। जीवकी जन्म मृत्यु नहीं होती, कालक्रमसे तत्वज्ञानके जरिये कर्म्म-फल नष्ट होने पर भी देह परित्याग करनेसे मोक्ष प्राप्त हुआ करती है। जीव पुण्य पापमय शरीर व्यतीत करते हुए कर्म्म-क्षयनिबन्धनसे शरीर नष्ट होने पर फिर ब्रह्मभाव लाभ करता है। पुण्यपाप नाशके निमित्त सांख्य ज्ञान बिहित हुआ करता है; इसलिये पुण्य-पाप नष्ट होनेपर पण्डितलोग जीवको ब्रह्मभावसे परमगति अवलोकन करते हैं।

२७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मैं अत्यन्त पापशील और निठुर हूं; क्यों कि धनके लिये पिता, भ्रातापुत्र, पौत्र स्वजन और सुहृदोंका नाश किया है। अर्थसे जो तृष्णा उत्पन्न हुआ करती है, हमने उसके बशमें होकर पाप कार्य्य किया है, इस समय उस तृष्णाको किस प्रकार निवृत्त करूं।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें जिज्ञासु माण्डव्यके निकट विदेहराजके कहे हुए इस पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहराजने कहा था, मेरा कुछ भी

नहीं है, इसीसे मैं परम सुखसे जीवन व्यतीत करता हूं; सारी मिथिला नगरीके भस्म होने पर भी मेरा कुछ न जलेगा। ब्रह्मलोक पर्य्यन्त सब समृद्ध विषय विवेकियोंको अत्यन्तही दुःख स्वरूप है, सम्बुद्धिशून्यता सदा अज्ञानी पुरुषोंको मोहित किया करती है। इस लोकमें जो कुछ कामसुख है, अथवा जो कुछ दिव्य महत् सुख देखा जाता है, वह तृष्णाक्षयजनित सुखके सोलह अंशका एक अंश भी नहीं है। काल-क्रमसे वर्द्धित गऊकी सींग जैसे वृद्धिको प्राप्त होती है, वैसेही बढ़ते हुए वित्तके सहित तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है। जिस समय जिस किसी वस्तुमें ममता उत्पन्न होती है, उसका नाश परितापका हेतु हुआ करता है। कामका अनुरोध कर्त्तव्य नहीं है, काममें रति होनी ही दुःखकी मूल है; धर्म्म और अर्थ प्राप्त होने पर उसे उपभोग करना उचित है, और कामना उपस्थित होने पर उसे परित्याग करना चाहिये। विद्वान पुरुष सब भूतोंमें अपने सहित समान उपमा धारण करें और कृतकृत्य तथा शुद्ध चित्त होकर सर्व्वसङ्ग परित्याग कर-नेमें यत्नवान् हों। वे लोग सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, प्रिय, अप्रिय, भय और अभय परित्याग करके प्रशान्त वा निरामय होवें। दुर्म्मति पुरु-षोंसे जो अत्यन्त दुस्त्यज है, पुरुषके जीर्ण होने पर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो प्राणियोंकी प्राणान्तिक रोगरूपी है, उस तृष्णाको जो लोग परित्याग करते हैं, वेही सुखभागी होते हैं। धर्म्मात्मा पुरुष निज चरित्रको कलंकरहित चन्द्रमाकी भांति निरामय देखके इस लोक और परलोकमें परम सुखसे कीर्त्ति लाभ करते हैं, द्विजश्रेष्ठ माण्डव्य विदेहराजके ऊपर कहे हुए वचनको सुनके प्रसन्न हुए और उनके वच-नका सम्मान करके मोक्षपथ अवलम्बन किया।

२७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इस सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहने पर किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें पुराने लोग पिता-पुत्र सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं उसे सुनो। हे पृथापुत्र! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नाम एक बुद्धिमान् पुत्र था, मोक्ष-धर्म्मकी व्याख्यामें निपुण, लोक तत्वको जानने वाला वह पुत्र वेदविहित कार्य्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ।

पुत्र बोला, हे तात! मनुष्योंको परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है, इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य्य करें? आप फल सम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपू-र्व्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये; जिसे सुनके मैं धर्म्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा।

पिताने कहा, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनके जरिये सब वेदोंको पढ़कर पितृलोक पानेके लिये पुत्र कामना करे, अनन्तर विधिके अनुसार अग्नि स्थापित करके यज्ञकार्य्य पूर्ण करते हुए गमन करके मौनव्रती होनेके अभिलाषी होवे।

पुत्र बोला, हे पिता! लोकोंके इस प्रकार सब भांतिसे ताड़ित होने तथा घिरे रहने और निरन्तर अमोघापात होनेपर भी आप निर्व्वि-कार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं।

पिताने कहा, हे पुत्र! सब लोक किस प्रकार ताड़ित तथा किससे घिरे हैं, और अमोघा क्या है, जो गिर रही है, क्या तुम मुझे भय दिखाते हो।

पुत्र बोला, सब लोक मृत्युसे ताड़ित और जरासे घिरे हुए हैं, और परमायु हरणके कारण अमोघारात्रि प्रतिदिन आती जाती है, इसलिये उसे आप क्यों नहीं जान सकते हैं। जब यह जानता हूं कि यद्यपि मृत्यु इस

स्थानमें उपस्थित नहीं है, परन्तु प्रति क्षण प्राणियोंको आक्रमण करती है; तब मैं ज्ञानावरणसे अनावृत होके किस प्रकार व्यवहार करते हुए समय व्यतीत करूंगा। जब कि प्रति रात्रिके बीतनेपर सबेरा होते ही आयु क्षीण होती है, तब बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि दिनको निष्फल समझे। कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण करती है; इसलिये थोड़े जलमें रहनेवाली मछलियोंकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख करनेमें समर्थ होगा। फूल गूंथनेकी तरह जब मनुष्य लोग काम्य कर्म्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर होते हैं, तब जैसे बाघिन भेड़के बच्चोंको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उन्हें ग्रहण करके प्रस्थान करती है। जो कुछ कल्याणसाधक कर्म्म हैं, उसे आज ही समाप्त करना उचित है। यह समय जिसमें तुम्हें अतिक्रम न करे, कर्त्तव्य कार्य्योंके पूरा न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण किया करती है। जो कल्ह करना होगा उसे आज ही करना योग्य है, अपरान्हके कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूर्व्वान्हमें ही करना चाहिये। मनुष्योंके कर्त्तव्य कर्म्म पूरे हुए हैं, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उन्हें आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती। मनुष्य युवा अवस्थामें ही धर्म्मशील होवे, क्यों कि जीवनका समय अत्यन्त अनित्य है; आज किसका मृत्यु काल उपस्थित होगा, इसे कौन कह सकता है। धर्म्म-कार्य्य करनेसे इसलोकमें कीर्त्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है।

मनुष्य लोग मोहमें फंसके पुत्र कलत्र आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्य्योंको करके उनका पालन करते हैं, जैसे शेर सोये हुए हरिनको पकड़के चल देता है, वैसे ही पुत्रवान् पशुओंसे युक्त संसारमें फंसे हुए मानस मनुष्योंको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है। जो पुरुष काम भोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र कलत्र आदि परिवारोंकी अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी वञ्चित करके धन सञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे ग्राहक भेड़के बच्चे पकड़ता है। 'यह कार्य्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य्य पूरे नहीं हुए'—इस प्रकारके वासना सुखमें आसक्त पुरुषोंको मृत्यु ग्रास किया करती है। जिस पुरुषने क्षेत्र आपण और भवनमें आसक्त होके किये हुए सब कर्म्मोंका फल नहीं पाया है, उसे भी मृत्युके वशमें होना पड़ता है। क्या निर्ब्बल, क्या बलवान्, क्या मूढ़, क्या पण्डित, क्या कादर, क्या साहसी, कोई क्यों न हो; कामनाके सब विषयोंको प्राप्त न होते ही होते मृत्यु उन लोगोंको ग्रहण करके गमन करती है। जरा, मरन, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होरहे हैं, तब आप किस प्रकार अरोगीकी तरह निवास करते हैं। देहधारी जीवोंके जन्मते ही जरा मृत्यु उनके नाशके लिये उनका अनुगमन करती है; इसलिये स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तु मात्र इन दोनोंसे आक्रान्त होरही हैं। गांवमें वास करनेके लिये लोगोंकी जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका मुख स्वरूप है और जो अरण्य कहके विख्यात् है, ऐसी जनश्रुति है, कि वही इन्द्रियोंका विविक्त वासस्थान है। ग्राममें निवास करनेवालोंकी अनुराग बन्धन रस्सीरूपी है; सुकृतवान् लोग उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते। मन, वचन और शरीरसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते, वे जीते और अर्थमें बाधा करनेवाले हिंसक जीव तथा चोरोंसे हिंसित नहीं होते। जरा-व्याधिरूपी मृत्युकी सेना जब आगमन करती है तब सत्यके अतिरिक्त कोई कभी उसे निवारण नहीं

कर सकता। क्यों कि उस सत्यमें ही अमरण रूपी अमृत सदा स्थित रहता है; इसलिये मनुष्य ब्रह्म प्राप्तिके निमित्त यम-नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए चिदाभासरूपी जीवके ऐक्यसाधन, सत्ययोगमें रत, वेदवाक्यमें श्रद्धावान् और सदा जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरियेही मृत्युको जीते। सत्य और मृत्यु, ये दोनों शरीरमें स्थित हैं, उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्युके वशमें होते हैं; और सत्यसे अमृतत्व लाभ करते हैं; इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके सुख दुःखको समान जानके सत्यार्थी और कुशली होकर अमर्त्तकी तरह मृत्युको त्यागूंगा,। उत्तरायण कालमें निवृत्ति मार्ग अभ्यासरूपी शान्ति यज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थ विचाररूप ब्रह्म यज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त मननशील, प्रणव जप-रूपी वाक् यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और स्नान, पवित्रता तथा गुरु सेवा आदि कर्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा। मेरे समान बुद्धिमान् पुरुष पिशाचके निष्फलचित्र यज्ञकी तरह हिंसासाध्य पशु बधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होंगे। जिनके बचन, मन, तपस्या त्याग और योग ये पांचो सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वे परम पद प्राप्त करते हैं। विद्याके समान नेत्र, सत्यके समान तपस्या, रागके समान दुःख और सन्न्यासके समान दूसरा सुख नहीं है। मैं अपुत्र होकर भी आत्माके जरिये आत्मजरूपके उत्पन्न और आत्मनिष्ठ होऊंगा; पुत्र मेरा उद्धार न करेगा। एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्य्यादा दण्डविधान, सरलता और सब कार्य्योंमें आसक्ति हीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है। हे ब्रह्मन्! आपको जब अवश्य ही कालके ग्रासमें पड़ना होगा, तब फिर आपको धन, बन्धु और पुत्र कलत्रोंसे क्या प्रयोजन है। अन्तःकरणसे निष्ठावान होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये; आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं, उसे बिचारिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पिताने पुत्रका बचन सुनके जैसा किया था, तुम भी सत्य धर्म्ममें तत्पर होके वैसा ही अनुष्ठान करो।

२७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मनुष्य किस प्रकारके सत्स्व-भाव, कैसा आचरण, कैसा ज्ञान और किसका अवलम्बन करनेसे निश्चल निर्व्विशेष ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

भीष्म बोले, मोक्ष धर्म्ममें रत पथ्य परिमित और पवित्र अन्नादि भोजन करनेवाले मनुष्य निश्चल निर्व्विशेष परमधाम पाते हैं। विवेकी पुरुष निज गृहसे निकलके लाभ हानिमें राग द्वेषसे रहित और मननशील होकर उपस्थित काम्य वस्तुओंमें निरपेक्ष होते हुए प्रव्रज्याश्रम अवलम्बन करें, नेत्र, मन, और बचनसे किसीको भी दूषित न करे, तथ किसीके प्रत्यक्ष वा परोक्ष दोषोंको किसीसे न कहे; सब लोगोंके बीच किसीकी भी हिंसा न करे; सूर्य्यकी भांति केवल एक ही दिन एक स्थानमें बिचरे यह मनुष्य जीवन पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे; लोक निन्दाको सहन करे; किसीको उद्देश्य करके अहङ्कार प्रकाश न करे, लोग उसके विषयमें आक्रोश प्रकाश करें, तो वह उन लोगोंसे प्रिय बचन कहे और क्रोधित होने पर भी अनुकूल बचन कहे; जन समाजमें अनुकूल वा प्रतिकूल आचरण न करे; बिपद-ग्रस्त न होनेसे पहले निमन्त्रित होकर किसीके गृहपर भिक्षा ग्रहण न करे, मूढ़ पुरुषोंके धूलि फेंकने और धिक्कार देने पर भी वह चपलता रहित और निज धर्म्ममें निष्ठावान् होके उन्हें बचनमात्रसे भी अप्रिय बाक्य न कहे; वह

दयावान होवे और जिघांसु लोगोंके विषयमें क्रूरता न करे; निर्भय और आत्मश्लाघासे रहित हो अर्थात् 'मैं धन्य हूं' इस प्रकार अपनी बड़ाई न करे. मौनव्रत अवलम्बी सन्न्यासी जब देखे कि गृहस्थोंके गृह धूंएंसे रहित, मूषल शब्द वर्ज्जित अग्नि शून्य हुए हैं, गृहस्थ लोग भोजन कर चुके हैं, और हाथमें परिवेषण पात्र ग्रहण करनेवाले पुरुषोंका आना जाना बन्द हुआ है, उस समय भिक्षा पानेकी अभिलाष न करे; उदरपूर्त्ति करके भोजन लाभमें अनादर प्रदर्शित कर प्राण धारणके लिये जो कुछ भोज्य वस्तु आवश्यक हों, वही भोजन करे, भोज्य वस्तुओंके अभावमें किसीको भी हिंसा न करे और प्राप्त होनेपर भी हर्षित न होवे; सबके योग्य स्रक चन्दन आदि साधारण लाभके लिये उत्सुक न होवे और अत्यन्त पूजित होके भी भोजन न करे; क्यों कि सम्मानके सहित अन्नादि लाभको वैसे पुरुष निन्दा किया करते हैं; अन्नके भूसी आदि दोषोंको घोषणा न करे और किसी गुणके रहने परभी उसकी प्रशंसा न करे; निर्ज्जन स्थानमें सोने और बैठनेको अभिलाष करे; सूने स्थान, वृक्षके मूल, वन अथवा गुफा, इन सब स्थानोंके बीच दूसरेको अजानकारीमें गमन करके उक्त स्थानोंमें वास करे; अचल अर्थात् उत्क्रान्ति गतिके जरिये गतिशून्य तथा कूटस्थ वा कूटकी भांति निर्व्विकार भावसे निवास करके योगके अनुरोध और सङ्ग त्याग विषयमें समदर्शी होवे, दया दंब आदिके जरिये सुकृत वा दुष्कृत दोनोंमेंसे किसीकी भी कामना न करे। जो नित्यतृप्त अत्यन्त सन्तुष्ट प्रसन्न वदन हैं, और जिनकी सब इन्द्रियां प्रसन्न हुई हैं; जो निर्भय, जपमें तत्पर हैं तथा मौनव्रत अवलम्बन किये हैं उन्होंने ही यथार्थ वैराग्य अवलम्बन किया है; जो बार बार जीवोंकी संसारमें जाति आति देखकर निस्पृह और समदर्शी होके फल मूल आदि खाके जीवन बिताते हुए स्वभावसे ही शान्तचित्त, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर वचन, मन, क्रोध, हिंसा, उदर और उपस्थके वेग, इत्यादि इन सब वेगोंको सहते हैं, वेही तपस्वी हैं, लोकनिन्दा उनके हृदयको दुःखित नहीं कर सकती। प्रशंसा और निन्दाके मध्यवर्त्ती वा समदर्शी होकर निवास करना परिव्राजक आश्रमका परम पवित्र पथ है।

महानुभाव परिव्राजक सब भांतिसे इन्द्रियोंको दमन कर और सबका सङ्ग परित्याग करके पहले कहे आश्रमके निवासस्थानमें विचरें और आप्तोंके सहित वार्त्तालाप न करके सबके प्रियदर्शन होकर गृहवासको त्यागके ध्याननिष्ठ होवें; वाणप्रस्थ और गृहस्थोंके गृहमें कदापि वास न करें; लोग यह न जान सकें, कि इन्हें भिक्षा लेनेकी इच्छा है। इस ही प्रकार भिक्षा पानेकी इच्छा करें, कभी हर्षित न होवें। ज्ञानियोंके निमित्त यही मोक्ष धर्म्म है और अज्ञानियोंको इस मार्गमें पदार्पण करना परिश्रम मात्र है; हारित मुनिने पण्डितमण्डलोके बीच यह सब मोक्षसाधक विषय कहे थे। जो लोग सब भूतोंको अभय दान करते हुए गृहसे निकलकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे अनन्तकालके लिये सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प हुआ करते हैं।

२७७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोग हमें धन्य कहा करते हैं, परन्तु हमारे समान दुःखित पुरुष इस लोकमें कोई भी नहीं है। हे कुरुसत्तम! हम लोग धर्म्म आदि देवताओंसे मनुष्य जन्म पाके और लोकमें सम्मानित होके भी जो दुःखभागी हुए हैं, उस दुःख विनाशी सन्न्यासधर्म्मको कब ग्रहण करेंगे; इस संसारमें शरीर धारण करना ही दुःखकर है, हे पिता-

मह ! संशितव्रती मुनि लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रियोंसे विमुक्त हैं; मुक्ति-विरोधी संसारवर्द्धक काम, क्रोध लोभ, भय, स्वप्न, इन पांचों योग दोषोंसे रहित और शब्द स्पर्श आदि पञ्च इन्द्रिय विषय तथा सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंसे रहित होके पुन-र्जन्म ग्रहण नहीं करते। हे परन्तप ! वैसेही हम राज्य परित्याग करके कब सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करके दुःख मोचन करेंगे।

भीष्म बोले, हे महाराज ! दुःख अनन्त नहीं है, दुःखोंको नाशक मोक्ष अवश्य है; इस संसारमें सब विषयोंकाही परिच्छेद है, पूर्व्वजन्म भी प्रसिद्ध है, जगत्में कुछ भी अचल नहीं है; इसलिये राज्य, ऐश्वर्य्य आदिका अवश्य ही नाश होगा। हे राजन् ! राज्यऐश्वर्य्य प्रभृतिको मोक्षका प्रतिबन्ध मत समझो, तुम लोग धर्म्मज्ञ हो। इसलिये ऐश्वर्य्यादिमें आसक्त रहने पर भी शम दम आदि साधनोंके जरिये कालक्रमसे मोक्ष लाभ करोगे। हे नरनाथ ! यह जीव सदा सुख दुःखका ईश्वर नहीं है, क्यों कि उस सुख दुःखसे उत्पन्न हुए राग-द्वेषमय अज्ञानसेही जीव स्वयं आवृत हुआ करता है। जैसे अञ्जन-मय वायु मनःशिला सम्बन्धीय लाल और पीले वर्णके रजमें प्रवेश करके उसके समान रूप धारण करके सब दिशाओंको रंजित करती हुई लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ करता है, वैसेही अज्ञानसे छिपे हुए अर्थात् अविद्या उपाधियुक्त जीव स्वयं विवर्ण होके भी अर्थात् रागादिही-नता निबन्धन दोषस्पर्शी न होके भी देह सम्ब-न्धके कारण देह धर्म्म गौरत्व, कारणत्व, खञ्जत्व, सुखित्व और दुःखित्व आदि कर्म्मफलोंके जरिये रञ्जित है, इसहीसे वर्णवान् होकर देह समू-हमें भ्रमण किया करता है। जब जीव अज्ञा-नसे उत्पन्न हुए अन्धकारको ज्ञानसे दूर करता है, उस समय सत्स्वरूप एकमात्र ब्रह्म प्रकाशित होता है।

मुनि लोग उस परब्रह्मको अयत्न साध्य अर्थात् कर्म्मसे प्राप्त होनेकी उपाय रहने पर उसमें अनित्मत्व संघटित होता है; क्यों कि जो कर्म्मज है, वही उत्पाद्य, आप्य, संस्कार्य्य और अकार्य्य हुआ करता है। जिसमें विद्वानोंका अनुभव ही प्रमाण है, उस ही परब्रह्मकी उपासना करनी देवताओंकी भांति तुम्हें अवश्य योग्य है; इसही लिये महर्षि लोग ब्रह्मोपासनासे विरत नहीं होते। उद्योगी पुरु-षोंको अवश्य ही ब्रह्मप्राप्ति हुआ करती है, इससे तुम भी उद्योगी बनो। हे राजन् ! पहिले समयमें वृत्रासुरने देवताओंसे पराजित होनेसे राज्यहीन और ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होकर अकेलेही शत्रुव्यूहमें स्थितही नैष्ठिकी बुद्धि अवलम्बन करके शोक रहित अन्तःकरणसे इस विषयमें जिस प्रकार चेष्टा की थी, और जैसा कहा था, उसे तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे भारत ! पहिले समयमें शुक्राचार्य्यने ऐश्वर्य्यभ्रष्ट होने-पर वृत्रासुरसे यह वचन कहा था कि, हे दानव ! तुम इस समय पराजित हुए हो, तौभी तुम्हारे अन्तःकरणमें कुछ दुःख नहीं है, इसका क्या कारण है ?

वृत्रासुर बोला, मैं अबाधित सत्य वचन और ध्यान मननकी आलोचनासे जीवोंकी सांसारिक गति और मुक्तिके विषयको निःसंश-यरूपसे जान कर शोक वा हर्षमें नहीं डूबता। जीव पुण्य वा पापके धर्म्म लक्षण कालके जरिये प्रेरित होते हैं कोई कोई अवश होके नरकमें डूबते हैं; कोई कोई स्वर्गमें गमन किया करते हैं; परन्तु मनीषी लोग ऐसा कहा करते हैं, कि वे समस्त जीवही परितुष्ट रहते हैं। वे काल प्रेरित जीव नरक वा स्वर्गमें परिमित समय बिताकर फिर संसारमें जन्म लेते हैं,। काम पाशमें बन्धे हुए जीवसमूह सहस्रों तिर्य्यग् योनि लाभ और नरकमें गमन करके अवश होकर बाहिर होते हैं। मैं अतीन्द्रिय ज्ञानयुक्त

होकर जीवोंकी इस ही प्रकार इस संसारमें गतागतिके विषयको जानता हूं, और जिसका जैसा कर्म्म है, उसे फल लाभ भी उसहीके अनुरूप हुआ करता है; इस शास्त्र निदर्शनको भी मानता हूं। जीव पहिले किये हुए प्रिय अप्रिय, सुख और दुःखके आचरणसे कोई तिर्य्यग् योनि पाते हैं, कोई नरकमें गमन करते हैं, कोई मनुष्य जीवन प्राप्त किया करते हैं, कोई देव शरीर धारण करते हैं, सब लोक ही कालकृत नियममें निबद्ध होकर पूर्व्वोक्त गतियोंको प्राप्त हुआ करते हैं, जीव-समूह जन्म और मृत्युके मार्गमें सदा घूम रहे हैं। शुक्रने इसही प्रकार कालसंख्याके अनुसार गणित सृष्टि और स्थिति विषयके कहनेवाले उस वृत्रको असुर योनिमें जन्म लेने पर भी उसे इस प्रकार ज्ञानवान समझके आश्चर्य्य किया और उसके बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये बोले, हे तात! तुम बुद्धिमान् हो, इसलिये किस निमित्त यह सब अनर्थक वचन कह रहे हो।

वृत्रासुर बोला, पहले मैंने जयलुब्ध होकर जो महत् तपस्या की थी वह आप तथा दूसरे मनीषी पुरुषोंको प्रत्यक्ष हुई थी। मैं निज वीर्य्यबलसे अनेक गन्ध और रसके आश्रयभूत सबको विमर्द्दन करते हुए तीनों लोकोंको आक्रमण करके वर्द्धित हुआ था। मैं ज्वाला-मालासे परिपूरित आकाशचारी और सदा निर्भय रहके सब भूतोंसेही अजेय था। हे भगवन्! तपस्यासे ऐश्वर्य्य लाभ हुआ था और निज कर्म्मसे वह नष्ट हुआ है, इसलिये मैं धैर्य्य अवलम्बन करके उसके लिये शोक नहीं करता। पहले जब मैंने महानुभव इन्द्रके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषकी, उस समय उनकी सहायताके लिये आये हुए ऐश्वर्य्योंसे युक्त, सब जीवोंके लय स्थान, सर्व्वान्तर्य्यामी हरिको देखा। उस भूतोंके मेल करनेवाले पूर्ण पुरुष जो कि तीनों परिच्छेदोंसे रहित, अनन्त, शुद्ध, सर्व्वव्यापी, सनातन, मुञ्जकी समान पीले केश और पिङ्गल वर्ण श्मश्रुयुक्त हैं, तथा जो सब भूतोंका पितामह शुद्ध ब्रह्म हैं, प्रसङ्ग क्रमसे उस परब्रह्मके दर्शनस्वरूप तपस्याका शेष फल इस समय भी कुछ विद्यमान है। हे भगवन्! उस ही तपोबलको अवलम्बन करके मैं कर्म्म-फल पूछनेकी इच्छा करता हूं। महत् ऐश्व-र्य्यस्वरूप परब्रह्म किस वर्णमें प्रतिष्ठित है और उस सर्व्वोत्तम ऐश्वर्य्य की किस प्रकार निवृत्ति होती है। किस कारणसे जीव जीवन धारण करते हैं और किस लिये कर्म्मकी चेष्टा किया करते हैं। जीव किस प्रकार परम फल पाके ब्रह्मत्व लाभ करता है; आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर नरनाथ! वृत्रासुरके ऐसा पूछने पर उस समय शुक्राचा-र्य्यने जो उत्तर दिया था, मैं उसे कहता हूं तुम सहोदर भाइयोंके सहित एकाग्रचित्त होकर सुनो।

२७८ अध्याय समाप्त।

शुक्र बोले, हे तात दानव-सत्तम! आका-शके सहित पृथ्वीतल जिसकी भुजाके बीच निवास करता है, उस सर्व्व ऐश्वर्य्य युक्त सर्व्व शक्तिमान भगवान्को नमस्कार करता हूं। जिसका शिर अनन्त मोक्षस्थान है, उस सर्व्व-व्यापी देवका परम माहात्म्य तुम्हारे समीप कहता हूं। वृत्रासुर और शुक्र इस ही प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उस ही समय विष्णुकी कृपासे धर्म्मात्मा महामुनि सनत्कुमार उन लोगोंके सन्देहको दूर करनेके लिये वहां आके उपस्थित हुए। हे राजन्! मुनिवर पहुंचते ही असुरेन्द्र और शुक्रसे पूजित होकर उत्तम आसनपर बैठे। महाप्राज्ञ मुनिके बैठनेपर शुक्र उनसे बोले, आप इस दानवेन्द्रके समीप भगवान् विष्णुका परममाहात्म्य कहिये।

अनन्तर सनत्कुमार ऐसा वचन सुनके बुद्धिमान् दानवेन्द्रके निकट विष्णुके माहात्म्य संयुक्त महार्थ वाक्य कहने लगे। हे दैत्यराज! विष्णुका यह सब परम माहात्म्यका विषय सुनो। हे शत्रुतापन! समस्त जगत् विष्णुके अवलम्बसे स्थित है। हे महाबाहो! ये विष्णु ही स्थावर जङ्गम सब जीवोंको उत्पन्न करते हैं, येही कालक्रमसे जीवोंको आकर्षण करते हैं, और कालक्रमसे फिर सृष्टि किया करते हैं; सब कोई इन्हींमें लीन होते और इन्हींसे उत्पन्न हुआ करते हैं। ज्ञानवान् मनुष्य तपस्या वा यज्ञसे इन्हें प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं हैं, और इन्द्रियोंको संयम करनेसे भी इन्हें प्राप्त नहीं किया जाता, जो यज्ञादि कर्म्मोंसे उन्हें जाननेकी इच्छा करते हैं, अथवा शान्त, दान, उपरत, तितिक्षु और समाहित होकर आत्मासे ही आत्माको देखते हैं। वे निष्ठावान् मनुष्य आभ्यन्तर और वाह्य कर्म्मयुक्त बुद्धिके सहारे चित्त-शुद्धि करते हुए देहाभिमान छोड़के आत्मलोक लाभ करके मोक्षफल उपभोग किया करते हैं। जैसे सोनार अपने महत् प्रयत्नके जरिये बार बार अग्निमें डालके सुवर्ण आदि शोधन करता है, वैसेही जीव सैकड़ों जन्ममें पूर्व्वोक्त कर्म्मोंसे चित्तशोधन किया करता है; कोई एक ही जन्ममें अत्यन्त महत् प्रयत्नके सहित पूर्व्वोक्त कर्म्मोंके अनुष्ठानसे चित्तशुद्धि लाभ करता है। जैसे कोई कोई सहजमेंही निज शरीरकी अल्प मलिनता शुद्ध करते हैं, पुत्र कलत्र आदिमें अनुरागका उच्छेद वैसा नहीं है इसमें बहुत ही यत्नकी आवश्यकता है। जैसे थोड़े फूलोंसे वासित तिल वा सरसों निज गन्धको परित्याग नहीं करते, सूक्ष्म वस्तुका दर्शन भी वैसाही है, तिल और सरसों बहुतसे फूलोंसे बार बार सुवासित होनेपर निज गन्ध त्यागके जैसे पुष्पगन्धमें मिलित होते हैं, वैसेही सैकड़ों जन्ममें सत्वादि गुणोंसे युक्त पुत्र कलत्र आदि कुटुम्बके संसर्ग जनित दोष योगाभ्यासके यत्न और बुद्धिसे निवर्त्तित हुआ करते हैं। हे दानव! कर्म्मवशसे अनुरक्त अथवा विरक्त जीव जिस प्रकारसे विशेष कर्म्मको प्राप्त होते हैं उसे सुनो। जीव जिस प्रकार कर्म्मकी चेष्टा करता और जिसमें स्थित रहता है, वह मैं तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं; इस समय तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। जिसका आदि अन्त नहीं है, जो सब भूतोंमें समभावसे निवास करता है, वही जीवोंका पाप हरता है, इसीसे उसे 'हरि' कहते हैं, वही उपाधि रहित स्थावर जङ्गम सब जीवोंकी सृष्टि किया करता है, वही सब भूतोंमें रुद्रात और जीव-रूपसे स्थित रहता है, और एकादश इन्द्रिय स्वरूप होकर इन्द्रियोंके जरिये समस्त जगत्का ज्ञान किया करता है। हे दैत्यराज! पृथ्वी-मण्डल उसके दोनों चरण हैं, द्युलोक उसका शिर, दशोंदिशा उसकी भुजा हैं, और आकाशको उसका श्रोत्र (कान) जानना चाहिये। सूर्य्य उसके तेजसे प्रकाशमय हुआ है, उसकी बुद्धि चन्द्रमामें स्थिर होरही है। उसकी बुद्धि सदा ज्ञानगत अर्थात् वृत्तिरूप ज्ञान स्वरूपी हुई है, जल ही उसकी जिह्वा है। हे दानव-सत्तम! सब ग्रह उसके दोनों भौंके निकटवर्त्ती होरहे हैं, नक्षत्र मण्डल उसके नेत्र हुए हैं। हे दानव! भूमितल उसके दोनों चरणोंमें वर्त्त-मान है, सत, रज, और तम इन तीनों गुणोंको नारायण स्वरूप जानो। हे तात! वही सब आश्रमों और जप आदि कर्म्मोंका फल है, धीर लोग ऐसा ही ज्ञान किया करते हैं। वह अव्यय परम पुरुष ही निष्कर्म्म सन्न्यासका फल मोक्ष स्वरूप है। सब मन्त्र जिसके रोएं और प्रणव जिसका वाक्य है, अनेक वर्ण और सब आश्रम जिसका आश्रय है जिसे अनन्त सुख है तथा जो हृदयमें स्थित धर्म्म स्वरूप है, वह परब्रह्म ही आत्मदर्शनरूपी परम धर्म्म और कृच्छ्र-चान्द्रा-

यज्ञ आदि तपस्याका फल स्वरूप है, वही कार्य्य और कारण स्वरूप है। वह परमात्मा ही मन्त्र ब्राह्मण और प्रवर्त्तना वाक्यसे युक्त है; होता, उद्गाता, प्रस्तोता प्रतिहर्त्ता आदि षोड़स ऋत्विकोंके जरिये सम्पादनीय क्रतु स्वरूप है। वही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अश्विनीकुमार, मित्रा-वरुण, यम और कुबेर स्वरूप है। उक्त ऋत्विक् गण पृथक् दर्शन होनेपर भी-अर्थात् इन्द्रसे महेन्द्र विभिन्न और वैश्वानरसे अग्नि स्वतन्त्र है, इत्यादि रूपसे कर्म्मकी विभिन्नताके कारण पृथक् दर्शन करनेपर भी उस एक मात्र महान् आत्माके सहित पूर्व्वोक्त प्रजापति आदि देव-ताओंकी एकता अवलोकन किया करते हैं, इस समस्त जगत्‌को उस ही एक मात्र देवके अधीन जानो। हे दैत्यराज! धीर पुरुष कहते हैं, कि उसके नाना भूतोंमें निवास करनेपर भी यह जीव उसे एक ही देखता है, अनन्तर जीव ही विज्ञानवशसे ब्रह्मरूपसे प्रकाशित होता है। हे दैत्येन्द्र! जगत्‌के लय और उदयको कल्प कहते हैं, कोई कोई जीव उस सहस्र कोटि कल्प परि-माण पर्य्यन्त स्थित रहते हैं, कोई स्थावर हुआ करते हैं कोई जङ्गम होके बिचरते हैं; प्रजासृ-ष्टिका परिमाण वच्यमाण विधिसे सहस्र वापी सोखनेकी भांति अनन्त है। पचासकोस चौड़े और पचास कोस लम्बाईके परिमाण तथा गहराईसे दुरवगाह सहस्रों वापियोंके प्रत्येक योजनके परि-माणसे वर्द्धित होती रहनेपर यदि प्रतिदिन केवल एकबार केशाग्रके जरिये उसमेंसे एक बूंद जल उठाया जावे और इस ही प्रकारके नियमसे एक एक वापीके जल सोखनेके क्रमसे कोई सहस्र दीर्घकारके नष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो ज्ञानके बिना संसारका उच्छेद होसके। एककी मुक्तिसे एककी सृष्टिनाश होनेपर भी अनेक जीव वर्त्तमान रहते हैं। इससे किसी प्रकारसे भी संसारके नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं है। रज, सत और तमोगुण रञ्जकता, स्वच्छता और मलिनताके साम्यवशसे लाल, स्वेत और काले हुआ करते हैं। उक्त तीनों गुणोंके भाग भेदसे जीवका सफेद, लाल, काला, पीला, धूम और कृष्ण, ये छः प्रकारके वर्ण होते हैं, तीनों गुण परस्पर वियुक्त होनेपर स्थित नहीं रहते उसके बीच जिसमें तमोगुणकी अधिकता, सतोगुणकी न्यूनता और रजोगुणकी समता रहती है, उसका कृष्णवर्ण होता है; सत और रजोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतो-गुणकी समता तथा रजोगुणकी न्यूनता होनेपर धूम्र वर्ण हुआ करता है, इस ही प्रकार रजो-गुणकी अधिकता और सत्व तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समतासे नीलवर्ण हुआ करता है। सत्व और तमोगुणकी विपरीतता अर्थात् सतो-गुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनतासे लोकोंके सह्यतर लालवर्ण उत्पन्न होता है, सतोगुणकी अधिकता और रज तथा तमोगुणकी न्यूनता वा समता होनेपर सब लोक सुखकर पीत वर्ण हुआ करता है। सत्वकी अधिकता रजोगुणकी समता और तमोगुणकी न्यूनता होनेसे अत्यन्त सुखकर स्वेत वर्ण हुआ करता है।

हे दानवेन्द्र! स्थावर आदि सृष्टि क्रममें कृष्णवर्णसे कौमारसृष्टि पर्य्यन्त क्रमसे जो शुक्ल वर्ण होता है, वही राग-द्वेषहीनता निबन्धनसे निर्म्मल है, इससे शोकहीन और प्रवृत्ति नामक श्रमरहित वह वर्ण ही सिद्धिके उपायोगी हुआ करता है। हे दैत्य! जीव सहस्रों बार जन्म ग्रहण करके अन्तमें सिद्धिलाभ करता है। हे असुरेन्द्र! सुरराज पुरन्दरने उत्तम शास्त्रज्ञान लाभ करके आत्मानुभवात्मिका जो शुभ गतिका विषय कहा था, अर्थात् "इस ब्रह्मका मैंने दर्शन किया" इत्यादि जो वचन प्रकाशित की थी, वही ब्रह्मज्ञान लाभकी प्रमाण स्वरूप है। सत्वादि गुणोंके तारतम्यके अनुसार प्रजा-समूहकी वर्ण-विहित गति हुआ करती है, प्रजाके वर्ण भी कालकृत अर्थात् पहले कहे

हुए चतुर्युगात्मक जीव कर्त्तृक विहित हैं, जीवोंके पूर्व्व जन्मके संस्कारसे जिस प्रकार सत्वादिकी उत्पत्ति होती है, वैसी ही गति हुआ करती है। हे दैत्यराज! सोपानारोहन क्रमसे इस लोकमें चौदह लाख बार जीवको उर्द्ध गति होती है, और उसहीके अनुसार स्थिति तथा अधोगति समझनी चाहिये; स्थावत्व-प्रापक कृष्णवर्णको निकृष्ट गति होती है, क्यों कि वे जनिष्यमान स्थावर पदार्थ नरकप्रद कर्म्ममें संयुक्त हुआ करते हैं, इसहीसे वे नरकमें निमग्न होते हैं, प्राचीन पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि अनेक कल्पतक उनकी दुर्गति लोगोंके सहित स्थित हुआ करती है। इस ही प्रकार जीव स्थावर शरीरसे समय बिताते हुए अन्तमें तिर्य्यग् योनि लाभ किया करता है। जीव उस तिर्य्यग् योनिको लाभ कर शीत वाता-दिसे पीड़ित होकर युगक्षयमें सब प्रकारसे मृत्यु-भय दर्शन करते हुए पूर्व्व पुण्योदयके बिबेकसे व्याप्तचित्त होकर उक्त शरीरमें स्थिति करता है। कृष्ण और हरित वर्ण केवल भोगभूमि हैं, इसलिये इसमें भोगके जरिये जिसके पाप नष्ट होते हैं, दैवात् उसके पूर्व्व पुण्यके उदय होने-पर जीवका चित्त बिबेकसे संवृत हुआ करता है। जब जीव सतोगुणयुक्त होता है, उस समय निज बुद्धिसे तमोगुणकी प्रवृत्तियोंको दूर करते हुए कल्याणसाधन कर्म्ममें यत्नवान् हुआ करता है, तब सतोगुणको उत्कर्षता होनेसे कामादिके अभिमानी देवभाव लाभ करता है, और सतो-गुणके अपकर्ष होनेसे तिर्य्यग् योनिसे फिर तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होता अथवा मनुष्य जन्म ग्रहण करता है। तब जीव मनुष्य लोकमें कल्प परिमित समय बिताके विधि निषेधरूपी निग-ड़निबद्धके जरिये क्लेशित होकर तपस्याका उपचय करते हुए सैकड़ों कल्प बीतनेपर देव-भाव लाभ किया करता है। हे दैत्यराज! जीव देवत्व लाभ करके भी सहस्रों कल्पतक विचरते हुए निवास करता है; देव लोकमें भी जीव विषय रहित होके पूर्व्व पूर्व्वकल्पोंके किये हुए पुण्य पापोंका फल भोग किया करता है।

अनन्तर दश हजार जन्मके बीतनेपर मनुष्य भोगप्रद कर्म्म और अन्यान्य जन्मोंसे मुक्ति लाभ करता है इसलिये स्वर्गको भी क्षयशील सम-झना चाहिये। जीव देवलोकमें सदा विहार किया करता है, अनन्तर वहांसे च्युत होकर मनुष्य जीवन पाता है; देवता लोग मनुष्यत्व और मनुष्य भी देवत्व लाभ किया करते हैं। ऊपर कहे हुए कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, चित्त, मन और बुद्धि नामक आठों ज्ञानेन्द्रिय सैकड़ों कल्पतक मनुष्य शरीरमें निवास करती हुई अन्तमें देवत्वको प्राप्त होती है। अनन्तर वही जीव कालक्रमसे संकल्पकृत क्षयोदय प्रवाहसे भ्रष्ट होकर सबसे अपकृष्ट वर्ण अर्थात् तलभागकी भांति सबसे नीच स्थावर शरी-रमें निवास करता है। हे असुर प्रवीर! यह जीव जिस प्रकार विमुक्त होता है, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। एकके अनेकधा भावको व्यूह कहते हैं, मुमुक्षु जीव उन सत्त-रह देवव्यूहोंको अवलम्बन करके लाल, पीला और अन्तमें सफेद वर्ण होकर क्रमसे अर्च्चनीय अष्टलोकोंमें बिचरता है। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि रूपसे सप्तधा-भूत बुद्धिकी उस ही उसी इन्द्रिय वृत्तिभेदसे सौ हजार व्यूह हुआ करता है, तिसके बीच शम दम आदि सात्विक भावोंसे युक्त देव व्यूह अव-लम्बन करके पहले जो रक्तवर्ण होता है, वही शम दमादिके अभिमानी देवतास्वरूप है, इससे वह अत्यन्तही शमदमादिसे युक्त हुआ करता है।

अनन्तर पीत वर्ण देवशरीर होकर अन्तमें श्वेतवर्ण कौमारमूर्त्ति हुआ करती है, यह मूर्त्ति बालककी भांति रागद्वेषसे रहित होती है। अनन्तर सगुणात्म स्वरूप सब लोक प्राप्त होते हैं, क्रमसे धूम आदि मार्गप्राप्तिपूर्व्वक अर्च्चि

नीय चन्द्रलोकसे भी पूजनीय अर्चिरादि मार्ग-प्राप्य ब्रह्मलोक लाभ होता है। अनन्तर योग-फलभूत ज्ञानसे मिलने योग्य सब पूज्य लोक प्राप्त होते हैं। हे महानुभव दैत्यराज! पूर्ण प्रकाशयुक्त आत्मज्ञ पुरुष उक्त अष्टलोक और अविद्या काम कर्म्म आदि भेदसे विभिन्न जो एक सौ साठ लोक हैं, उन सबको मनसे ही विशेष रूपसे रुद्ध कर रखते हैं, अर्थात् मूढ़दृष्टिसे सब लोकोंके भिन्नरूपसे दीखनेपर भी ज्ञानियोंके मनमें वे एक रूपसे ही मालूम हुआ करते हैं; जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्तिसंज्ञक तीनों लोक यदि संचेपसे मनहीके जरिये रुद्ध हों, तो शुक्लवर्णको वही परम गति है, अर्थात् ऐसी अवस्थामें वेद प्रतिपाद्य, मङ्गलमय हेतरहित ब्रह्मको जाना जाता है। जीव एकमात्र भोगके स्थान शरीरको धारण करके सौ कल्पके परि-माणतक इस देहमें निवास किया करता है, योग ऐश्वर्य्यसे उपस्थापित दिव्य भोगोंको परि-त्याग करनेमें असमर्थ योगी योगबलके तारत-म्यके अनुसार महः, जन, तपः और सत्यसं-ज्ञक ऐश्वर्य्यके तारतम्ययुक्त क्रममुक्ति स्थानोंमें निवास किया करते हैं। जो शुद्ध ब्रह्मके दर्श-नके जरिये जीवन मुक्त होनेमें समर्थ नहीं हैं और जिनके रागादि दोष नष्ट हुए हैं, वैसे पुरुष योगसिद्ध होके भी ब्रह्म और आत्मामें ऐक्यज्ञानके अभाव निवन्धनसे क्रममुक्तिभाजन हुआ करते हैं; और जो पुरुष पूर्णरीतिसे योगानुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं है, वह परी-चल रूपसे निर्दिष्ट स्वर्गलोकमें सतोगुणको प्रब-लासे पूर्व्वोक्त श्रोत आदि पञ्चक और मन तथा बुद्धिके उत्कर्ष साधक पुरुष एकसौ कल्प पर्य्यन्त तथा जबतक पूर्व्वकृत कर्म्मचय नहीं होते, तब-तक निवास करता है। शुद्ध कर्म्मवाले साधु योगी यदि योग सिद्धिके पहिले विरक्त हो, तो भूलोक अथवा स्वर्गलोकमें गमन करते हैं अन-न्तर वहांसे लौटकर मनुष्यजन्म पाके कुल शील और विद्याबुद्धिसे युक्त होकर सब लोगोंमें पूज-नीय होते हैं। अन्तमें वही अपूर्ण योगी मनुष्य जन्मसे निकलके पूर्व्व अभ्यासके सहारे क्रमसे उत्तरोत्तर योगभूमिकामें आरोहण करते हैं, वह समाधि और समाधि भङ्गके समयमें प्रमा-वयुक्त होके बारबार सब लोकोंमें पर्य्यटन किया करते हैं, अर्थात् प्रथम भूमिमें आरूढ़ योगी यदि मृत्युको प्राप्त हो, तो वह स्वर्गलाभ करके वहांसे च्युत होनेपर सार्व्वभौम्य पदवी लाभके जरिये उनका भूलोक विजय हुआ करता है। इस ही प्रकार उत्तरोत्तर योगकला वृद्धिके अनुसार क्रमसे सब लोक जय किया जाता है; अन्तमें ब्रह्मलोक लाभ करके भी जीव फिर संसारमें आगमन किया करता है, और यदि ध्येयवस्तुके सङ्ग आत्माकी अभेद प्रतीति उत्पन्न हो, तो प्रलयकालमें ब्रह्माके सहित जीवको मुक्ति हुआ करती है, अर्थात् कृतात्मा मनुष्य प्रजापतिके प्रलयकालमें उनके सहित परमपदमें प्रवेश करते हैं।

पश्चात्तरमें योगी पुरुष भूर्लोक भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्य लोक अथवा मन और बुद्धिके सहित पञ्चज्ञानेन्द्रिय, इन सातोंको ज्ञानसे बाधित करके जीव लोकमें शोक मोहसे रहित होकर निवास करते हैं। वे लोग पृथ्वी आदि सातों लोक अथवा बुद्धि आदि सातों इन्द्रियोंको दुःख स्वरूप निश्चय करके शरीर त्यागनेपर अपरि-णामी अनन्त अर्थात् परिच्छेद रहित शुद्ध ब्रह्म-पद लाभ करते हैं। कोई कोई उस पदको महादेवका कैलास कहते हैं, कोई उसे विष्णुका बैकुण्ठ बतलाते हैं, कोई कोई सम्प्रदायवाले उसे ब्रह्माका ब्रह्मलोक कहा करते हैं, कोई कोई भक्तजन उसे अनन्त देवके धामरूपसे वर्णन करते हैं, सांख्य मतवाले मनीषी पुरुष उसे जीवोंकी परम निवृत्ति स्थान कहा करते हैं, और उपनिषत् अर्थात् वेदान्त, दर्शनवाले

पण्डित लोग उसी दीप्तिमान् चिन्मात्र सर्व्वव्यापी परब्रह्मके धामस्वरूप रूपसे निर्णय किया करते हैं। संहारके समयमें जो लोग ज्ञानरूपी अग्निसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरको सब भांतिसे जलाये हैं, वही सब प्रजा सदा परब्रह्मको प्राप्त होती हैं और चेष्टात्मक इन्द्रियें तथा ब्रह्मस्वरूपसे अर्व्वाचीन प्रकृति आदि भी परिदग्ध शरीर होकर संहारकाल अर्थात् जीवके मोक्ष समयमें परब्रह्ममें लीन हुआ करती हैं। प्रलयकालके आसन्न होनेपर जो लोग केवल लाभ करते हैं, उनके सब कर्म्मफल भोग न किये जानेसे पूर्व्व कल्पके अर्ज्जित उनके सब कर्म्मफल प्रत्यासन्न हुआ करते हैं; क्यों कि प्रति कल्पमें ही पूर्व्व पूर्व्वकल्पोंकी सदृशता विद्यमान रहती है, और प्रलयकालमें जिसके कर्म्मफलोंके भोग निःशेषित होते हैं, उनका स्वर्गवास समाप्त होनेसे फिर मनुष्यत्व प्राप्त हुआ करता है; क्यों कि तत्वज्ञानके अतिरिक्त सौ कल्पमें भी किये हुए कर्म्मोंका नाश नहीं होता।

जो लोग क्रमसे सिद्ध लोकसे प्रच्युत होने की सामर्थ धारण करते हैं, दूसरे जीव लोग उनके समान बलवाले होकर क्रमसे उनकी गतिको प्राप्त होते हैं, अर्थात् उन्हींकी भांति पाप-पुण्यके फलोंको भोग किया करते हैं। एक कल्पमें ही जब बार बार ऊर्द्ध गति और अधोगति हुआ करती है, तब संसार भीरु पुरुषोंको तत्वज्ञानका आसरा अवश्य करना चाहिये।

ब्रह्मवित् पुरुष जबतक प्रारब्ध कर्म्मोंको परित्याग न करके उसे भोग करते हैं तबतक उनके अङ्गमें ब्रह्मस्वरूपसे प्रजासमूह और परा तथा अपरा विद्या विद्यमान रहती है। अनन्तर वह योगसंशोधित चित्त होनेपर अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधि स्वरूप संयमका अनुष्ठान करनेसे इस आकाश आदि पञ्च महाभूतोंको पञ्च इन्द्रियोंकी भांति जानते हैं; ब्रह्मवित् पुरुषके सम्बन्धमें विशुद्ध कैवल्य पर्य्यन्त समस्त जगत दूरवर्त्ती नहीं है। जो लोग शुद्धचित्तसे श्रवण मनन और ध्यानाभ्याससे शुद्ध चिन्मात्र वस्तुको जाननेकी इच्छा करते हैं, व द्वैतजालको दूर करके उस शुद्ध परम गतिको प्राप्त होते हैं, शेषमें ब्रह्म साक्षात्कार होनेपर अक्षय मोक्षपद लाभ करते हैं। उस समय अविद्या आदि व्यवधानोंसे जो शाश्वत परब्रह्म दूसरोंको अत्यन्त आप्य है, उसे वे गलेमें पड़े हुए कण्ठभूषणकी भांति सहजमें ही प्राप्त होते हैं। हे महाबलवान् दैत्यराज! यह मैंने तुम्हारे निकट नारायणका अभाव वर्णन किया।

वृत्रासुर बोला, हे भगवन्! आपने जो कहा, कि उसमें जगत मनरूपसे स्थित है, तब अब मुझे कुछ भी विषाद नहीं है और आपके कहे हुए वाक्यार्थको मैंने विशेष रूपसे आलोचना की है। हे महानुभाव! मैं आपके वचनको सुनके इस समय दुरदृष्टरहित और शोक मोहसे हीन हुआ। हे महर्षे! यह महातेजस्वी अन्तर्राहत विष्णुके चक्रकी भांति अनन्तवीर्य्य आकर्षित हुआ, वही उसका सनातन स्थान है, जिससे समस्त सृष्टि हुआ करती है, वह महानुभाव विष्णु ही पुरुषोत्तम हैं, उसमें ही यह सब जगत् प्रतिष्ठित होरहा है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीपुत्र! दैत्यराज वृत्रने ऐसा कहके प्राणत्याग किया, उसने निज आत्माको परमात्मामें संयुक्त करके परम स्थान प्राप्त किया था। उस समय युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी ओर अङ्गुली दिखाके बोले, हे पितामह! पहिले समयमें सनत्कुमार मुनिने वृत्रासुरके निकट जिसकी महिमा कही थी, ये भगवान् जनार्द्दन वही देवता हैं।

भीष्म बोले, मूल अधिष्ठानकी भांति निर्व्विकार भावसे स्थित षड़विध ऐश्वर्य्यवान् चिदात्मा निज तेजपुञ्जसे अधिष्ठित रहके सत्य संकल्प आदि गुणयुक्त मानसमें अनेक प्रकार कार्य्य कारण स्वरूप वृक्ष बीज प्रभृति उत्पन्न करता

है। यह निश्चय जानो, कि उस मूलाधिष्ठानमें स्थित चिन्मय पुरुषके आठवें अंशसे ये मूर्त्तिमान माधव उत्पन्न हुए हैं, यह बुद्धिमान् केशव मूलाधिष्ठानके आठवें अंशसे उत्पन्न होकर उस अष्टम अंशके सहारे ही तीनों लोकोंकी सृष्टि किया करते हैं, जो इनके परवर्त्ती होकर समष्टि-कार्य्य स्वरूपसे प्रतिपन्न होते हैं, वे हम लोगोंके शरीरकी अपेक्षा नित्य होके भी कल्पान्त कालमें लयको प्राप्त होते हैं, और जो अनन्त ब्रह्माण्डके लय उदयका बीजभूत है, वही अन्तर्य्यामी भगवान् प्रलयकालमें जलके बीच शयन किया करता है, अर्थात् जल रूपसे निरूपित रस स्वरूप एकमात्र अखण्ड परब्रह्ममें लीन होता है। बिधाता शुद्धचित्त अर्थात् अज्ञानरूपी अन्धकारसे निर्मुक्त होनेसे उस शाश्वत समष्टिरूप परब्रह्ममें लयको प्राप्त हुआ करता है, इसलिये चतुर्मुख आदि चैतनमात्रका ही एकमात्र परब्रह्म ही लय स्थान है। अन्तरहित परमात्माने कार्य्य कारण भूत सब पदार्थोंको निज सत्तास्फूर्त्ति प्रदान करके पूर्ण कर रखा है; वह सनातन अर्थात् सदा एक रूप होनेपर भी माया उपाधियुक्त इस दृश्यमान् श्रीकृष्णरूपसे सब लोगोंमें बिचर रहा है। वह देव ऐसा होके भी हम लोगोंकी भांति उपाधि कर्म्मके जरिये निरुद्ध नहीं है; इसीसे वह अनिरुद्ध अर्थात् अहंकार स्वरूप होकर जगत्की सृष्टि करता है, और वही महात्मा सब वस्तुओंका आधार कहा जाता है। बीजमें वृक्ष और फलमें बीजोंके स्थित रहनेकी भांति यह विचित्र जगत् उस ही परमात्मामें निवास करता है।

युधिष्ठिर बोले, हे परमार्थज्ञ पितामह! बोध होता है, वृत्रासुरने आत्माकी गति अवलोकन की थी, उसने उस ही आत्मगतिको देख कर शुभ-निबन्धनसे सुखी होकर कभी शोक प्रकाश नहीं किया। हे पापरहित पितामह! शुक्लवर्ण और शुद्ध वंशमें उत्पन्न साध्य संज्ञक देवयोनि तिर्य्यग् योनिरूपी निरयसे निर्मुक्त होकर फिर दूसरी बार उसमें आवर्त्तित नहीं होती। हे पृथ्वीनाथ! पीतवर्ण अथवा रक्तवर्णमें वर्त्तमान मनुष्य तामस कर्म्मोंसे परिपूरित होकर तिर्य्यग् योनि लाभ किया करते हैं। हम लोग पीतवर्णसे च्युत होकर केवल रजप्रधान रक्त वर्णमें निवास करते हुए कभी सुखी कभी दुःखी और कभी बिना सुखके ही समय बिताकर नीलवर्ण मनुष्य योनि अथवा उससे भी निकृष्ट कृष्णवर्णकी तिर्य्यग् योनिके बीच कैसी गति पावेंगे, उसे नहीं कह सकते।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! तुम लोग शुद्ध वंशमें उत्पन्न हुए हो और तुम सबने ही तीव्र व्रत धारण किया है, इसलिये इसके अनन्तर तुम लोग देव लोकोंमें बिहार करके फिर मनुष्य जन्म पाओगे। प्रजासमूहके प्रलयकालमें तुम लोग देव लोकमें फिर अनायास ही सुख भोग करोगे, अन्तमें सिद्धोंके बीच तुम्हारी गिनती होगा; तुम लोगोंको भय नहीं है, इससे सब शङ्का त्यागके प्रसन्न रहो।

२७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! अत्यन्त तेजस्वी वृत्रासुरकी धर्म्मिष्ठतासे आश्चर्य्य होता है। उसका जैसा अनन्य-साधारण विज्ञान था, भगवान्‌के विषयमें भक्ति भी वैसीही थी। हे तात! असीम महिमासे युक्त भगवान्‌की तत्व अत्यन्त दुर्व्विज्ञेय है, उसे वह तत्व किस प्रकार मालूम हुई थी। आपने जो इस विषयके अस्खलित वचन कहे, उसमें मेरी श्रद्धा होरही है, परन्तु वृत्रासुर वैष्णव था, वह कभी वधार्ह नहीं होसकता; तौभी आपकी वचन अनुसार उसका बध सुना जाता है, इस अन्यतर कोटि निश्चयिक विज्ञानके अभावसे फिर मुझे प्रश्न करनेकी इच्छा हुई है। हे पुरुषप्रवर! वृत्रासुर

धर्म्मिष्ठविष्णुभक्त और वेदान्त वाक्यके अर्थ विचार विषयमें तत्पर था; तब किस प्रकार वह इन्द्रके जरिये मारा गया? मुझे यही सन्देह होरहा है, इसलिये प्रश्न करता हूं आप मेरे निकट यह विषय वर्णन करिये। हे भरत प्रवर पितामह! वृत्रासुर जिस प्रकार इन्द्रसे द्वारा तथा जिस भांतिसे उन दोनोंका युद्ध हुआ था, आप उसे विस्तार पूर्व्वक वर्णन करिये; इस विषयको सुननेको मुझे बहुतही अभिलाषा है।

भीष्म बोले, पहिले समयमें देवराजने देवताओंके सहित रथपर चढ़के गमन करते हुए पुरमें द्वारपर स्थित पर्व्वतके समान वृत्र दैत्यको देखा। हे शत्रु दमन! उस समय वृत्र ऊर्द्धमें पांचसौ योजन ऊंचा, और विस्तारमें तीनसौ योजन आयतरूप धारण किया था; वृत्रका त्रैलोक्य-दुर्जय वैसा रूप देखके देवता लोग अत्यन्त भयभीत हुए और किसी भांति शान्ति लाभ न कर सके। हे राजन्! उस विपर्य्याय रूपको देखकर भयसे उस समय इन्द्रका सहसा उरुस्तम्भ हुआ। अनन्तर देव असुरोंका वह युद्ध उपस्थित होनेपर महान् सिंहनाद और युद्धके बाजोंके शब्द होने लगे। हे कुरुकुल धुरन्धर! देवेन्द्रको उपस्थित देखके वृत्रासुरके अन्तःकरणमें सम्भ्रम भय वा चिन्ता नहीं हुई, अनन्तर सुरराज शक्र और महानुभाव वृत्रासुरका त्रिलोक भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। तलवार, पट्टिश, शूल, शक्ति, तोमर, मुद्गर अनेक तरहकी शिला, महा शब्दयुक्त धनुष अनेक प्रकारके दिव्य शस्त्र, अग्नि और उल्का समूहसे देवासुर सेनाके जरिये सब जगत् व्याकुल होने लगा। हे भरतप्रवर महाराज! प्रजापति आदि सब देवताओं और महानुभाव ऋषियोंने युद्ध देखनेके लिये आगमन किया। सिद्ध और गन्धर्व्व लोग अप्सराओंके सहित विमानोंमें चढ़के उस स्थानमें इकट्ठे हुए। अनन्तर धार्म्मिक प्रवर वृत्रासुरने पत्थरकी वर्षासे शीघ्र ही आकाशतलको परिपूरित करते हुए देवेन्द्रको छिपा दिया, तब देवता लोग क्रुद्ध होकर सब प्रकारसे बाणोंकी वर्षा करके युद्धमें वृत्रासुरकी पत्थरवर्षाको निवारण करने लगे। हे कुरुवर! महा मायावी महाबली वृत्रासुरने माया युद्धसे देवेन्द्रको सब भांतिसे मोहित किया। जब इन्द्र वृत्रके जरिये अत्यन्त पीड़ित हुए, तब उन्हें मोह उत्पन्न हुआ, उस समय महर्षि वशिष्ठने रथन्तर साम उच्चारण करके उन्हें चैतन्य किया।

वशिष्ठ बोले, हे दैत्य दानव निसूदन देवराज! तुम सब देवताओंमें श्रेष्ठ और तीनों लोकोंके बलसे युक्त हो, इसलिये किसलिये विषाद कर रहे हो; ये जगत्पति ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और भगवान् सोमदेव तथा सब महर्षि लोग विद्यमान् हैं। हे सुराधिप शक्र! इसलिये तुम्हें साधारण पुरुषोंकी भांति मुग्ध न होना चाहिये; युद्धमें साधु बुद्धि अवलम्बन करके शत्रुओंका संहार करो। हे सुरपति! ये सब लोकोंके नमस्कृत भगवान त्रिलोचन तुम्हें देखते हैं, इसलिये तुम मोह परित्याग करो। हे शक्र! ये सब वृहस्पति आदि ब्रह्मर्षि लोग जयके निमित्त दिव्य स्तवसे तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं।

भीष्म बोले, महानुभाव वशिष्ठ मुनिने जब इस प्रकार इन्द्रको चैतन्य किया, तब प्रबल पराक्रमी सुरराजका पराक्रम अत्यन्त बर्द्धित हुआ, अनन्तर भगवान पाकशासनने बुद्धि स्थिर करके महत् योगयुक्त होकर वृत्रासुरकी माया दूर की। अङ्गिराके पुत्र श्रीमान् सुराचार्य्य और पूर्व्वोक्त महर्षियोंने वृत्रासुरका विक्रम देखकर सब लोकोंको हितकामनासे महादेवके निकट जाके उसके नाशके निमित्त प्रार्थना की। अनन्तर जगत्पति महादेवका तेज घोर ज्वररूप धारण करके उसही समय दैत्यपति वृत्रके शरीरमें प्रविष्ट हुआ; और लोकरक्षामें तत्पर

सब लोकपूजित भगवान् विष्णुने देवराजके वज्रमें प्रवेश किया। अनन्तर बुद्धि शक्तिसे युक्त वृहस्पति, महातेजस्वी वशिष्ठ और वे सब महर्षि लोग लोकपूजित वरदाता इन्द्रके निकट जाके एकाग्रचित्तसे यह वचन बोले कि, हे देवेश! तुम सब वृत्रासुरका बध करो।

महेश्वर बोले, हे शक्र! यह सुर स्वयं प्रबल है और महत् बलसमूहसे परिपूरित हुआ है यह पुरुष विश्वव्यापी और सर्व्वगामी तथा अनेक प्रकार मायाजाल फैला सकता है, इस ही कारण विख्यात् है। हे सुरेश्वर! इसलिये तुम योग अवलम्बन करके इस त्रिलोकदुर्ज्जय दानवश्रेष्ठका बध करो, अवज्ञा मत करो। हे देवराज! इस वृत्रासुरने बलके निमित्त साठ हजार वर्ष पर्य्यन्त तपस्या की थी; ब्रह्माने भी इसे योगियोंके बीच महत्व, महामायात्व और श्रेष्ठ तेजस्विता लाभके निमित्त वर प्रदान किया था। हे इन्द्र! यह मेरा तेज शीघ्र तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करता है, तुम इस ही तेजसे तेजस्वी होकर वज्रसे इस दानवका नाश करो।

देवराज बोले, हे सुरश्रेष्ठ भगवन्! आपकी कृपासे मैं आपके सम्मुखमें ही इस दुरासद दानवको वज्रसे मारूंगा।

भीष्म बोले, महासुर वृत्रासुरके शरीरमें शैवज्वर प्रविष्ट होनेपर देवता और ऋषियोंमें महान् हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। अनन्तर सहस्रों शंख, नगाड़े पखावज और डिण्डिम बाजे बजने लगे। सब असुरोंकी इकबारगी स्मृति लुप्त होगई, क्षणभरके बीच प्रबल माया नष्ट हुई। देवता और ऋषि लोग इन्द्रके शरीरमें शिवतेजको प्रविष्ट हुआ जानके प्रशंसा वाक्यसे उनका उत्साह बढ़ाने लगे। युद्धके समयमें जब महानुभाव महेन्द्र रथमें चढ़के ऋषियोंसे स्तुतियुक्त हुए, उस समय उनका रूप अत्यन्त भयानक होगया।

२८० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! जब वृत्रासुर सब तरहसे ज्वरके वशमें हुआ तब उस समय उसके शरीरसे जो सब लक्षण प्रकाशित हुए थे, उसे सुनो। उसका मुख अत्यन्त प्रज्वलित होनेसे विवर्ण होगया उसका शरीर अत्यन्त ही कांपने लगा, श्वास बढ़ने लगा, तीव्ररूपसे रोएं खड़े होगये और लम्बी सांस चलनी आरम्भ हुई। उसके मुखसे अशिवरूप अत्यन्त दारुण महाघोर रूपवाली सियारी निकली, हे भारत! वही उसकी स्मृति शक्ति थी। प्रज्वलित और प्रकाशमान लुक्कोंने उसके दोनों पार्श्वोंको घेर लिया। गृद्ध, कङ्क और बगुले वृत्रासुरके ऊपर इकट्ठे होकर चक्रकी भांति भ्रमण करते हुए दारुण शब्द करने लगे। अनन्तर देवताओंसे आप्यायित आहवके बीच सुरराजने उस रथपर चढ़के हाथमें वज्र लेकर वृत्रासुरकी ओर देखा, हे राजेन्द्र! उस समय तीव्रज्वरसे संयुक्त होकर वह महासुर अमानुष शब्द करके जमुहाई लेने लगा। जब वृत्र जमुहाई ले रहा था, उस ही समय इन्द्रने उसके ऊपर वज्र चलाया, वह कालाग्नि समान अत्यन्त महत् तेजसे युक्त वज्रने शीघ्र ही महाकाय वृत्रासुरको मारके गिरा दिया।

हे भारत! अनन्तर वृत्रासुरको मरा हुआ देखके चारों ओरसे फिर देवताओंकी हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। दानवारि देवराजने विष्णुयुक्त वज्रसे वृत्रासुरको मारके महायशस्वी होकर सुरपुरमें प्रवेश किया। हे कुरुनन्दन! अनन्तर वृत्रासुरके शरीरसे लोक भयावन रौद्ररूपिणी ब्रह्महत्या निकली। हे धर्मज्ञ भरतसत्तम! उसके सब दांत अत्यन्त कराल थे, उसका रूप भयङ्कर और विकृत था, रङ्ग काला और पीला था, उसके केश बिखरे और घोररूपी दोनों नेत्र थे। हे राजेन्द्र! कृत्याकी भांति कपालमालिनी वल्कल वस्त्र धारण करनेवाली रुधिरसे भीगी हुई, वैसी भयङ्कर रूपवाली वह स्त्री निकलते

ही इन्द्रको खोजने लगी। हे कुरुनन्दन ! कुछ कालके अनन्तर वृत्रासुरके मारनेवाले इन्द्र सब लोकोंके हितकी कामनासे स्वर्गकी ओर जारहे थे, उस समय उस ब्रह्महत्याने महातेजस्वी शक्रको निकला हुआ देखकर उन्हें ग्रहण किया और उस ही समयसे उनके शरीरमें लग गई। जब देवराजको ब्रह्महत्याका भय उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने कमलकी मृणालके बीच छिपकर अनेक वर्षतक वास किया था। हे कौरव ! ब्रह्महत्याने भी उनका पीछा कर यत्नपूर्व्वक उन्हें ग्रहण किया, तब वह अत्यन्त निस्तेज होगये। देवेन्द्रने उससे छुटकारा पानेके लिये बहुत यत्न किया, परन्तु किसी प्रकार भी उस ब्रह्महत्यासे न छूट सके। हे भरतकुल शिरोमणि ! अनन्तर सुरराजने उस ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होकर पितामहके निकट जाके सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया। हे भरतसत्तम ! ब्रह्मा उस समय सुरराजको ब्रह्महत्यासे आक्रान्त जानके चिन्ता करने लगे। हे महाबाहु युधिष्ठिर ! उस समय पितामहने ब्रह्महत्याको मधुर वचनसे धीरज देकर कहा, हे भाविनि ! तुम इस देवराजको छोड़के हमारा प्रियकार्य्य साधन करो। कहो मैं तुम्हारी कौनसी कामना सिद्ध करूं; इस समय तुम क्या अभिलाष करती हो ?

ब्रह्महत्या बोली, हे देव ! आप त्रिलोकपूजित और तीनों लोकोंके कर्त्ता हैं, जब आप प्रसन्न हुए हैं, तब मैं अपनी सब कामनाओंको पूर्ण हुई ही समझती हूं। अब मैं कहां वास करूंगी, आप इस विषयमें कोई उपाय निश्चय करिये; आपने लोकरक्षाके लिये यह महती मर्य्यादा स्थापित की है। हे सर्व्व-लोकेश्वर सर्व्वलोक नियामक धर्म्मज्ञ ! आप जब प्रसन्न हुए हैं तब मैं अवश्य ही सुरराजके शरीरसे अन्तर्द्धान हूंगी ; इससे अब मेरे वास करनेके लिये स्थान खोजिये।

भीष्म बोले, प्रजापतिने उस समय ब्रह्महत्यासे कहा, कि "वैसाही होगा।" फिर उन्होंने यत्नके सहित उसे इन्द्रके शरीरसे पृथक् किया। अनन्तर महानुभाव स्वयम्भूने अग्निको स्मरण किया, अग्निने स्मरण करते ही उनके समीप आके कहा, हे भगवन् ! मैं आपके निकट उपस्थित हूं, हे अनिन्दित ! हे देव ! अब मुझे जो कुछ करना हो, उसके लिये आप आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, आज मैं इन्द्रके छुटकाराके निमित्त इस ब्रह्महत्याको कई भागमें विभक्त करूंगा, इसलिये तुम इसके चौथे भागका एक अंश ग्रहण करो।

अग्निदेव बोले, हे लोकपूजित प्रभु ब्रह्मन् ! इससे मैं किस प्रकार मुक्त हूंगा, उसका आप विचार करिये; मैं इसे ही यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

ब्रह्मा बोले, हे हव्यवाह अग्नि ! जो मनुष्य मोहवशसे तुम्हें जलती हुई देखके भी बीजा-ञ्जलि और सोम रससे तर्पित न करेगा, यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करके उसमें ही निवास करेगी, इसलिये तुम अपना मानसिक शोक दूर करो।

भीष्म बोले, हव्यकव्य भोक्ता भगवान अग्निने ऐसा सुनके पितामहका वह वचन अङ्गीकार करके उस ही समय ब्रह्महत्यासे आक्रान्त हुए। हे महाराज ! तिसके अनन्तर पितामह वृक्ष औषधि और तृणोंको आह्वान करके इस विषयकी कहना आरम्भ किया। हे राजन् ! वृक्ष, औषधि और तृणसमूह जपर कहे हुए ब्रह्महत्याके विषयकी सुनके अग्निकी भांति दुःखित होके ब्रह्मासे यह वचन बोले, हे लोक पितामह ! हम ब्रह्महत्यासे कितने समयमें मुक्त होंगे ; हम लोग तो देवके जरिये पहलेसेही अभिहत होरहे हैं, इसलिये फिर हम लोगोंको निहत करना आपको उचित नहीं है। हे

देव! हम सर्दी, वर्षा, वायुके वेग, अग्नि और छेद भेदको सदा सहा करती हैं। हे त्रिलोकेश्वर! अब आपकी आज्ञासे इस ब्रह्महत्याको ग्रहण करेंगी; परन्तु आप हम लोगोंको इससे छूटनेकी उपाय विचारिये।

ब्रह्मा बोले, पर्व्वकालमें जो मनुष्य मोहके वशमें होकर तुम लोगोंको छेदन करेगा वा काटेगा, यह ब्रह्महत्या उसहीकी अनुगत होगी।

भीष्म बोले, अनन्तर वृक्ष ओषधि और तृण समूह ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उनकी सब तरहसे पूजा करके शीघ्र ही निज निज स्थानपर चले गये। हे भारत! तिसके अनन्तर लोक पितामह अप्सराओंको आह्वान करके उन्हें मधुर वचनसे धीरज देके बोले, यह वराङ्गना ब्रह्महत्या रे इन्द्रके शरीरसे निकली है, इस लिये मैं कहता हूं, कि तुम लोग इसका अंश ग्रहण करो।

अप्सरा बोलीं, हे देवेश पितामह! आपकी आज्ञाके अनुसार हम इसे ग्रहण करनेमें सम्मत हुई हैं, परन्तु इससे जिस प्रकार हमारी निष्कृति हो, आप वही उपाय करिये।

ब्रह्मा बोले, जो पुरुष रजस्वला स्त्रीसे मैथुन करेगा यह ब्रह्महत्या उस ही समय उसे आक्रमण करेगी, इसलिये तुम लोग अपनी मानसिक चिन्ता त्याग दो।

भीष्म बोले, हे भरतप्रवर! अप्सराओंने "ऐसा ही होवे" यह वचन कहके प्रसन्नचित्त होकर निज निज स्थानमें जाकर क्रीड़ा करने लगीं। फिर महातपस्वी त्रिलोककर्त्ता प्रजापतिने जलको स्मरण किया, स्मरण करते ही वह आके उपस्थित हुआ। हे राजन्! वह अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माके निकट जाके उन्हें प्रणाम करके यह वचन बोला। हे देव अरिन्दम! आपके शासनके अनुसार हम आपके निकट आये हैं, हे प्रभु लोकेश! हमें क्या करना होगा, उसके लिये आज्ञा करिये।

ब्रह्मा बोले, यह महाभयावनी ब्रह्महत्या वृत्रासुरसे प्रकट होके इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, इस समय तुम इसका अंश ग्रहण करो।

जल बोला, हे प्रभु लोकेश! आपने मुझसे जो कहा वही होगा, परन्तु समयके अनुसार मैं जिस प्रकार इससे छूटूं आपको वैसा ही उपाय सोचना उचित है। हे देवेश! आप ही सब जगत्के एक मात्र अवलम्ब हैं, आपको छोड़के दूसरे किसको प्रसन्न करें, जो हमें क्लेशसे उबारेगा।

ब्रह्मा बोले, जो मनुष्य मोहके वशमें होकर अल्प विचार करके तुम्हारे ऊपर मूत्र, श्लेष्म और विष्ठा परित्याग करेगा, यह ब्रह्महत्या शीघ्र ही उसे अवलम्बन करेगी और उसमें ही वास करती रहेगी, इस ही प्रकार तुम्हारी इससे निष्कृति होगी, यह मैंने तुम्हारे समीप यथार्थ कहा है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! अनन्तर ब्रह्महत्या इन्द्रको परित्याग करके ऊपर कहे हुए स्थानोंमें गई। हे प्रजानाथ! इस ही प्रकार ब्रह्महत्या इन्द्रके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी, उन्होंने पितामहकी कृपासे उससे छूटकर अन्तमें उनकी आज्ञासे अश्वमेध यज्ञ किया। हे महाराज! मैंने सुना है, कि देवराज ब्रह्महत्यासे आक्रान्त होनेपर शेषमें अश्वमेध यज्ञ करके पवित्र हुए थे। हे पृथ्वीनाथ! देवराजने सहस्रारि शत्रुओंको संहार करके श्रीसे युक्त होकर आनन्दित हुए थे। हे पृथापुत्र! वृत्रासुरके रुधिरसे जो शिखण्ड नाम कुक्कुट उत्पन्न हुए थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और विशेष करके दीक्षित तपस्वियोंके अभक्ष्य हैं। हे कुरुनन्दन! तुम भी सब समयमें इन सब द्विजातियोंके प्रिय कार्य्य को सिद्ध करो, येही पृथ्वी मण्डलपर देवतारूपसे विख्यात हैं। हे कुरुकुल धुरन्धर! इस ही प्रकार अत्यन्त तेजस्वी सुरपतिने सूक्ष्मबुद्धिके सहारे उपाय रचके महासुर

वृत्रको मारा था। हे कुन्तीनन्दन! तुम भी शत्रुनाशन देवराज आखण्डलकी भांति अखण्ड पृथ्वीमण्डलपर अपराजित रहोगे। जो प्रति पर्व्वमें इस दिव्य देवेन्द्र कथाको विप्रोंके बीच कहेंगे, उन्हें कभी पापस्पर्श न कर सकेगा। हे तात! तुम्हारे निकट यह सुरपति और वृत्रासुरका अत्यन्त अद्भुत महत् कर्म्म वर्णन किया अब क्या सुननेकी अभिलाषा करते हो?

२८१ अध्याय समाप्त।

वृत्र वध समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्व शास्त्र विशारद महा प्राज्ञ पितामह! वृत्रवध निबन्धनसे इस विषयमें मुझे यह पूछनेकी इच्छा है, कि आपने जो कहा है, कि वृत्रासुर ज्वरसे मोहित होकर इन्द्रके जरिये वज्रसे मरा। हे महाप्राज्ञ! वह ज्वर किस प्रकार और कहांसे उत्पन्न हुआ था। उस ज्वरकी उत्पत्तिके विषयको मैं यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भारत! इस लोक विख्यात् ज्वरकी उत्पत्तिका जैसा विषय है, उसे विस्तारके सहित कहता हूं सुनो। हे महाराज! पहिले समयमें सुमेरु पर्व्वतपर त्रिलोकपूजित, सब रत्नोंसे विभूषित और सवितृमण्डलाधिष्ठित ज्योतिष्क नाम एक शृङ्ग था। हे भारत! सब लोकोंके बीच वह शृङ्ग ही अप्रमेय और अधर्षणीय था, देवोंके देव सुवर्ण भूषित पर्य्यङ्कको भांति उस शैलतलमें बैठकर बिराजते थे। शैलराजपुत्री सदा उनके पार्श्ववर्त्तिनी रहके शोभा पारही थीं; और महानुभाव देववृन्द, अत्यन्त तेजस्वी वसुगण, भिषग्वर महात्मा दोनों अश्विनीकुमार यक्षोंके राजा कैलासवासी गुह्यकोंसे घिरे हुए श्रीमान् कुबेर और महामुनि शुक्र उस महात्माकी उपासना कर रहे थे। सनत्कुमार आदि महर्षि अङ्गिरा आदि देवऋषि, विश्वावसु नाम गन्धर्व्व, महर्षि नारद और पर्व्वत तथा बहुतसी अप्सरा वहांपर उपस्थित हुईं। उस समय विविध सुगन्धियुक्त सुखस्पर्श पवित्र और कल्याणकर वायु बहने लगा वृक्ष सब ऋतुके पुष्पोंसे युक्त होकर फूलोंसे सुशोभित हुए। हे भारत! विद्याधर, सिद्ध और तपस्वी लोग देवोंके देव पशुपतिकी सब प्रकारसे उपासना करने लगे। हे महाराज! अनेक रूपवाले भूतवृन्द, महा रौद्र राक्षसगण-महाबलवान पिशाच और महादेवके अनेक रूप तथा नाना शस्त्रोंको धारण करके प्रसन्न चित्तवाले सब सेवक वहांपर अग्निके समान रूप धरके स्थित थे। भगवान् नन्दी निज तेजसे प्रकाशित होकर प्रज्वलित शूल लेकर महादेवकी आज्ञानुसार वहां खड़े थे। हे कुरुनन्दन! सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न हुई सरिद्वरा गङ्गा मूर्त्तिमान् होकर उस देवकी उपासना कर रही थीं। वह महातेजस्वी भगवान् महादेव इस ही प्रकार देवर्षि और देवताओंसे सब प्रकार पूजित होकर वहां निवास करते थे, कुछ समयके अनन्तर दक्ष नामक प्रजापतिने पूर्व्वोक्त विधानके अनुसार यज्ञ करना आरम्भ किया। इन्द्रादि सब देवता उस समय सम्मत होके उनके यज्ञमें जानेके अभिलाषी हुए। ऐसा सुना जाता है, कि देवताओंने उन महादेवकी अनुमतिके अनुसार अर्क और गङ्गा द्वारमें गमन किया था। उस समय साध्वी शैलराजपुत्री देवताओंको जाते हुए देखकर निजपति देवोंके देव पशुपतिसे यह वचन बोली, हे तत्त्वज्ञ भगवन्! ये इन्द्र आदि देवता कहां जा रहे हैं। उसे आप यथार्थ रीतिसे कहिये; मुझे अत्यन्त सन्देह होरहा है।

महादेव बोले, हे महाभागे! दक्ष नाम प्रजापतिने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है, देवता लोग उस ही यज्ञमें गये हैं।

शर्व्वाणी बोली, आपने किस लिये उस

यज्ञमें गमन नहीं किया और किस प्रतिषेधके अनुसार आपका वहां जाना नहीं होता है।

महादेव बोले, हे महाभागे! पहले समयमें देवताओंने जो अनुष्ठान किया था, उस किसी यज्ञमें ही मेरा भाग कल्पित नहीं हुआ है वरवर्णिनि! पूर्व्व-अनुष्ठानपद्धतिके क्रमसे देवता लोग धर्म्मके अनुसार मुझे यज्ञभाग प्रदान नहीं करते।

भवानी बोली, हे भगवन्! आप गुणोंसे सब भूतोंके बीच अत्यन्त प्रभावसे युक्त हैं; तेज, यश और श्रीसम्पत्तिसे सबसे ही अजय और अधृष्य हैं, हे अनघ महाभाग! इसलिये आपके यज्ञभाग प्रतिषेधसे मुझे बहुत ही दुःख उत्पन्न हुआ है और सब शरीर शिथिल होरहा है।

भीष्म बोले, हे राजन्! देवीने देवोंके देव पशुपतिसे ऐसा कहके दह्यमान अन्तःकरणसे मौनावलम्बन किया। अनन्तर भगवान् देवीके हृदयके चिकिर्षित विषयको जानके नन्दीको "तुम निवास करो" इस ही प्रकार आज्ञा करी अन्तमें वह सर्व्वयोगेश्वर महातेजस्वी पिनाकधारी महादेव योगबल अवलम्बन करके भयङ्कर अनुचरोंके सहारे सहसा उस यज्ञको विध्वंश करनेके लिये उद्यत हुए। हे राजन्! भूतोंके बीच किसी किसीने अत्यन्त दारुण शब्द करना आरम्भ किया, कोई विकट रूपसे हंसने लगे, किसीने उस यज्ञस्थलमें रुधिर प्रवाहके जरिये हव्यवाहको पूरित कर दिया। कोई कोई विकृतानन प्रमथगण यज्ञके यूपोंको उखाड़के घूमने लगे किसी किसीने मुखके जरिये परिचारकोंको ग्रास कर लिया। हे राजन्! अनन्तर उस यज्ञने सब प्रकारसे बध्यमान होकर हरिनका रूप धरके आकाशकी ओर गमन किया। निग्रहानिग्रहमें समर्थ शूलपाणिने उस यज्ञको मृगरूप धरके जाते हुए जानके धनुष बाण ग्रहण करके उसका पीछा किया। तिसके अनन्तर क्रोधके कारण उस अत्यन्त तेजस्वी महादेवके ललाटसे महाघोर पसीनेकी बूंद प्रकट हुई वह पसीनेकी बूंद पृथ्वीपर गिरते ही उस समय कालानल सदृश अत्यन्त महान् अग्नि प्रकट हुई। हे पुरुषप्रवर! तब उस अग्निसे एक भयङ्कर पुरुष उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त ह्रस्व शरीरवाला था, उसके दोनों नेत्र लाल, श्मश्रु, पिङ्गलवर्ण, केश ऊपरको बढ़े हुए थे और बाज तथा उलूकको भांति उसका सब शरीर रोमयुक्त था। वह लाल वस्त्र काला वर्णवाला प्रबलपराक्रमी कराल पुरुष यज्ञको इस प्रकार जलाने लगा, जैसे अग्नि तृणसमूहको भस्म करती है। उस पुरुषने सब भांतिसे देवताओं और ऋषियोंकी ओर दौड़के उपद्रव मचाना आरम्भ किया, देवता लोग उससे डरके दशों दिशामें भाग गये। हे भरतश्रेष्ठ महाराज! उस समय उस पुरुषके भ्रमण करनेसे पृथिवी अत्यन्त ही विचलित हुई और सारा जगत् हाहाकार करने लगा,—उसे देखके प्रजापति पितामह महादेवके निकट उपस्थित हुए।

ब्रह्मा बोले, हे प्रभु सर्व्व देवेश्वर! सब देवता तुम्हें यज्ञका भाग प्रदान करेंगे, इसलिये तुम क्रोध परित्याग करो। हे परन्तप! हे महादेव! ये सब देवता और ऋषि लोग तुम्हारे क्रोधसे किसी प्रकार शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे देवश्रेष्ठ! हे धर्म्मज्ञ! जो पुरुष तुम्हारे स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न हुआ है, वह लोकके बीच ज्वर नामसे विख्यात होगा। हे प्रभु! तुम्हारे एक भूतके तेजको धारण करनेमें सारी पृथ्वी भी समर्थ नहीं है, इसलिये इसे कई प्रकारसे विभक्त करो महादेवने प्रजापतिका वचन सुन और अपना यज्ञ भाग प्रकल्पित हुआ जानके अमित तेजस्वी सब ऐश्वर्य्यसे पूर्ण शिवने ब्रह्मासे कहा कि "ऐसा ही होगा।" तब पिनाकधारी महादेव प्रजापतिके दिये हुए यथा उचित यज्ञभागको पाकर परम प्रीतिके सहित उत्साह युक्त हुए और वह सर्व्वधर्म्मज्ञ

सदाशिव सब प्राणियोंकी शान्तिके निमित्त प्रागुक्त ज्वरको अनेक प्रकारसे विभक्त करने लगे। हे तात! उन्होंने जिस जीवमें जिस प्रकार उस ज्वरको स्थापित किया उसे सुनो। हे धर्मज्ञ! हाथियोंमें शिरस्ताप, पर्व्वतोंमें शिलाजीत, जलमें सिवार, सांपोंमें केचुलि, और भैयोंमें खुर रोग पृथिवीमें ऊसरपन, पशुओंमें दृष्टि अवरोध, घोड़ोंमें गल छिद्रके मांसखण्ड, मोरोंमें शिखोद्भेद और कोकिलोंमें नेत्र रोग, ये सबको उक्त महानुभावने ज्वर रूपसे वर्णन किया है और मैंने ऐसा सुना है, कि मेष जातीय पशुमात्रमें पित्तभेद ज्वर रूपसे निर्णीत हुआ है। हे धर्मज्ञ भारत! यह ज्वर मनुष्योंके जन्म मरण और जन्म मरणके मध्यकालमें सदा मनुष्य शरीरमें प्रवेश करता है। महादेवका तेज स्वरूप यह अत्यन्त दारुण सर्व्वनियन्ता ज्वर सब प्राणियोंका नमस्य और माननीय है। धार्म्मिक प्रवर वृत्रासुर इस ही ज्वरसे आक्रान्त होके जमुहाई लेने लगा, तब देवराजने उसके ऊपर वज्र चलाया था। हे भारत! इन्द्रका चलाया हुआ वह वज्र वृत्रासुरके शरीरमें प्रविष्ट होके उसे बिदार किया था। महायोगी महासुर वृत्रने वज्रसे मरकर अत्यन्त तेजसे विष्णुके परम धाममें गमन किया, उस समय उसकी विष्णुभक्तिसे यह सब जगत् व्याप्त हुआ था, इसलिये वृत्रासुरने युद्धमें मरके विष्णुका स्थान प्राप्त किया। हे पुत्र! यह मैंने तुम्हारे निकट वृत्र संक्रान्त महत् ज्वरका विषय विस्तारके सहित कहा है, अब दूसरा कौनसा विषय वर्णन करूं; जो लोग निर्भय चित्त और सावधान होकर इस ज्वरकी उत्पत्तिका विषय सदा पाठ करते हैं, वे रोग रहित, अत्यन्त सुखी और आनन्दित होकर सब अभिलषित विषयोंको पाते हैं।

२८२ अध्याय समाप्त।

जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! वैवस्वत मन्वन्तरमें प्रचेताके पुत्र प्रजापति दक्षका अश्वमेध यज्ञ किस प्रकार विनष्ट हुआ था। देवीको क्रोधित जानके सर्व्वमय महादेव क्रुद्ध हुए थे; फिर दक्षने उनकी कृपासे पुनर्व्वार किस प्रकारसे उस यज्ञको पूर्ण किया था। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये आप यथार्थ रीतिसे उसे वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पहले समयमें हिमालय पर्व्वतपर गन्धर्व्व अप्सराओंसे युक्त अनेक वृक्ष लताओंसे परिपूरित गंगाद्वारमें दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया। उस यज्ञमें भूर्लोक, स्वर्गलोक और आकाशचारी सब लोग ऋषियोंके सहित धर्म्मात्मा प्रजापति दक्षके निकट हाथ जोड़के उपस्थित हुए थे। देवता, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प, राक्षस और हाहा हूहू नाम गन्धर्व्व, तथा तुम्बुरु, नारद, विश्वावसु, विश्वसेन आदि गन्धर्व्व, समस्त अप्सरा, आदित्यगण, वसु, रुद्र, साध्य और मरुद्गण आदि सब देवता इन्द्रके सहित वहांपर आये थे। उष्मपा, सोमपा, धूमपा और आज्यपा आदि ऋषि भी पितरों तथा ब्रह्माके सहित वहां इकट्ठे हुए थे। ये सब तथा दूसरे बहुतेरे प्राणी जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ये चारों प्रकारके जीव आमन्त्रित होके वहां उपस्थित हुए थे। निमन्त्रित देवतावृन्द निज निज स्त्रियोंके सहित विमानोंमें निवास करते हुए प्रज्वलित अग्निकी भांति बिराजते थे। दधीचि उन लोगोंको देखकर क्रुद्ध होके बोले, जिस यज्ञमें भगवान् रुद्रदेव पूजित न हों, वह यज्ञ अथवा धर्म्म नहीं है; समयकी कैसी उलटी गति है, सबका ही सर्व्वनाश उपस्थित हुआ है, इस महायज्ञमें महाघोर प्राणिनाश होनेवाला है, मोह वशसे कोई उसे देखने वा जाननेमें समर्थ नहीं होता है। महायोगी दधीचि इतना कहके ध्यानयुक्त नेत्रसे देखने लगे।

उन्होंने भगवान् महादेव तथा वरदात्री देवीका दर्शन किया और देखा कि महात्मा नारद देवीके निकट वर्त्तमान हैं। योगीश्वर महर्षिने योगबलसे यह सब देखकर परम सन्तुष्ट होके विचारा, कि इस यज्ञमें जब भगवान् शङ्कर नहीं निमन्त्रित हुए, तब देवताओंने मिलके एकमत किया है, इससे इसके निकटसे कुछ दूरपर मुझे निवास करना उचित बोध होता है। दधीचि मनहीमन ऐसा निश्चय करके वहांसे पृथक् होकर बोले, कि पहले मैंने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा और कदाचित कहूंगा भी नहीं; देवता और ऋषियोंके बीच सत्य वचन ही कहता हूं,—अपूज्योंकी पूजा करने और पूज्य पुरुषकी पूजा न करनेसे मनुष्य नर हत्याके समान पापभाजन होता है। देखो जगत्पति विश्वस्रष्टा यज्ञभोक्ता सर्व्वेश्वर पशुपति इस अध्वरमें आरहे हैं।

दक्ष बोले, हाथमें त्रिशूल लिये जटाजूटधारी जो ग्यारह रुद्रगण विद्यमान हैं, वे मुझे अविदित नहीं हैं; परन्तु मैं महादेवको विशेषरूपसे मालूम न कर सका।

दधीचि बोले, जब महादेव इस यज्ञमें निमन्त्रित नहीं हुए, तब मुझे बोध होता है, सब देवताओंने आपसमें सलाह करके एकता की है; जो हो दक्षका यह वृहत् यज्ञ किसी प्रकार भी सिद्ध न होगा।

दक्ष बोले, मैंने इस सुवर्णपात्रमें विधि और मन्त्रपूत समस्त हवि स्थापित करके यज्ञपति अप्रतिम विष्णुके उद्देश्यसे समर्पण किया। ये सर्व्वव्यापी यज्ञपति विष्णु यज्ञभाग ग्रहण करनेके अधिकारी हैं, इसलिये उनके उद्देश्यसे आहुति देनी विहित है।

देवी बोली, मैं किस प्रकार दान, नियम वा तपस्या करूं, जिससे कि मेरे पति अचिन्त्य शक्ति भगवान् इस समय आधा वा तीसरा भाग पावेंगे।

नित्य सन्तुष्ट भगवान निज पत्नीको क्षुब्धचित्तसे ऐसा कहते हुए सुनकर बोले, हे कृशोदराङ्गि देवि! क्या तुम मेरी महिमा भूल गई हो; तुम्हारा ऐसा वचन क्या युक्तिसङ्गत हुआ है। हे विशाललनयनो! मैं जानता हूं, कि ध्यानहीन असत् पुरुष ही मुझे नहीं जानते; इन्द्रके सहित सब देवता और तीनों लोक तुमसे युक्त मोहके जरिये सब प्रकारसे विमूढ़ हुए हैं। प्रस्तोता साधु लोग अध्वरमें मेरी स्तुति किया करते हैं; साम गान करनेवाले ब्राह्मण रथन्तर सामरूपी मेरी महिमा गाया करते हैं; ब्रह्मविद् ब्राह्मण लोग मेरा यजन किया करते हैं और यजुर्व्वेदी अध्वर्य्युगण मेरे उद्देश्यसे यज्ञभाग प्रदान करनेमें तत्पर हुआ करते हैं।

देवी बोली, अत्यन्त साधारण पुरुष भी स्त्रियोंके निकट निःसन्देह आपकी प्रशंसा और गर्व्व किया करते हैं।

भगवान बोले, हे तनुमध्यमें वरारोहे वरवर्णिनि देवेशि! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता हूं, इस समय जिसे उत्पन्न करता हूं उसे देखो भगवानने प्राणसे भी अधिक प्यारी निज पत्नी उमासे ऐसा कहके निज वक्रसे ज्वालमाला संयुक्त शरीरवाले अनेक प्रकार भुजरूपी शस्त्रधारी महाघोर प्रहर्षण एक अद्भुत भूत उत्पन्न किया। वह भूत उत्पन्न होतेही भगवानके समीप हाथ जोड़के बोला, कि "क्या आज्ञा है।" महादेवने उसे दक्षके यज्ञको विध्वंस करनेकी आज्ञा दी।

अनन्तर महादेवके वक्रसे उत्पन्न हुआ सिंहके समान उस वीरने अकेलेही देवीका क्रोध शान्त करनेके लिये दक्षके यज्ञको खेलकी भांति विध्वंस किया। महाभीमा महाकाली माहेश्वरी मन्युवशसे महादेवकी आज्ञा लेकर उनके चरणमें प्रणाम करके आत्मकर्म्म साक्षिल साधन विषयमें उसके सहित अनुगामिनी हुईं, पराक्रममें अपने समान बल और रूपसे युक्त

उन भगवान महेश्वरने ही क्रोध स्वरूप धारण किया। अनन्त बल वीर्य्यसे युक्त अशेष पौरुषके आधार महादेव देवीके मन्यु-मार्ज्जनके निमित्त वीरभद्र नामसे विख्यात हुए। उन्होंने निज रोमकूपोंसे रौम्य नामक गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। अनन्तर वे सब रुद्रके समान वीर्य्यवान और पराक्रमशाली रौद्रगण दक्ष यज्ञको विध्वंस करनेके लिये शीघ्रही वहांसे बाहर हुए। सो हजार भीमरूप महाकाय गणोंने किलकिला शब्दसे आकाशमण्डलको परिपूरित किया। यज्ञस्थलमें उनके उस भयङ्कर शब्दसे देवता लोग भयभीत हुए पर्व्वत टूटने लगे और पृथ्वी कांपने लगी; वायु घूमते हुए चलने लगा और समुद्रका जल उथलने लगा; अग्नि निस्तेज हुई और सूर्य्य प्रभाहीन होगया; ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमण्डल प्रकाशरहित होगये; देव, ऋषि और मनुष्य अप्रकाशित होकर स्थित हुए। इसी प्रकार सब जगत अन्धकारसे छिप गया, महादेवके अनिमन्त्रणसे अवमानित होकर रुद्रगण सबको जलाने तथा उनके ऊपर प्रहार करनेमें प्रवृत्त हुए। किसी किसीने घोर प्रचण्ड मूर्त्तिधारण करके यज्ञ यूपोंको उखाड़ा, कोई यज्ञस्थलके सब लोगोंको मर्द्दन करने लगे। वायुके समान वेगशाली मनोजव गणोंने दौड़के यज्ञपात्रों और दिव्य आभरणोंको चूर्ण कर दिया। उक्त यज्ञपात्र और सब आभरण टूटनेपर आकाशमण्डलमें स्थित तारा समूहकी भांति दिखाई देने लगे। दिव्य अन्न, पीने और खानेकी वस्तुओंकी पर्व्वतके समान राशि तथा घृत, दूधरूपी कीचड़ और दही मट्ठे रूपी जल तथा खांड़ शक्कर रूपी बालूसे युक्त प्रकाशमान षड़्रसवाली गुड़कुल्या मनोरम दिव्य क्षीरकी नदियें बहती हुई दिखाई देने लगीं। रुद्रकोपसे कालाग्निके समान महाकाय गण अनेक प्रकार मांस, बहुतसी खाने पीने और दिव्य लेह्य तथा चुष्य वस्तुओंको अनेक प्रकारके रूपसे भोजन करने लगे, किसी किसीने प्राशुक्त भक्ष्य वस्तुओंको लुप्त किया किसीने उठाके फेंक दिया। विविध रूपवाले गणोंने देवताओंको सेनामें सब तरहसे विभीषिका प्रदर्शित करके उसे विद्रुत कर दिया और सुरयोषितोंको गिराके क्रीड़ा करने लगे। रुद्रकर्म्मा वीरभद्रने रुद्र क्रोधके वशमें होकर यत्नपूर्व्वक देवताओंसे रक्षित उस यज्ञको शीघ्र ही भस्म कर दिया और यज्ञका सिर काटके प्रसन्न होकर सर्व्वभूत भयङ्कर भैरव नाद करने लगे। अनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, और प्रजापति दक्षने हाथ जोड़के कहा, "आप कौन हैं; यही वर्णन करिये।"

वीरभद्र बोले, मैं रुद्रदेव नहीं हूं, ये भी देवी नहीं हैं, और हम लोग यहांपर भोजन करनेके लिये नहीं आये हैं। देवीको क्रुद्ध हुई जानके सर्व्वात्मा महादेवने क्रोध किया है। मैं विप्रेन्द्रगणोंको देखने वा कौतूहलसे यहां नहीं आया हूं, तुम यह निश्चय जानो, कि मैं तुम्हारे यज्ञको विध्वंस करनेके निमित्त आया हूं। मैं रुद्रकोपसे उत्पन्न होके वीरभद्र नामसे विख्यात् हूं, और ये भी देवीके क्रोधसे प्रकट होके भद्रकाली नामसे विख्यात् हुई हैं। हम दोनों महादेवसे प्रेरित होकर इस यज्ञ स्थलमें उपस्थित हुए हैं। हे विप्रेन्द्र! इसलिये अब तुम देवोंके देव उमापतिकी शरणमें जाओ, महादेवका क्रोध भी उत्तम है, और दूसरेसे वर प्राप्त होना भी कार्य्यकारी नहीं है।

धार्म्मिक प्रवर प्रजापति दक्ष वीरभद्रका वचन सुनके महादेवको प्रणाम करके स्तुति-वाक्यसे उन्हें प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त हुए।

दक्ष बोले, "मैं दक्ष प्रजापति हूं, इस समय नित्य, निश्चल, अव्यय, समस्त जगत्‌के ईश्वर, महानुभाव महादेव ईशानका शरणागत होता हूं।" जिस यज्ञमें इकट्ठी की हुई यज्ञीय वस्तुओंके जरिये सब देवता और तपस्वी ऋषिवृन्द बुलाये गये हैं, उसमें विश्वकर्म्मा महेश्वर निम-

न्नित नहीं हुए ; इसीसे महादेवीने क्रोधित होकर इस यज्ञ स्थलमें निज गणोंको भेजा है यज्ञस्थलके जलने ब्राह्मणोंके भागने और भयङ्कर अग्नि तारासमूहमें प्रविष्ट होनेपर तथा परिचारकोंके शूलसे भिन्न हृदय होके चिल्लाते रहनेपर गणोंने निखात यूपोंको उखाड़के उसहीसे सेवकोंको मारते हुए इधर उधर भगाना आरम्भ किया, मांसलोभी गिद्ध सब ओर उड़ने लगे, उनके पंखकी वायुसे सब लोक कांप उठे, सैकड़ों सियार भयावनी बोली बोल रहे थे, यक्ष, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प और राक्षसोंसे यज्ञभूमि भर गई, शत्रुविजयी अनेक नेत्रवाले देवोंके ईश्वर महादेव यत्नपूर्व्वक वक्रसे प्राण और अपान वायुको निरोध करके सब तरफ देखते हुए सहसा अग्निकुण्डसे प्रकट भये। महादेव उस समय सम्वर्त्तक समान सहस्र सूर्य्यका तेज धारण करके हंसकर दक्षसे बोले, कहो तुम्हारा कौनसा कार्य्य सिद्ध करूं ? अनन्तर देवगुरुने यज्ञाध्याय श्रवण कराया, तब प्रजापति दक्ष भयभीत, शङ्कित तथा डरवश होकर दुःखित शरीरसे आंखोंमें आंसू भरके हाथ जोड़कर कहने लगे।—दक्ष बोले, हे भगवान ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हों, अथवा यदि मैं आपका प्रियपात्र समझा जाऊं, अथवा मुझपर कृपा करके यदि आप बरदान करें, तो मैंने बहुत समयतक अनेक प्रयत्नोंसे जो जो सब यज्ञकी सामग्री सञ्चय की थी, जो आपकी आज्ञाके अनुसार खायी, पीयी, जलाई, नष्ट बिध्वंस और चूर की गई, मेरे यज्ञकी शाधन वे सब वस्तु जिसमें व्यर्थ न हों, मैं यही वर मांगता हूं।

धर्म्माध्यक्ष देव बिरूपाक्ष त्रिलोचन प्रजानाथ रबिनेत्र भगवान दक्षसे "वही होगा" ऐसा बचन कहा अनन्तर दक्ष महादेवसे वर पाकर दोनों जानु पृथ्वीपर रखके एक सौ आठ नामके सहारे वृषभध्वजकी स्तुति करने लगे।

२८३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पापरहित पितामह ! प्रजापति दक्षने जिन सब नामोंके जरिये महादेवकी स्तुति की थी आप वह सब बर्णन करिये, मुझे उन नामोंके सुननेकी अत्यन्त श्रद्धा होरही है।

भीष्म बोले, हे भारत ! अद्भुतकर्म्म करनेवाले महादेवके अप्रकाश्य और प्रकाश्य नामोंको सुनो।

दक्ष बोले, हे जगन्निर्माण क्रीड़ा परायण देवारि बल सूदन देवेश ! तुम इन्द्रियों और बुद्धिके बलको विशेष रूपसे स्तब्ध किया करते हो, तुम इन्द्रादि देवताओं और बाण प्रभृति दानवोंसे पूजित हो, तुम सहस्राक्ष अर्थात् सर्व्वज्ञ हो और हम लोगोंसे विलक्षण व्यवहित विषयोंको जानते हो, इसीसे विरूपाक्ष हो ; तुम सोम सूर्य्य और अग्नि रूपी तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही लिये त्रिलोचन कहाते हो ; तुम यक्षाधिपति कुबेरके ऊपर प्रीति किया करते हो इससे तुम्हें नमस्कार है। हे देव ! सब दिशाविभाग ही तुम्हारे कर चरणके समीप विद्यमान हैं, सब दिशामें ही तुम्हारे नेत्र, सिर और मुख प्रकाशित होरहे हैं ; सर्व्वत्र तुम्हारे श्रोत्र (कान) फैले हुए हैं, तुम लोकके बीच सब वस्तुओंमें परिपूरित होकर निवास कर रहे हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुम्भकर्ण, अर्णवालय, गजेन्द्रकर्ण, गाकर्ण और पाणिकर्ण, इन सात प्रकारके निजगणोंसे अभिन्न हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम शतोदर, शतावर्त्त और शतजिह्वरूपी विश्वरूप हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तीनों सन्ध्या, गायत्री हो, जपमें रत मुनि लोग तुम्हारी ही महिमा गाया करते हैं, सूर्य्यको उपासनामें तत्पर मनुष्य तुम्हें ही सवितमण्डलाधिष्ठित जानके उपासना करते हैं। मुनि लोग तुम्हें ही शतक्रतु समझते और तुम्हें ही

सर्व्व उपाधिगम्यजड़गत आकाशकी भांति प्रसङ्ग बोध किया करते हैं।

हे समुद्र और आकाशरूप महामूर्त्ते! तुममें भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा और यजमानस्वरूप अष्टमूर्त्तिके बीच गोसारमें गौओंकी भांति सब देवता ही निवास करते हैं। तुम्हारे इस शरीरमें चन्द्रमा, अग्नि, आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा और बृहस्पतिको देखता हूं। तुम्हीं सब ऐश्वर्य्यसे युक्त होकर सत् और असत् पदार्थोंके कारण स्वरूप हो, तुम ही उत्पत्ति और प्रलयके कारण हो। तुम्हीं वरदाता, भव, सर्व्व और रुद्रदेव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्धक दानवको मारनेवाले पशुपति हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम त्रिजटा, त्रिशीर्ष, त्रिशूलपाणि हो; तुम शास्त्र, आचार्य्य और ध्यानरूप तीन नेत्र धारण करते हो, इस ही कारण त्र्यम्बक और चन्द्रमा, सूर्य्य तथा अग्निरूपी तीनों नेत्र प्रकट किये हो, इसीसे त्रिनेत्र कहाते हो, त्रिपुर दानवका वध करनेसे तुम्हारा त्रिपुरघ्न नाम हुआ है, इससे तुम्हें नमस्कार है। सबको संहार करनेमें समर्थ होनेसे तुम्हारा चण्डनाम हुआ है, तुम अपनेमें जगत्को धारण करनेमें समर्थ हो, इसीसे कुम्भ नामसे विख्यात हुए हो, तुम ब्रह्माण्ड स्वरूप हो और ब्रह्माण्डको धारण कर रहे हो; तुम सबके शासनकर्त्ता होनेसे दण्डी नामसे अभिहित हुआ करते हो, तुम सीधे और टेढ़े हो; तुम दण्डधर और परिव्राजक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम ऊर्द्ध्वदंष्ट्र और ऊर्द्ध्वकेश हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विशुद्ध हो और जगत् रूपसे विस्तृत हो; तुम विलोहित धूम्रवर्ण और नीलग्रीव हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विरूप हो तथा तुम्हारे प्रतिरूपमें कोई भी नहीं है और तुम शिवस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सूर्य्यमण्डल स्वरूप हो और सूर्य्यमण्डलके मध्यवर्त्ती परमेश्वर तथा सूर्य्यके समान पताकायुक्त हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रमथनाथ, वृषस्कन्ध, धनुर्द्धारी, शत्रुदमन, दण्डधारी और पर्णचीर पटधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यके जरिये कृतचूड़ और हिरण्यपति हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्तुत, स्तुत्य और स्तूयमान हो, तुम्हीं सर्व्वस्वरूप, सर्व्वभक्ष और सब भूतोंकी अन्तरात्मा हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम होता और मन्त्रस्वरूप हो, तुम ही शुक्लवर्ण ध्वज पताकाशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम समस्त जगत्के नाभिस्थानीय हो, कार्य्य कारण प्रपञ्चरूप और सब आवरणोंके आवरक हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम कृशनास, कृशाङ्ग कृश और संहृष्ट हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम किलकिला शब्द विशेष स्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शयमान, शयित, उत्थित, अवस्थित तथा धावमान हो, तुम मुण्ड और जटी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम मुखवाद्य करते हुए नर्त्तकशील, नदोमें उत्पन्न पद्म पुष्प उपहारमें लुब्ध और गीतवादित्रशाली हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सबसे अवस्थामें ज्येष्ठ और गुणोंमें सबसे अधिक होनेसे श्रेष्ठ हो, तुम बलके अभिमानी देवेन्द्रके प्रमथनकारी हो; तुम कालके नियन्ता और सब कार्य्योंमें समर्थ हो; तुम महाप्रलय और अवान्तर प्रलयस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है भयङ्कर दुन्दभी नक्कारे आदि बाजेकी भांति तुम्हारी हांसी है, तुम अनशन आदि व्रत करते हो, तुम प्रचण्डरूप दशबाहु हो, इससे तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम कपालपाणि और चिताभस्म प्रिय हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम निर्भय और भयङ्कर हो, तथा शम दम आदि व्रतोंके जरिये तुम्हें जाना जा सकता है, इस ही लिये तुमने

भीमव्रतधर नाम धारण किया है, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विकृत वक्र, खड्गजिह्व दंष्ट्री हो, तुम पक्वान्न वा आम मांसके लोभी हो और तुम्बी-निर्म्मित वीणाप्रिय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम दृष्टिकर्त्ता, धर्म्मयुक्त, धर्म्म, दृष्टिकारी और धर्म्म हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वायु आदि रूपसे नित्य गमनशील नियन्ता और सब प्राणियोंके संहारकर्त्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सबसे वरिष्ठ श्रेष्ठ और वरदाता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम उत्तम माला, वस्त्र और सुगन्ध धारण किया करते हो; तुम लोगोंके अभिलषित वरसे भी अधिक वरदान करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम अनुरक्त और विरक्त हो, तुम ही ध्यानकर्त्ता तथा अक्षिमाली हो; तुम छाया रूप और आतप हो, और तुम कारण रूपसे सर्व्वत्र अनस्युत तथा कार्य्य रूपसे व्यावृत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं अघोर तथा घोररूपी हो तुम सब भयङ्कर पदार्थोंसे भी भयङ्कर हो; तुम शिव, शान्त और शान्ततम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम एकपाद और बहुनेत्र तथा एकशीर्ष हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम क्षुद्र, क्षुद्रलुब्ध और सांख्यभागप्रिय हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम स्वर्णकार, लोहकार और भर्च्चादि कर्म्मकर्त्ता विश्वकर्म्मा, शिताङ्ग और नित्य शान्त हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम शत्रुओंको शासन करनेके लिये भयङ्कर घण्टा धारण किया करते हो और तुम स्वयं घण्टानाद स्वरूप तथा नादके अभावमें भी तुम नादावशिष्ठ अर्थात् अनाहत ध्वनि-विशिष्ट हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम योगबलसे एक ही बार सहस्र घण्टा निनाद करनेमें समर्थ हो, तुम घण्टामालाप्रिय हो, तुम्हारा प्राणवायुमें ही घण्टाकी भांति शब्दका हेतु है, इसलिये तुम प्राणघण्टा हो; तुम अतिशय प्रसिद्ध गन्ध और कलकल महाध्वनि स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम क्रोधवर्ज्ज हुङ्कारके शान्तिस्वरूप हो, पृथ्वी आदि लोकोंसे अतीत परम शान्त ब्रह्मस्वरूप हो; तुम ही तुरीय शान्त परब्रह्म हो; तुम क्रोधवर्ज्जित हुङ्कारप्रिय हो; तुम शान्त वा परम शान्त हो, पहाड़ और सब वृक्ष तुम्हारे स्थान हैं, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम हृदय जिह्वा वक्षस्थल आदि अवदानगत मांस भक्षणमें शृगाल सदृश लुब्ध हो; तुम यज्ञभोक्तृ स्वरूपसे पाप मोचक हो तुम्हें ही अवलम्बन करके सब लोग पापसे छूटते हैं, तुम ही यज्ञ और यजमान स्वरूप हो, तुम ब्राह्मण तथा अग्निके मुखमें आहुति प्राप्त होनेसे परितृप्त हुआ करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम ऋत्विकादिरूपसे यज्ञ निर्व्वाहकर्त्ता जितेन्द्रिय, सतोमय और रजोमय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तट, तटिनी और तटिनीपति समुद्र स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम अन्नदाता, अन्नपति और अन्नभोक्ता हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शिर और सहस्र चरण हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सहस्र शूल उद्यत करके निवास करते हो और तुम सहस्र नेत्र हो; तुम बालार्क सदृश वर्ण धारण करते और बालकका रूप धारण किया करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम बालक और अनुचर गणोंके रक्षा कर्त्ता, बाल क्रीड़नके स्वरूप हो; तुम वृद्ध लुब्ध, क्षुब्ध और क्षोभण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तरङ्गाङ्कित केश वा मूंजसदृश केश धारण करते हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम षट्कर्म्म परितुष्ट और यजन अध्ययन वा दान, इन तीनों कर्म्मोंमें तत्पर हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम वर्ण और आश्रमोंके पृथक् पृथक् कर्म्म समुदायोंके विधिपूर्व्वक निवर्त्तक हो; तुम घुष्य, घोष और कलकल ध्वनिस्वरूप हो, इससे तुम्हें

प्रणाम है। तुम श्वेत और पिङ्गल नेत्र, कृष्ण-वर्ण और लाल देहवाले हो, तुम जितश्वास आयुधस्वरूप विदारणरूप और कृश हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषयमें तुम्हारी ही कथा कही जाती है; तुम निरीश्वरवादी सांख्य और ईश्वरवादी पातञ्जल हो; तुम वेदान्त विचार तथा निदिध्यासन योगके प्रवर्त्तक हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम कभी विरथ होकर पर्य्यटन करते हो; जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन चारोंमें ही तुम्हारे रथकी अव्याहत गति हुआ करती है। तुम काले मृगचालका वस्त्र धारण करते हो और सांपका यज्ञोपवीत पहना करते हो इससे तुम्हें प्रणाम है।

हे ईशान! हे वज्रसदृश कठोर शरीरवाले! हे पिङ्गलकेश! तुम्हें नमस्कार है। तुम त्रिलोचन अम्बिकानाथ हो, तुम ही कार्य्य और कारण स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम काम स्वरूप कामदाता, कामहन्ता और तृप्तातृप्त विचारी हो; तुम सर्व्वस्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। हे महाबाहु महासत्व, महाबल, महाद्युति महामेघरूपी महाकाल! तुम्हें प्रणाम है। तुम स्थूल, जीर्णाङ्ग, जटिल और वल्कल वस्त्रधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रकाशमान सूर्य्य और अग्निकी भांति जटाविशिष्ट हो, वल्कल और मृगचालका वस्त्र धारण करते हो। हे सहस्र सूर्य्य समान तपमें रत रहनेवाले! तुम्हें प्रणाम है। लोक व्यामोहक सैकड़ों तरङ्गसे युक्त गंगाजलसे तुम्हारा शिर आर्द्र हुआ है, तुम चन्द्रमाको बार बार आवर्त्तित करते हो, सब युगल और बादलोंको बार बार आवर्त्तन किया करते हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम अन्न स्वरूप, अन्नपालक, अन्नदाता, अन्नभोक्ता, अन्नस्रष्टा, अन्नपक्ता, पक्वभुक्, पवन और अग्नि हो; तुम ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज हो। हे देव देवेश! तुमही चार प्रकारके भूतग्राम हो। तुम स्थावर जङ्गमात्मक जगत्के स्रष्टा और प्रतिहर्त्ता हो। हे ब्रह्मविद्‌र! ब्रह्मज्ञ लोग तुम्हें ही ब्रह्म कहा करते हैं; तुम मनकी परम योनि हो, आकाश वायु और अग्निके अवलम्बन हो, ब्रह्मवादी पुरुष तुम्हें ही ऋक् साम और ओंकार स्वरूपसे वर्णन करते हैं।

हे सुरश्रेष्ठ! साम गान करनेवाले ब्रह्मवादी लोग तुम्हें ही हायि हायि, हुवाहायि हुवाहायि, आदि सामगान पूरक स्तोभ वा य कहा करते हैं। यजुर्मय ऋग्वेदमय और आहुतिमय वेद हो और उपनिषदोंमें कही हुई सब स्तुति तुम्हारा ही वर्णन किया करती हैं, तुम ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हो; तुम्हीं बादलसमूह बिजली और सजल वा निर्जल घन गर्जन स्वरूप हो; तुम ही सम्वत्सर, ऋतु, मास, मासार्द्ध, युग, निमेष और काष्ठास्वरूप हो; तुम ही ग्रह और नक्षत्र स्वरूप हो, तुम वृक्षोंके गुद्दा, और पहाड़ोंके शिखर, मृगासमूहके बीच बाघ, पक्षियोंमें ताक्ष्य और भोगियोंके बीच अनन्त हो। तुम सब समुद्रके बीच क्षीरोद यन्त्रोंके बीच सत्य हो। तुम ही सब शास्त्रोंके बीच वज्र और व्रतोंमें सत्य हो। तुम ही द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा, व्यवसाय, धृति, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय स्वरूप हो। तुम गदा, बाण, शरासन तथा खट्वाङ्गधारी और झर्झर वाद्यधारण किया करते हो; तुमही छेत्ता, भेत्ता प्रहर्त्ता, नेता और सन्तापिता रूपसे शास्त्रकारोंके जरिये वर्णित हुए हो। तुम हो अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह यम, सन्तोष तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन दश प्रकारके लक्षणोंसे युक्त धर्म्म तथा काम स्वरूप हो। तुम ही गंगा आदि सब नदी समुद्र, पल्वल और तालाब हो! तुम ही लता, बल्ली, तृण, औषधि, पशु, पक्षी और मृगस्वरूप

हो। तुम द्रव्य तथा सब कर्म्मोंके समारम्भ और पुष्प फलप्रद कालस्वरूप हो; तुम ही वेदोंके आदि और अन्त हो; तुम ही गायत्री और ओंकार हो; तुम ही हरित, लोहित, नील, कृष्ण, रक्त, अरुण, कपिल, पिंगल, कपोत, और मेचक, इस दस प्रकारके वर्ण स्वरूप हो। तुम वर्णहीन और सुवर्ण वर्णकार तथा उपमारहित हो; तुम सुवर्ण नामा और सुवर्णप्रिय हो। तुम ही इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, अग्नि, उपराग, चित्रभानु, स्वर्भानु और भानु स्वरूप हो। तुम ही होम साधक अग्नि, होता, होम्यहुत और प्रभु हो; तुम त्रिसुपर्ण, मन्त्र विहित ब्रह्म और यजुर्वेदमें स्थित शतरुद्रिय हो। तुम सब पवित्र वस्तुओंके बीच अत्यन्त पवित्र और निखिल मंगलके भी मंगल हो। तुम पर्व्वतके तुल्य अचेतन शरीरको सचेतन करते हो, इस ही लिये गिरिक और हिरण्डूक अर्थात् चिदाभास नामसे वर्णित हुए हो। तुम उपाधियुक्त होकर नाशमान हुआ करते हो, इस ही लिये वद्ध स्वरूप और शुद्ध स्वरूपसे जोवित रहते हो, कभी विनष्ट नहीं होते, इसहीसे जोव स्वरूप हो; तुम पूर्ण और गलित स्वरूप हो; तुम पूर्ण और जलित हो। इसहीसे देहस्वरूप हो। तुम प्राणस्वरूप, और सत, रज, तम तथा अप्रमद अर्थात् प्रमादहीन उर्द्ध रेता हो। तुम प्राण, उदान, अपान, समान और व्यान वायुस्वरूप हो। तुम उन्मेष निमेष, युत और जिम्भत हो तुम लोहित वा अन्तगत दृष्टि धारण करते हो, तुम महावक्र और महादेव हो। तुम सूई समान रोएं और पिंगलवर्ण श्मश्रु धारण करते हो; तुम ऊर्द्ध-केश और अत्यन्त चञ्चल हो। तुम गीतवाद्यके तत्वज्ञ और गीतवादप्रिय हो। तुम मत्स्यरूपी जलचर हो, संसारनदी जलमें विचरते हो, इस ही निमित्त जालजालसे बद्ध हो। तुम दुर्द्दर, केलिकल, कलि, अकाल, अतिकाल, दुष्काल,

और कालस्वरूप हो। तुम मृत्यु और छेदन साधन क्षुरस्वरूप और छेदन योग्य हो, तुम सबके मित्र और शत्रु व्यूहके नाशक हो, तुम मेघकाल, महादंष्ट्र, सम्वर्त्तक और वलाहक हो। प्रकाशवान हो इस ही लिये घण्ट और मायाविस्तल रूपसे प्रच्छन्न प्रकाश हो, इसहीसे तुम्हारा नाम अव्यक्त है। तुम आप मनुष्योंके कर्म्मफलकी घटना करते हो, इसहीसे घटी और घण्टा धारण किया करते हो, इस ही निमित्त घण्टी कहाते हो। आप स्थावर जंगम जीवोंके सहित क्रीड़ा करते हो, इसही कारण चरुचेली और सबके सहित संश्लिष्ट हो, इस ही निमित्त मिलि मिलो नाम ऐसा धारण किया है। तुम ब्रह्म और वह्नि जाया स्वाहा हो; तुम ही दण्डी मुण्ड और त्रिदण्डधारी परमहंस हो। तुम चारो युग, चारो वेद और चतुर्होत्र प्रवर्त्तक हो। तुम भगनेत्राङ्कुश, चण्ड तथा सूर्य्यदन्त विनाशन हो। तुम स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, प्रणाम और प्रणामके प्रतिरूप नमानमः स्वरूप हो। तुम गूढ़व्रती, गुह्यतपी, प्रणव और तारका मय हो। तुम आदि कर्त्ता हो, इस होसे धाता, भौतिक, स्रष्टा होनेसे विधाता सब वस्तुओंको एकत्रित करके स्थापित करते हो, इस ही कारण सन्धाता, अदृष्ट कर्म्मोंके विधान करनेसे विधाता, सबके अधिष्ठानभूत होनेसे कारणात्मा और तुम्हारा कोई आधार नहीं है, इस ही लिये अधर हो। तुम ही ब्रह्मा, तपस्या, सत्य ब्रह्मचर्य्य, अर्ज्जुन, भूतात्मा भूतकृत, भूत और भूत भविष्यत् वर्त्तमानके उद्भवकर्त्ता हो। तुम भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और ध्रुवलोक हो। तुम जितेन्द्रिय होनेसे महेश्वर कहाते हो; तुम ही दीक्षित, अदीक्षित, शान्त, दुर्द्दान्त और अदान्त नाशन हो। तुम चन्द्रमाके आवर्त्तनकारी मास, युगके आवर्त्तनकारी और सृष्टिके कारण प्रलय स्वरूप हो। तुम कामिनीके अभिलाष, काम, पुत्र,

बीजभूत तत्त्वके अंश बिन्दु स्वरूप हो। आप सूक्ष्म, अचल और स्थूल हो; तुम कर्णिकारके पुष्पमाला प्रिय हो। तुम आनन्द जनक, आनन्दमय और भयङ्कर सुख धारण करते हो। आप ही सुमुख दुर्मुख और सुखविहीन हुआ करते हो। तुम चतुर्मुख बहुमुख और युद्धके समयमें अग्निमुखी होते हो। आप हिरण्यगर्भ और पक्षीकी भांति असङ्ग हो; तुम महोरगपति और विश्वव्यापी विराट हो। आप अधर्महन्ता, महापार्श्व, चण्डधार और गणाधिप हो। आप कृष्णावतारमें गोपबालकोंके सङ्ग क्रीड़ाके समय गौवोंके समान शब्द करते थे, इसलिये गोनर्द हो; गौवोंको विपजलसे पूर्ण रीतिसे उबारनेसे तुम्हारा नाम गोप्रतार है; गोवृषेश्वर नन्दी ही तुम्हारा वाहन हैं। तुम त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्द हो; तुम इन्द्रियोंके द्वारस्वरूप और इन्द्रियोंके अगोचर हो। तुम ही श्रेष्ठ, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प और कम्प स्वरूप हो। तुम मृत्युरूपसे दुर्वारण तथा दुष्ट विषयोंके नाशक हो, इसीसे दुर्विषह हो। तुम युद्धमें दुःसह तथा तुम्हें कोई अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं है, इस ही निमित्त दुरतिक्रम हो; तुम्हें कोई भीषित करनेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये तुम दुर्द्धर्ष हो; तुम्हें कोई कंपानेमें समर्थ नहीं है, इस ही कारण तुम दुष्प्रकम्प हो; अत्यन्त दुःखसे भी लोग तुम्हारी महिमाकी सीमामें प्रवेश नहीं कर सकते इससे तुम दुर्विज्ञ हो, कोई तुम्हें जय करनेमें समर्थ नहीं है, इसहीसे दुर्जय तथा तुम स्वयं जयरूपी धर्म्मराज हो। तुम शीघ्र गमन करनेमें समर्थ हो, इसहीसे तुम शश कहाते हो, तुम ही शशाङ्क और शमन हो; तुम ही शीत, उष्ण, क्षुधा हो, श्रम आदि व्याधि और आधि धारण किया करते हो। तुम ही आधि व्याधिके नाशक हो, तुम मेरे यज्ञमें मृगके लिये व्याध स्वरूप हो। तुम ही सब व्याधियोंके आगम और अपगम स्वरूप हो। तुम शिखण्ड पुण्डरीकाक्ष और पुण्डरीक वनालय हो। तुम दण्डधार, त्रिनेत्र, उग्रदण्ड और दण्डनाशन हो। तुम ही विषग्रपायी, सुरश्रेष्ठ, सोमपा और मरुत्पति हो। हे देव जगन्नाथ! तुम अमृत पीनेवाले देव गणेश्वर-विषग्निपायी मृत्युञ्जय, क्षीरपा और सोमपायी हो। तुम विपदग्रस्थ लोगोंके त्राता, देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके भी रक्षाकर्त्ता हो। तुम हिरण्यरेता पुरुष हो, तुम ही स्त्री, पुरुष और नपुंसक हो; तुम ही बालक, युवा, वृद्ध और जीर्णदंष्ट्र हो; तुम ही नागेन्द्र और शक्र हो; तुम जगत्की सृष्टि करनेवाले, विश्व कर्त्ता और विश्व संहर्त्ता हो; तुम ही विश्वस्रष्टा प्रजापतियोंके वरणीय हो। तुम पालन और पोषणके जरिये जगत्का धारण करते हो, इस ही लिये तुम्हारा नाम विश्ववाह है। तुम विश्वरूप, तेजस्वी और विश्वमुख हो; चन्द्रमा और सूर्य्य तुम्हारे दोनों नेत्र हैं; तुम सबके हृदय स्वरूप और पितामह हो; तुम ही महासागर हो; तुम ही वर्णरूपी सरस्वती और वैराग्यबल स्वरूप हो; तुम ही अग्नि और वायु रूपी हो, समस्त अहोरात्र स्वरूप हो; तुम्हारे बिना ब्रह्मा आदि इन्द्र पर्य्यन्त कोई भी निमेष और उन्मेष कर्म्म साधन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

हे शिव! ब्रह्मा, विष्णु और पुराण जाननेवाले ऋषि लोग यथार्थ रूपसे तुम्हारे माहात्म्यको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। तुम्हारी जो सब सूक्ष्म मूर्त्ति हैं, वे हमारे दृष्टिगोचर नहीं होतीं; जैसे पिता निज पुत्रकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम सदा मेरी रक्षा तथा परित्राण करो। हे अनघ! मैं तुम्हारा रक्षणीय हूं, इसलिये तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुमको प्रणाम करता हूं। तुम सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त भगवान् हो, भक्तोंके ऊपर कृपा किया करते हो; मैं सदा तुम्हारा अनुरक्त भक्त हूं।

इससे मेरी रक्षा करो। जो सहस्रों पुरुषोंको अज्ञानसे अभिभूत करके ज्ञेय ज्ञान और ज्ञातभावसे रहित होके सब कार्य्योंके समाप्त होनेपर अकेलाही निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षाका विधान करे। जितेन्द्रिय, श्वास जीतनेवाले, सत्वस्थ और संयतेन्द्रिय योगी लोग जिस योगी स्वरूपको देखते हैं, उस योगात्मा पुरुषको नमस्कार है। जो जटिल और दण्डधारी हैं, जिसका शरीर लम्बोदरसे अलंकृत है, और कमण्डल ही जिसका तूण स्वरूप है, अर्थात् कमण्डलके जलसे ही जो यक्ष, राक्षस आदिका नाश करता है, उस चतुर्मुख ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है, जिसके केशमण्डलके बीच जो भूतगण अंगकी सन्धियोंमें नदियें, और कुक्षिमें चारों समुद्र वर्त्तमान हैं, मैं उस सलिलशायीका शरणापन्न हुआ हूं। जो रात्रिमें राहुके मुखमें प्रवेश करके चन्द्रमण्डलको और जो स्वयं स्वर्भानु होकर सूर्य्यको ग्रास किया करता है, वह सब भांतिसे मेरी रक्षा करे। जो सब अत्यन्त शिशु सृष्टिमें प्रविष्ट हुए हैं और जो सब देवता तथा पितर लोग विधिपूर्व्वक यज्ञभाग ग्रहण करते हैं, उन्हें प्रणाम है; वे लोग स्वधा और स्वाहा मन्त्रके जरिये दी हुई हव्यकव्य प्राप्त करके हर्षित होवें; जो अङ्गुष्ठ परिमाण पुरुष अर्थात् जीव देहधारियोंके शरीरमें निवास करता है, वह सदा मेरी रक्षा करे तथा मुझे आप्यायित करे। जो देहस्थ होके भी रोदन नहीं करता, और देहधारियोंको रुलाया करता है, स्वयं हर्षित न होके भी देहधारियोंको हर्षित किया करता है, उसे सदा प्रणाम करता हूं। जो नदी, समुद्र, पहाड़, गुफा, वृक्षकी जड़, गोष्ठ, कान्तार, गहन, चतुष्पद, रथ्या, चत्वर, तट, हाथी, घोड़े और रथशाला, जीर्ण बगीचे और स्थान, पञ्चभूत, दिशा, विदिशा तथा चन्द्रमा सूर्य्यके अन्तर्गत होके भी चन्द्र सूर्य्यके किरणमण्डलमें निवास करता है और जिन्होंने रसातलके मध्यगत होके भी ईश्वरके निमित्त वैराग्य अवलम्बन किया है उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूं। जिनकी संख्या और प्रमाण नहीं है तथा किसी प्रकारका रूप नहीं है उन अनगिनत रुद्रगणको प्रणाम करता हूं।

हे भूतनाथ! तुम सब भूतोंके सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो; तुम प्राणियोंकी अन्तरात्मा और सर्व्वभूतपति हो, इस ही निमित्त तुम्हें निमन्त्रण नहीं किया, तुम अन्तर्य्यामी और अन्तरात्मा होनेसे साधारण देवताओंकी भांति व्यवहित वा पृथक् भूत नहीं हो, इस ही लिये तुम्हारा मेरे यज्ञमें निमन्त्रण विहित नहीं हुआ। लोग विविध दक्षिणायुक्त यज्ञसे तुम्हारा ही यजन किया करते हैं और तुम ही सबके कर्त्ता हो, इसलिये निमन्त्रित नहीं हुए। हे देव! अथवा मैं आपकी सूक्ष्म मायासे मोहित हुआ था, उस ही कारणसे आपको निमन्त्रण नहीं किया। हे भव! मै आपका भक्त हूं, इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देव! हमारा मन, बुद्धि और हृदय तुममें ही समर्पित है।

प्रजापति दक्ष इस ही प्रकार महादेवकी स्तुति करके चुप हुए भगवान भी अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर दक्षसे बोले, हे सुव्रत दक्ष! इस स्तुतिसे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं; अधिक कहनेका क्या प्रयोजन है, तुम हमारे निकटवर्त्ती होगे। हे प्रजापति! तुम मेरे प्रसादसे सहस्र अश्वमेध और एक सौ बाजपेय यज्ञके फलभागी होगे। अनन्तर लोकाधिपति वाक्यवेत्ता महादेव दक्षसे युक्तियुक्त धैर्य्यवचन कहने लगे। हे दक्ष! तुम इस यज्ञमें विघ्न होनेसे दीनता अवलम्बन मत करो, क्यों कि भावी कार्य्य अत्यन्त अप्रतिहार्य्य हैं। मैंने पूर्व्वकल्पमें तुम्हारा यज्ञ विध्वंस किया था, इससे सब कल्पोंकी ही समान रूपताके कारण इस

बार भी तुम्हारे यज्ञका नाशक हुआ। हे सुव्रत ! मैं फिर तुम्हें वरदान करता हूं, तुम उसे ग्रहण करो और प्रसन्न बदन होकर एकाग्रचित्तसे उस विषय को सुनो। मैंने षड़ङ्गयुक्त वेद, सांख्य, योग और युक्ति शास्त्र अर्थात् तर्कसे उद्धार करके देवता-दानवोंके दुश्चर अत्यन्त तपस्या की थी; जो षड़ङ्ग वेद, सांख्य और तर्कसे अनधिगत, उपनिषदोंमें प्रकाशित, फल कालमें मङ्गलस्वरूप है, सब वर्ण और आश्रमोंके अधिकृत मोक्षका कारण है, बहुत समयमें सिद्ध होनेवाले अप्रकाश अज्ञानी कर्मठ पुरुषोंके निन्दित वर्ण धर्म और आश्रम धर्मोंसे विपरीत कोई कोई ग्रन्थ विशेषमें जो वर्णकर्म और आश्रमधर्म कहके वर्णित है तथा जो सिद्धान्तज्ञ पण्डितोंके जरिये निश्चित है, और जो परमहंस परिव्राजकोंके जरिये आचरित हुआ करता है, हे दक्ष ! मैंने पहले समयमें उस शुभप्रद पाशुपत व्रतको उत्पन्न किया था, उक्त व्रतको करनेसे पुष्कल फल मिलता है। हे महाभाग ! तुम्हें उस ही पाशुपत व्रतका फल मिले; तुम अपना मानसिक शोक परित्याग करो। अत्यन्त पराक्रमी महादेव दक्षसे ऐसाही कहके उनके सम्मुख ही पत्नी और अनुचरोंके सहित अन्तर्द्धान हुए, जो लोग दक्षके कहे हुए इस स्तोत्रको कहते वा सुनते हैं, उन्हें कुछ भी अशुभ नहीं होता, परमायुकी वृद्धि हुआ करती है। जैसे सब देवताओंके बीच भगवान् महादेव वरिष्ठ हैं, वैसे ही सब स्तोत्रोंके बीच यह स्तोत्र उत्तम है, इसलिये यह वेदवाक्य सदृश है; इसमें वेदोंका अर्द्धभाग और पुराणोंका अर्द्धभाग विद्यमान है। जो लोग यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य्य, काम्य, विषय और धनकी इच्छा करते हैं, तथा जो लोग ब्रह्मदर्शनको अभिलाष किया करते हैं, वे यत्न और भक्तिपूर्व्वक इसे सुने; इसके सुननेसे रोगी, दुःखी, दीन, चोरग्रस्त, भयसे पीड़ित अथवा राज कार्य्यके निमित्त अभियुक्त पुरुष महत् भयसे मुक्त होते हैं। इस स्तोत्रके सुननेसे मनुष्योंको इस ही शरीरसे प्रमथगणकी समता प्राप्त हुआ करती है, और तेजस्वी, यशस्वी तथा पापरहित होते हैं। जिसके गृहमें इस स्तोत्रका पाठ होता है, राक्षस पिशाच भूत और विनायकगण कभी वहां विघ्न नहीं करते। जो स्त्री महादेवमें भक्ति करके ब्रह्मचारिणी होकर श्रद्धायुक्त इस स्तोत्रको सुनती है, वह पितृकुल और मातृकुलमें देवताकी भांति पूजनीय हुआ करती है, जो मनुष्य सावधान होकर सम्पूर्ण स्तोत्र कहता वा सुनता है, वह सब कार्य्योंमें बारम्बार सिद्धिलाभ किया करता है। इस स्तोत्रके कहनेसे मनुष्योंके मनमें जो कुछ कार्य्य चिन्तित अथवा वचनसे वर्णित होते हैं, वे सब सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य दम-नियममें तत्पर होकर महादेव, देवी भगवती, कार्त्तिकेय और नन्दीश्वरकी विहित पूजा करते हुए यथाक्रमसे इस स्तोत्रमें कहे हुए नामको ग्रहण करता है, वह अभिलषित अर्थ, काम और भोग्य वस्तुओंको पाता और परलोकमें गमन करके स्वर्ग लाभ करता है, कदाचित तिर्य्यग् योनिमें जन्म नहीं लेता; इसे पराशर पुत्र भगवान व्यासदेवने कहा था।

२८४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! पुरुषकी आत्मामें जो विद्यमान रहता है, उसे अध्यात्म कहते हैं, इसलिये दृश्य वस्तुओंके विवेकमें शास्त्र ही अध्यात्म है, उस अध्यात्मका कैसा रूप है, और जिससे यह अध्यात्म शास्त्र उत्पन्न हुआ है, आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे तात ! पहले अध्यात्म विषय बारम्बार वर्णित हुआ है, तोभी जब कि तुम मुझसे उक्त विषयको पूछ रहे हो, तब संक्षेपसे

उस सर्व्व ज्ञानप्रद ब्रह्म साक्षात्कारका कारण अध्यात्म विषय तुमसे स्पष्ट रीतिसे कहता हूं, तुम उसकी यह वक्षमाण व्याख्या सुनो; पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पञ्चभूत जरायुज आदि सब भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं। हे भरतप्रवर! स्थूल और सूक्ष्म शरीर उस ही पञ्चभूतके कार्य्य हैं; बुद्धि आदि भौतिकगुण परम कारण आत्मामें सदा लीन रहके फिर उत्पन्न हुआ करते हैं, जीव आत्मासे उत्पन्न होके फिर उसहीमें लीन हुआ करता है, जैसे सुषुप्ति अवस्थामें जीवकी उत्पत्ति होती और उसहीमें लय हुआ करती है, वैसे ही महासागरकी लहरकी भांति महाभूतोंकी उत्पत्ति और लय हुआ करती है। जैसे कछुआ अपने अङ्गको पसारके फिर सहजमें ही समेट लेता है, वैसे ही आकाश आदि भूतोंसे सब क्षुद्र जीव सहजमें ही उत्पन्न होते हैं। शरीरमें जो शब्द प्रसिद्ध होरहा है, वह आकाशका अंश है, शरीरमें जो कठोर अंश है, वह पृथिवीका गुण है; प्राण वायुका अंश है, रुधिर आदि आर्द्रभाग जलके अंश हैं, और गौरवादि तेजके अंश स्वरूपसे वर्णित हुआ करते हैं; इसलिये स्थावर जङ्गम जीवमात्र ही पञ्चभूतमय हैं, ये सब प्रलयकालमें भूतस्रष्टा पितामहके शरीरमें लीन होकर फिर उसहीसे उत्पन्न हुआ करते हैं। भूतकर्त्ता अहङ्कारने देहके बीच जिन इन्द्रियोंकी जिस प्रकार कल्पना की है, और देहके बीच स्थित जिन कार्य्योंको वह अवलोकन करता है, उसे सुनो।

शब्द, श्रोत्र और सब इन्द्रिय आकाशयोनिज हैं; रस, स्नेह और जिह्वा जलके गुण हैं; रूप, नेत्र और विपाक ये तीनों अग्नि रूपसे वर्णित हुआ करते हैं। घ्रेय, घ्राण और शरीर, ये भूमिके गुण हैं; प्राण, स्पर्श और चेष्टा वायुके गुण कहाते हैं। हे राजन्! यही पञ्चभौतिक गुणोंकी व्याख्या हुई। हे भारत! सत, रज और तमोगुण, भूत, वर्त्तमान और भविष्यत्-काल निज निज विषयस्वरूप निश्चयरूपी कर्म्म-बुद्धि अर्थात् श्रवणेन्द्रियसे शब्द बोध, त्वचासे स्पर्शज्ञान, नेत्रसे रूप देखना, जीभसे रस चखना और नासिकासे सूंघना तथा आघ्राण-विषयके सब कार्य्योंके जानने और "यह वस्तु इस ही प्रकार है, वा नहीं" इस भांतिके संशयात्मक मनोवृत्तिमें मायावच्छिन्न ईश्वर प्रकट होता है। हे भारत! दोनों पांवके तलभागसे ऊपर सिरके निम्नस्थान पर्य्यन्त जो कुछ देखते हो इस सब शरीरके बीच बुद्धि निवास करती है। मनुष्यके शरीरमें जो पञ्चइन्द्रिय हैं, मन उनके बीच छठवां कहाता है और धीर लोग बुद्धिको उनके बीच सातवीं गिनते हैं; तथा क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव उक्त इन्द्रियोंके बीच आठवां कहा जाता है। सब इन्द्रियों और क्षेत्रज्ञकी कार्य्यविभागके जरिये खोज करनी उचित है। तम, सत और रजोगुण इन्द्रियनियन्ताको अवलम्बन करनेपर भावरूपसे अभिहित हुआ करते हैं। नेत्रके दृश्य विषयोंकी आलोचनासे मन संशय करता है, बुद्धि उसे निश्चय किया करती है, क्षेत्रज्ञ सब विषयोंमें साक्षीरूपसे माना जाता है। हे भारत! तम, सत और रजोगुण तथा काल और कर्म्म, इन पांच प्रकारके गुणोंसे बुद्धि बार बार विषयोंमें प्रेरित हुआ करती है; सब इन्द्रियें और तम आदि गुण भी बुद्धिस्वरूप हैं। जब मनके सहित इन्द्रियें बुद्धिरूपसे गिनी गईं तब बुद्धिके अभावमें गुणोंके कार्य्य किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होसकते। बुद्धि जिसके सहारे देखती है, उसे नेत्र कहते हैं जिससे सुनती है, उसका नाम कान है, जिसके जरिये सूंघती है, वह नासिका है; जिससे रसका स्वाद लेती है, उसे जीभ और जिससे स्पर्शज्ञान करती है, वह स्पर्शेन्द्रियत्वग रूपसे वर्णित हुई है; इसलिये बुद्धि बार बार विकृतिभावको प्राप्त होती है। जब

बुद्धि किसी विषयकी इच्छा करती है, तब उसका नाम मन हुआ करता है, पांच प्रकारकी इन्द्रियें पृथक् पृथक् रूपसे बुद्धिका अधिष्ठान हुआ करती हैं। जैसे अवयवके दोषसे अवयवी दूषित होता है, वैसे ही इन्द्रियोंके दुष्ट होनेसे बुद्धि भी दूषित हुआ करती है। साक्षिभूत पुरुषमें आध्यात्मिक सम्बन्धसे वर्त्तमान बुद्धि सात्विक आदि सुख दुःख मोहात्मक तीनों भावोंमें निवास करती है, वैसी बुद्धि कभी प्रसन्नता लाभ करती और कभी शोक भोग किया करती है, तथा किसी समयमें सुख दुःख किसीमें भी लिप्त नहीं होती; वह भावमयी बुद्धि और सत्वादि तीनों गुणोंको अतिक्रम करके निवास किया करती है। जैसे तरङ्गमाला युक्त सरित्पति समुद्र तटको अतिक्रम न करके निवास करता है, वैसे ही इस प्रकारकी भावभूमिगत बुद्धि भावस्वरूप मनमें ही वर्त्तमान रहती है। उत्पद्यमान रजोगुण बुद्धिका अनुसरण किया करता है। प्रहर्ष प्रीति, आनन्द, सुख; शान्तचित्तता आदि सात्विक गुण पुरुषके शरीरमें कथञ्चित संयुक्त हुआ करते हैं। दाह, शोक, सन्ताप, मूर्त्ति और क्षमाहीनता आदि रजोगुणके चिन्ह कदाचित कारणवशसे कभी बिना कारणके ही दीखते हैं। अविद्या, राग, मोह, प्रमाद, स्तब्धता, भय, असमृद्धि, दीनता, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि विविध तामस गुण कभी कभी उत्पन्न हुआ करते हैं, उनमेंसे जो शरीर और मनके प्रीतियुक्त होता है, उसमें ही सात्विकभाव वर्त्तमान रहता है, इसे ही अवलोकन करे; और जो दुःखकी संश्लिष्टताके कारण आत्माका अप्रीतिकर हुआ करता है, वही रजोगुणका कार्य्य है; इसलिये उस विषयके कोई कार्य्यको आरम्भ न करके केवल उसकी चिन्ता करे; जो शरीर और मनमें मोहसे मिला हुआ तर्क तथा ज्ञानके अगोचर है, उसे ही तमोगुण कहके निश्चय करो। यह बुद्धिगत जो सब विषय कहे गये, इन्हें ही जाननेसे लोग बुध हुआ करते हैं; इसके अतिरिक्त और बुधका कौनसा लक्षण है।

अब सूक्ष्म सत्व और क्षेत्रज्ञका कितना प्रभेद है, उसे मालूम करो; इन दोनोंमें एक गुणोंको उत्पन्न करता है, दूसरा उससे विरत रहता है। वे दोनों स्वभावसे ही पृथक् भूत होनेपर भी सर्व्वदा सम्प्रयुक्त हुआ करते हैं। जैसे मछरी जलसे भिन्न होके भी सदा जलसे सम्प्रयुक्त रहती है सत्व और क्षेत्रज्ञ भी वैसे हैं, सत्वादि गुण आत्माको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, परन्तु आत्मा सब तरहसे गुणोंको जानता है। गुण संसर्गी मूढ़ मनुष्य समझते हैं, कि आत्माके संग गुणोंका गुण-गुणि भावका सम्बन्ध है, परन्तु यथार्थमें वह नहीं है। आत्मा अपनेमें गुणोंका तदात्म अध्यास न करके केवल उन्हें देखता है, बुद्धि सत्वका अवलम्ब अर्थात् उपादान कारण नहीं है केवल सत्वादि गुणोंके कार्य्यके जरिये उसकी चेतनाशक्ति अध्यस्त हुआ करती है, कारणभूत गुणोंको उत्पन्न करती है, यह महदादि कार्य्यके जरिये अनुमित होता है। कोई पुरुष किसी समयमें ही सब गुणोंको जाननेमें समर्थ नहीं होता, बुद्धिशक्ति ही गुणोंको उत्पन्न करती है, क्षेत्रज्ञ उसका साक्षिमात्र है; इसलिये उस सत्व और क्षेत्रज्ञका इस प्रकारका सम्बन्ध अनादिसिद्ध है बुद्धि इन्द्रियोंके जरिये प्रकाशके कार्य्य अर्थात् अन्धेरेको दूर करती है; अचेतन और अज्ञानयुक्त पुरुष इन्द्रियोंको ही आकाशकी भांति समझते हैं। जो पुरुष इसे ही स्वभाव समझके बुद्धि चालनके जरिये समय बिताता है, उसे शोक वा हर्ष कुछ भी नहीं होता और वह मत्सरताहीन हुआ करता है। जैसे मकड़ी जाला पूरती है, वैसेही बुद्धिशक्ति जिन गुणोंको उत्पन्न करती है, वे स्वभावसिद्ध हैं; इसलिये गुणोंको सूतकी भांति जानना उचित है। गुण

प्रध्वस्त होनेपर फिर निवृत्त नहीं होते घट-कपालकी भांति निवृत्त गुणोंकी प्रवृत्ति सूक्ष्म अवयवोंके जरिये प्राप्त नहीं होती। प्रत्यक्षके सहारे परोक्ष पदार्थोंके अवरोध न होनेसे जैसे अनुमानसे वे पदार्थ सिद्ध होते हैं, वैसे ही कोई कोई प्रवृत्तिका समर्थन करते हैं, दूसरे लोग उसे ही निवृत्त कहा करते हैं। इस ही प्रकार यह बुद्धि और चिन्तामय दृढ़हृदय ग्रन्थि छुड़ाकर शोकहीन तथा संशय रहित होके परम सुखसे निवास करना उचित है।

मनुष्य इस मोह पूरित संसार नदीमें पड़के क्लेशोंको भोग करते हैं। मूर्खोंके अगाध जलमें डूबनेसे जैसा दीखता है, जीव भी बुद्धियोग लाभ करके वैसा ही हुआ करता है। अध्यात्मवित् विद्वान् और पुरुष संसार जलके किनारे पर उतरके कदाचित् क्लेश नहीं पाते, अकेला ज्ञान ही उन लोगोंके लिये परम नौका स्वरूप है। मूर्ख पुरुषोंको जिस प्रकार महत् भय हुआ करता है, विद्वानोंको वैसा भय नहीं होता। विद्वान् और मूर्खोंमें जैसा प्रभेद दीखता है, विद्वान् पुरुषोंमें परस्पर वैसा प्रभेद नहीं है। सकृतविभात ब्रह्मलोक विद्वानोंके पक्षमें समान है, मोक्ष विषयमें प्रत्ययावृत्तिका तारतम्य नहीं है। ज्ञानी लोग अज्ञान दशामें बहुतसा पाप करने पर भी ज्ञान उदय होने पर उनके पहले किये हुए सब पाप नष्ट होते हैं, वे जो कुछ करते तथा जिसे दूषित करते हैं, वे दोनों ही उन्हें अप्रिय नहीं है।

२८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! प्राणियोंको अत्यन्त दुःख और मृत्युसे सदा भय हुआ करता है, इससे हम लोगोंको जिस प्रकार उक्त दोनों भय न हों, आप उसहीका उपाय वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और समंगके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासकी कहा करते हैं। नारद बोले, हे समंग! दूसरे लोग सिर झुकाके प्रणाम करते हैं, तुम वक्षस्थल पर्य्यन्त पृथ्वीसे मिलाकर प्रणाम करते हो और मानो दो भुजाओंसे संसारनदीको तर रहे हो तुम सदा प्रसन्नचित्त और शोकरहित दीखते हो; तुममें थोड़ी भी घबराहट नहीं दीख पड़ती; तुम नित्य तृप्त और स्वस्थ रहके बालककी भांति क्रीड़ा करते हो।

समङ्ग बोले, हे नारद! मैं भूत भविष्यत् और वर्त्तमानकालको अविद्यमानता विशेष रूपसे जानता हूं; इस ही लिये दुःखित नहीं होता। मैंने लोकके बीच सब कार्य्योंकी गति कार्य्योंके फल और फलोंकी विचित्रताको विशेषरूपसे जाना है, इसहीसे शोक नहीं करता। हे नारद! मूर्ख और अप्रतिष्ठित अर्थात् धन, स्त्री आदिसे हीन पुरुष भी विपदग्रस्त और धनवान हुआ करते हैं, अन्धे और उन्मत्त मनुष्य भी जीवित रहते हैं, देखो, हम निरारम्भ होने पर भी जीवित हैं। आरोग्य शरीरवाले देवता, बलवान और निर्ब्बल लोगभी पूर्व्वजन्मके किये हुए कर्म्मोंसे ही जीवित हैं, तब हम लोगोंका तुम सभाजन करो। सहस्रों परिवारयुक्त पुरुष भी जीवित रहते हैं और सैकड़ों परिवार विशिष्ट लोग जीवन धारण करते हैं; दूसरे लोग बहुतसा शोकभार ग्रहण करके भी प्राण धारण किया करते हैं और देखो हम भी जीवित हैं।

हे नारद! शोकके मूल अज्ञानके अभावनिबन्धनसे जब हम शोकाकुल नहीं हैं, तब हमारे आत्मासे ब्राह्मणादिके अध्यास प्रभृति धर्म्म और लौकिक कार्य्योंका क्या प्रयोजन है। जब कि सुख दुःखकी समाप्ति होती है, तब वे अब हमें घर्षण न कर सकेंगे। जिस कारणसे मनुष्य ज्ञानी हुआ करते हैं, वह ज्ञान ही इन्द्रियोंके मोहादि हीनता रूपी प्रसन्नताका

मूल कारण है; ज्ञानके अभावमें ही इन्द्रियें मुग्ध और शोकाकुल हुआ करती हैं; इसलिये मूढ़-इन्द्रिय मनुष्योंका ज्ञानलाभ नहीं होता। मूढ़ लोग जो अहंकार किया करते हैं, वही उनका मोहस्वरूप है; मूढ़ मनुष्यके लिये यह लोक और परलोक भी नहीं है, सब दुःख सदा उपस्थित नहीं होते और सदा सुख-लाभकी भी घटना नहीं होती। परन्तु मेरे समान देहाभिमान रहित मनुष्य कदाचित सब भांतिसे विद्यमान संसाररूपी संज्वर स्वीकार नहीं करते, अभिलषित भोग्य वस्तु और सुखके अनुरोधमें बाधित नहीं होते तथा अभ्यागत दुःखकी चिन्ता नहीं करते; इसलिये भोग्यबिषय आदिकोंकी चिन्ता न करनी ही शोकहीनताका कारण है। योगयुक्त सावधान मनुष्य सुखकी स्पृहा वा अनागत लाभका अभिनन्दन नहीं करते वे बहुतसा धन पाके हर्षित नहीं होते और धन नाश होनेपर भी शोक नहीं करते। बन्धुजन, वित्त, कुलीनता, शास्त्रदर्शन, मन्त्र अथवा पराक्रम, ये कोई भी मनुष्योंको दुःखसे उबारनेमें समर्थ नहीं हैं; मनुष्य शम-दम आदि सदाचारके सहारे ही परलोकमें शान्ति लाभ किया करते हैं। अयुक्त पुरुषोंमें विज्ञान नहीं होता और योगके बिना सुख भी नहीं मिलता। प्राण, मन और इन्द्रियोंके संयम करनेकी सामर्थ और दुःखका परित्याग ये दोनों ही सुख उत्पन्न होनेके कारण हैं। प्रिय वस्तुओंसे हर्ष उत्पन्न हुआ करता है, हर्षसे दर्पकी वृद्धि होती है, अभिमान ही नरकका हेतु हुआ करता है, इसलिये मैंने उसे परित्याग किया है। इस लोकमें जबतक शरीर नष्ट नहीं होता है, तबतक इन सब मोहकार शोक भय और गर्व्व आदिको सुख दुःखके साक्षि स्वरूपसे देखा करता हूं। मैं अर्थ और काम परित्याग करके तथा तृष्णा और मोहको छोड़के शोकरहित वा आनन्दित होकर इस पृथ्वीमण्डलपर बिचरता हूं। मुझे मृत्यु, अधर्म्म अथवा लोभ आदि किसी बिषयसे भी अमृत पीनेवाले पुरुषकी भांति इस लोक वा परलोकमें कुछ भय नहीं है। हे ब्रह्मन् नारद! मैंने उत्तम महत् तपस्या करके इसे ही जाना है, इस ही निमित्त देह स्वभाव, वा सर्दी गर्म्मीसे उत्पन्न हुए शोक मुझे दुःखित करनेमें समर्थ नहीं हैं।

२८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो पुरुष तार्किक, पाशुपत सांख्य, पातञ्जल आदि युक्ति प्रधान शास्त्रोंके यथार्थताको नहीं जानते हैं, जो सदा सन्देह-युक्त चित्त होकर आत्मदर्शनके निमित्त शम दम आदिका अनुष्ठान नहीं करते, उनके पक्षमें कल्याण क्या है; आप इसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, ईश्वर परम गुरु है, इसलिये उसमें चित्त प्रणिधान, वृद्ध आचार्य्योंकी सदा उपासना और सब शास्त्रोंमें ही मोक्षका प्रतिपादन है, इस ही निमित्त गुरुमुखसे उन सबको सुनना, ये तीनों ही सदा कल्याणरूपसे वर्णित हुए हैं। प्राचीन लोग इस बिषयमें देवर्षि नारद और गालव मुनिके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। कल्याणकी इच्छा करनेवाले गालव मुनि मोहक्लम रहित ज्ञान तृप्त, जितेन्द्रिय संयतचित्त विप्रवर नारदसे बोले, हे देवर्षि! इस लोकमें पुरुष जिन सब गुणोंसे सर्व्वसम्मत हुआ करते हैं, आपमें वे सब गुण स्थिररूपसे दीख पड़ते हैं, इसलिये आप परम ज्ञानी हैं, हम लोग सदा बिमूढ़ रहके आत्मपदार्थ कुछ भी नहीं जानते, इससे हमारे संशयोंको दूर करनेके उपयुक्त आप ही हैं। जिस प्रकार अग्नि होत्रादि कार्य्योंके सहित शीघ्र ही ज्ञानसाधनमें प्रवृत्ति हो और हमारा जो कुछ कर्त्तव्य है, उसे हम निश्चय करनेमें

समर्थ नहीं हैं ; इसलिये उसे ही वर्णन करना आपको उचित है।

हे भगवन्! जिसके अनुष्ठानमें भ्रम नहीं है, वे ज्ञानसाधन सब शास्त्र ही पृथक् पृथक् आचारका वर्णन किया करते हैं। वे सब शास्त्र "यही श्रेय है, यही कल्याणकारी है" ऐसे ही उपदेशसे मनुष्योंको प्रबोधित करते हैं। वे प्रबोधित मनुष्य विविध मार्गसे चलते और जैसे हम लोग निज शास्त्रसे परितुष्ट हैं, वैसे ही वे लोग भी निज निज शास्त्रोंके जरिये परितुष्ट हैं। देखनेसे सन्देह युक्त होकर अधिक कल्याणकारी क्या है, उसे हम लोग निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हैं। यदि सब शास्त्रोंका मत एक हो, तो श्रेय मालूम होसके, परन्तु अनेक प्रकारके शास्त्रोंके अनेक मत होनेसे श्रेय अत्यन्त निगूढ़ भावसे प्रविशित हुआ है। इस ही निमित्त मुझे बोध होता है श्रेय बहुत सी शङ्काओंसे परिपूरित है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये मैं आपका निकटवर्त्ती शिष्य हूं, आप मुझे शिक्षा दीजिये।

नारदमुनि बोले, हे पुत्र गालव! शास्त्र चार प्रकारके हैं, तिसमेंसे "धर्म्म नहीं है," यह एक वेदसे वहिर्भूत शास्त्र है। दूसरा शाक्यसिंहका बनाया हुआ चैत्यवन्दनादि रूप धर्म्मशास्त्र है। तीसरा वेदोक्त धर्म्म ही धर्म्म है, दूसरा धर्म्म धर्म्म नहीं है। चौथा "धर्म्माधर्म्मसे अतीत वस्तु मात्र है, और कुछ भी नहीं है" ये सब शास्त्र संकल्पके अनुसार पृथक् पृथक् रूपसे कल्पित हुए हैं। उनमेंसे जो जिसे कल्याणकारी समझता है; उसके पक्षमें वही उत्तम है। और तुम गुरुजनोंके निकटमें उनको जानके आलोचना करो। उन सब शास्त्रोंमें अनेक भांतिके आत्मज्ञानके उपायभूत सब धर्म्मोंका वर्णन स्वतन्त्र स्वतन्त्ररूपसे देखोगे। शास्त्रोंको स्थूल दृष्टिसे देखनेसे अभिप्रेत धर्म्म आत्मतत्व पूर्ण रीतिसे प्राप्त नहीं हो सकता, सूक्ष्मदर्शी धीर पुरुष सरलभावसे देखते हुए शास्त्रोंकी परम गति अवलोकन किया करते हैं। जो परम निश्श्रेयस्वरूप और निःसंशयात्मक है, जो सब प्राणियोंके अभयदाताओंको अनुग्रह और हिंसक मनुष्योंको निग्रहस्वरूप है तथा जो धर्म्म, अर्थ, काम, इन त्रिवर्गोंका संग्रह करनेवाला है, मनीषी लोग उसे ही कल्याणकारी कहा करते हैं। पाप कर्म्मोंसे निवृत्ति सदा पुण्यशीलता और साधुओंके सङ्ग समुदाचार, यही निःसन्देह कल्याणकारी है। सब जीवोंके विषयमें मृदु व्यवहार, व्यवहार विषयमें सरलता और मधुर वचन यही निःसन्देह कल्याण है। देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्तिसाधन, अन्नदान और सेवकोंको परित्याग न करना ही कल्याणकारी है। सत्य वचन ही उत्तम है, सत्य ज्ञान अत्यन्त दुष्कर है तो प्राणियोंको अत्यन्त हितकर है, मैं उसे ही सत्यका विषय कहता हूं।

अहंकारका त्याग, प्रमादका निग्रह, सन्तोष और अकेले धर्म्माचरण करना सबसे उत्तम श्रेय कहके वर्णित हुआ करता है। धर्म्मके अनुसार वेद और वेदान्त शास्त्रको पढ़ना और ज्ञानके निमित्त प्रश्न करना, येही निःसन्देह कल्याणस्वरूप हैं। कल्याणकी इच्छावाले मनुष्य केवल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धको कभी अधिक सेवन न करे तथा रात्रिको भ्रमण करना, दिनमें सोना, आलस, चुगलखोरी, मद, अधिक भोजन और बहुत थोड़ा भोजन छोड़ दे। दूसरेकी निन्दाकर अपने बड़ाईकी चेष्टा न करे, निज गुणोंके सहारे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंसे बड़ाई पानेके लिये यत्नवान होवे, नीचोंसे बड़ाईकी इच्छा कभी न करनी चाहिये। निर्गुण मनुष्य ही अपनेको अधिक सम्मान भाजन समझके अपने गुण और अपने ऐश्वर्य्यकी बड़ाई करके दूसरे गुणवान मनुष्योंके दोषोंको कहके उनकी निन्दा किया

करते हैं। जिन्होंने कभी शिक्षा नहीं पाई, वे अपने अभिमानसे मतवारे होकर महाजनोंसे अपनेको अधिक गुणवान समझते हैं और गुण-युक्त विपश्चित पुरुष किसीको भी निन्दा न करके और अपने उत्कर्षकी वर्णन करनेमें विरत होके महत् यश लाभ किया करते हैं। पुष्पोंसे उत्तम सुगन्ध लानेवाला पवित्र वायु किसी प्रकारका वचन न कहके बहा करती है और निर्म्मल सूर्य्य कुछ भी न कहके आकाशमें प्रकाशित हुआ करता है। जिन्होंने ऊपर कहे हुए आत्म उत्कर्ष ख्यापन आदि दोषोंको बुद्धिसे आलोचना करके परित्याग किया है और उक्त दोषोंका उल्लेख नहीं करते वे लोकसमाजमें यशस्वी हुआ करते हैं। मूर्ख लोग केवल अपनी प्रशंसासे लोकमें प्रकाशित नहीं होते और कृतविद्य पुरुष गढ़ेमें पड़े रहनेपर भी प्रकाशित हुआ करते हैं। ऊंचे स्वरसे असार-भावसे उच्चारण किया हुआ शब्द भी शान्त होजाता है, परन्तु सुभाषित शब्द मृदु भावसे उच्चारित होनेपर भी अवश्य ही लोकमें प्रका-शित हुआ करता है, जैसे बिभाकर सूर्य्यका-न्तमणिके संयोगसे अपना अग्निरूप प्रदर्शित करता है, वैसे ही गर्व्वित मूढ़ लोग भी असा-रमय बहुभाषणसे अन्तरात्माका क्षुद्र तमत्व प्रकट किया करते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य नानाशा-स्त्रोंके ज्ञानजनित बुद्धिकी अभिलाष किया करते हैं, प्राणियोंको चाहे कितना ही लाभ क्यों न होवे, मेरे विचारमें बुद्धिलाभ ही सबसे उत्तम है।

बिना पूछे किसीसे कुछ बचन कहना उचित नहीं है और अन्यायपूर्व्वक पूछनेसे भी उत्तर देना अनुचित है; ज्ञानवान् मनुष्य मेधावी होनेपर भी जड़की भांति बैठे रहें; तथा स्वधर्म्ममें रत, वदान्य, धर्म्मनिष्ठ साधु लोगोंके समीप बास करनेकी इच्छा करें। जिस स्थानमें ब्राह्मणादि चारों वर्णोंमें सङ्कर हों; कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य वहां किसी प्रकार भी निवास न करे। किसी मनुष्यको इस लोकमें कुछ कार्य्य न करके भी यथा प्राप्त वस्तुओंके जरिये सहजमें ही जीविका निभती है, कोई पुण्यवानके संसर्गमें रहके बिमल पुण्य उपभोग करता है, कोई पापीके सङ्गमें रहनेसे पाप भोग किया करता है। जैसे जल, अग्नि और चन्द्रकिरणके स्पर्श होते ही सर्दी गर्म्मी आदि सुखदुःखका अनुभव होता है, वैसे ही सत् और असत् संसर्गसे भी पाप पुण्य देखा जाता है। जो भोजनको वस्तुओंके रसका स्वाद न लेकर अर्थात् मीठे तीतेका केवल स्वाद न लेके पेट भरनेके निमित्त ही भोजन किया करते हैं, वही बिघसाशी है, और जो भक्ष्यवस्तुओंकी परीक्षा करके रसका स्वाद लेते हैं, उन्हें ही कर्म्मपाशके वशीभूत जानो; इसलिये इन्द्रियपोषक मनु-ष्योंको कभी संसारसे पार होनेकी सम्भावना नहीं है। जिस स्थानमें प्रमाणजनित ज्ञान पूछ-नेवाले पुरुषोंके असत्कार पूर्व्वक पूछनेपर भी ब्राह्मण उनके निकट धर्म्म वर्णन करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उस स्थानको परित्याग करें; और जिस स्थानमें शिष्य और उपाध्यायके व्यव-हार उत्तम सावधानी तथा यथावत शास्त्रयुक्त हुआ करते हैं, कौन पुरुष उस स्थानको परि-त्याग कर सकता है। जिस देशमें अपने सम्मा-नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य बिपश्चितोंके आकाशकी वस्तुओंकी भांति निरवलम्बन अर्थात् अविद्यमानतामें दोष वर्णन करते हैं, वहां कौन पण्डित बास करनेकी इच्छा करेगा; जिस देशमें लोभी पुरुषोंके जरिये प्रायः सब धर्म्मबन्धन शिथिल होते हैं। जलते हुए चेला-ञ्चलकी भांति उस देशको बिना त्यागे कौन निश्चिन्त रह सकता है। जिस देशमें मनुष्य मत्सरहीन और निःशङ्क होके धर्म्माचरण करते हैं, उस ही पुण्यशील साधुसेवित देशमें निवास

करना उचित है। जिस देशमें मनुष्य अर्थके निमित्त धर्म्माचरण करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य कदापि वहांपर निवास न करे, क्यों कि उस देशमें बसनेवाले सब मनुष्य ही पापकारी होते हैं। जिस देशमें पापकर्म्मोंसे जीवित रहनेकी इच्छा करके लोग निवास किया करते हैं, सर्प-युक्त गृहकी समान उस देशसे शीघ्र ही प्रस्थान करना उचित है।

जिस कर्म्मके जरियेसे पूर्व्व बासनाका सम्बन्ध होके तीव्र दुःखग्रस्त न होना पड़े, जो अपने पुनर्ज्जन्मकी इच्छा न करे, पहलेसे ही उसे पूर्ण रीतिसे ऐसे कर्म्मोंका अनुष्ठान करना योग्य है। जिस राज्यमें राजा और राजपुरुष लोग कुटुम्बी जनोंके पहले भोजन करते हैं, बुद्धिमान मनुष्य उस राज्यको त्याग दे। जिस राज्यमें यजन और अध्यापन कार्य्यमें नियुक्त सनातन धर्म्ममें रत श्रोत्रिय पुरुष प्रथम भोजन करते हैं, उस राज्यमें वास करना उचित है जिस राज्यमें स्वाहा, स्वधा और वषट्कार मन्त्र पूर्ण रीतिसे अनुष्ठित होकर सदा वर्त्तमान रहते हैं, वहां किसी प्रकार विचार भी न करके निवास करे। जीविकाके वशमें आकर्षित ब्राह्मणोंको जहां अपवित्र देखे, उस राज्यमें पहुंचने पर भी उसे विष मिले हुए अन्नकी भांति परित्याग करे। जिस राज्यमें प्रियमान मनुष्य बिना मांगे दान करें, चित्त जीतनेवाला पुरुष कृतकृत्य और स्वस्थचित्त होकर वहां वास करे। जिस देशमें अविनीत पुरुषोंके विषयमें दण्डविधान और कृतबुद्धि लोगोंका सत्कार हुआ करता है, उस पुण्यशील साधुसेवित स्थानमें विचरना और निवास करना उचित है। जो लोग जितेन्द्रिय पुरुषोंके ऊपर क्रोध किया करते हैं, और जो साधुओंके विषयमें दुष्ट व्यवहार करते हैं, उन अविनीत लोभी पुरुषोंके निमित्त महत् दण्ड धारण करना चाहिये। जिस देशमें राजा धर्म्ममें तत्पर होकर धर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, और विषयाभिलाषको त्यागके सर्व्व सम्पत्तिशाली होता है, वहांपर कुछ विचार न करके निवास करना उचित है। जिन राजाओंका ऐसा चरित्र है, वे निज देशवासी प्रजाको कल्याण-युक्त करके शीघ्र ही उन्नतिशाली करते हैं। तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप यह कल्याणका विषय वर्णन किया। आत्माके श्रेयको प्रधानताको वर्णन करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। इस ही प्रकार जीविकाके उद्देशसे जो लोग सावधान-चित्त होंगे, उनका स्वधर्म्मके सहारे ही इस लोकमें अत्यन्त कल्याण होगा।

२८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, मेरे समान राजा पृथ्वी पालनमें नियुक्त होकर किस प्रकार मोक्ष धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ होगा। और सदा कैसे गुणोंसे युक्त होनेसे आसक्ति-पाशसे छूटेगा।

भीष्म बोले, इस विषयमें प्रश्न करनेवाले सगरके सङ्ग अरिष्टनेमिके कहे हुए प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

सगर बोले, हे ब्रह्मन्! किस प्रकारके परम कल्याणयुक्त मनुष्य इस लोकमें सुख भोग करते हैं, और किस भांति शोकाकुल और क्षुब्ध नहीं होते। मैं इसे ही जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, सब शास्त्रोंके जाननेवाले पण्डि-तोंमें अग्रगण्य अरिष्टनेमिने सगरकी बात सुनके उपदेशकी योग्यता विचार कर यह उत्तर दिया। इस लोकमें मोक्ष सुख ही यथार्थ सुख है, धन धान्य और पुत्र वा पशुओंके पालनमें आसक्त मनुष्य उसे नहीं जान सकते। विषया-सक्त चित्त और अशान्त मन उन मूर्खोंके अज्ञान रोगकी चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो मूढ़ मनुष्य स्नेहपाशसे बद्ध हुए हैं, वे

कदाचित मोक्ष पथके पथिक नहीं होसकते। अब स्नेहसे जो सब पाश उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहता हूं, तुम सावधान होकर मेरे समीप सुनो; विज्ञानवान मनुष्य ही उसे सुननेमें समर्थ हैं। कालक्रमसे पुत्रोंके यौवन सीमामें पहुंचनेपर उनका विवाह करके जब उन्हें जीविका निर्व्वाहमें समर्थ जाने तभी संसार बन्धनसे मुक्त होकर यथासुखसे धर्म्माचरण करे। प्रतिपालित पुत्रवत्सला भार्य्याको बूढ़ी जानके यथासमयमें उसे परित्याग करो और परम पुरुषार्थ मोक्ष पदार्थके अन्वेषण करनेमें यत्नवान होजाओ। इन्द्रियोंसे इन्द्रिय विषयोंको यथारीतिसे अनुभव करके सापत्य अथवा निर-पत्य ही होके संसार बन्धनसे छूटकर यथा सुखसे विचरो। यदृच्छा प्राप्त विषयलाभमें रागद्वेषसे रहित होके विषयलाभ जनित उत्सु-कता परित्याग करते हुए संसारसे मुक्त होकर यथा सुखसे भ्रमण करो। यह तुम्हारे समीप मैंने मोक्षका विषय संक्षेपमें वर्णन किया है, अब उसे ही विस्तारपूर्व्वक कहता हूं, सुनो। इस लोकमें जिन सब मनुष्योंने स्नेह बन्धनको तोड़ा है, वेही सुखी होकर विचरते हैं, और जो सब मनुष्य चित्तके विषयोंमें आसक्त हैं, वेही निःसन्देह विनष्ट होते हैं। चींटी आदि कीड़े भी आहार संग्रह करते हैं, परन्तु वे भी नष्ट होते हैं; इसलिये लोकमें जो पुरुष विषयोंमें अनासक्त हैं, वेही सुखी और जो लोग विषया-सक्त हैं, वेही नाशमान हैं। तुम्हें यदि मोक्षकी इच्छा हुई हो, तो "यह मेरे बिना किस प्रकार जीविका निर्व्वाह करेगा" स्वजनोंके विषयमें ऐसी चिन्ता करनी उचित नहीं है। जीव स्वयं ही उत्पन्न होता, स्वयं ही बर्द्धित हुआ करता और स्वयं ही सुख दुःख भोग करता तथा मृत्युके मुखमें प्रविष्ट होता है। मनुष्य पिता माताके संगृहीत अथवा निज उपार्ज्जित अन्न वस्त्र पाया करता है; इस लोकमें ऐसा विषय नहीं है, जो पूर्व्व जन्ममें न किया गया हो। जीवमात्र ही निज कर्म्मोंके जरिये रक्षित होकर पूर्व्व जन्मकृत कर्म्म फलोंके विभाग करनेवाले विधाताके जरिये विहित भक्ष्य लाभ करते हुए पृथ्वीपर लोगोंकी ओर दौड़ते हैं जब कि मनुष्य मट्टीके पुतलेकी भांति तथा सदा परतन्त्र है, तब वह स्वयं अदृढ़ स्वरूप होकर किस प्रकार स्वज-नोंके भरणपोषणका कारण होगा, जब तुम्हारे बहुत यत्न करनेपर भी तुम्हारे सम्मुखमेंही मृत्यु तुम्हारे स्वजनोंका नाश करती है, तब तुम्हें आत्माको जानना उचित है, स्वजनोंको जीवद्-शामें तुम उनके भरण पोषणमें नियुक्त रहते हो; परन्तु उस भरण-पोषणके समाप्त न होते ही तुम स्वयं उन्हें परित्याग करके यमलोकके अतिथि बनोगे; जब तुम मरके स्वजनोंको सुखी वा दुःखी कुछ भी न जान सकोगे; तब तुम्हें इस प्रकार विवेचना करनी उचित है कि मुझे भी लोकान्तरमें जानेपर मेरे पुत्र मुझे न जान सकेंगे, इससे वे मेरा कुछ भी उपकार न करेंगे। तुम्हारे पुत्रोंके बीच कोई आत्मीय निज जरा आदि रोगोंको भोगेंगे और तुम उसे छुड़ानेमें समर्थ न होगे; इस ही प्रकार दूसरे लोग भी तुम्हारे रोगादिकोंको दूर करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसे जानके तुम्हें आत्महितका अनुष्ठान करना उचित है। इस लोकमें कौन किसके निमित्त निश्चित है, इसे विशेषरूपसे जानके मोक्ष विषयमें मन लगाना चाहिये और फिर धारणा करो।

जिस मनुष्यने भूख, प्यास, क्रोध, लोभ और मोह आदिको जय किया है, वही सतोगुणकी अधिकतायुक्त मुक्त पुरुष है। जो मनुष्य जूआ खेलने, मद्य पीने, स्त्री सेवन करने और मृगया विषयमें सदा प्रमत्त नहीं होते अर्थात् आत्म विस्मृति पूर्व्वक उसमें आसक्त नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। प्रतिदिन कितना भोजन करना होगा और प्रति रात्रिमें ही कितना भोजन

करूंगा; इस प्रकार जो पुरुष भोग विषयमें शोक प्रकाश करते हैं, उन्हें ही दोषदर्शी कहा जाता है। जो सावधान होकर बार बार स्त्रीसङ्गसे अपना जन्म होता है, ऐसी ही आलोचना करते हैं, उन्हें ही यथावत् मुक्त पुरुष कहना चाहिये। जो जीवोंके जन्म मरन और जीवनके क्लेशको यथार्थ रूपसे जानते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं। सहस्र कोटि छकड़े पर जो अन्न ढोया जाता है, उसे और पुरुषके आहार परिमित अन्नको जो समभावसे देखते हैं, और प्रसाद वा मन्नमें जिन्हें समज्ञान है, वेही मुक्त होते हैं। जो सब लोगोंको मृत्युसे आक्रान्त देख कर पीड़ित नहीं होते, बल्कि सुखी हुआ करते हैं, और जो थोड़े लाभसे भी सन्तुष्ट हुआ करते हैं, इस लोकमें वे ही मुक्त पुरुष हैं। जठराग्नि, भोक्ता और भोज्य अन्न ही सोम स्वरूप है, यह सब जगत् उन दोनोंसे युक्त है, परन्तु मैं उन दोनोंसे पृथक् हूं, जो लोग इसे अवलोकन करते हैं, और जो सुख दुःख आदि अद्भुत मायिक भावोंसे संस्पृष्ट नहीं होते, वेही मुक्त पुरुष हैं। पलङ्ग और भूमितल जिसके पक्षमें समान तथा चावल और कदन्नमें जिसे तुल्य ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष हैं। क्षौम वस्त्र और कुशचीर, कौशेय वस्त्र और वल्कल तथा कम्बल और चर्म्ममें जिसे समान ज्ञान है, वेही मुक्त पुरुष हैं। जो पञ्चभूतोंसे उत्पन्न हुए सबको आत्म सदृश देखते हैं, और देखके उनके विषयमें वैसाही व्यवहार किया करते हैं, इस लोकमें वेही मुक्त पुरुष हैं।

जिन्हें सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय, पराजय, इच्छा, द्वेष, भय और उद्वेगमें समान ज्ञान रहता है, वेही सब प्रकारसे मुक्त पुरुष हैं। जो रक्त, मूत्र और मलके आधार इस शरीरमें बहुतसे दोषोंको देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो बलके सहारे बलीपलित-संयोग कृशता, विवर्णता और कुअल अवलोकन करते हैं, वेही मुक्त होते हैं। जो कालक्रमसे निज शरीरमें पुरुषत्वकी हानि, दर्शनशक्तिकी उपरति, बधिरता और दुर्ब्बलता देखते हैं, वेही मुक्त होते हैं। प्रसिद्ध और प्रभावयुक्त सहस्रों राजेन्द्र इस पृथ्वीको छोड़के परलोकमें गये हैं, इसे जो विचारते हैं वेही मुक्त होते हैं। जो इस लोकमें सब अर्थ दुर्लभ, क्लेश कदम्ब ही सुलभ और कुटुम्बके निमित्त दुःख दर्शन करते हैं, वे मुक्त होते हैं। इस लोकमें अपत्योंमें विगुणत्व और लोकके बीच अधिकांश ही गुणहीन हैं, इसे देखके कौन पुरुष मोक्षका अभिनन्दन न करेगा। जो मनुष्य शास्त्रीय और लौकिक ज्ञानप्राप्त करके मनुष्य जन्मको असार समझता है, वही सब प्रकारसे मुक्त होता है। गार्हस्थ्य अथवा मोक्ष विषयमें यदि तुम्हारी बुद्धि विह्वल न हुई हो, तो मेरा यह वचन सुनके विमुक्तके समान व्यवहार करो। पृथ्वीपति सगरने अरिष्टनेमिके कहे हुए वचनको पूर्णरीतिसे सुनकर अद्वेष्टृत्व आदि ज्ञानज गुणोंसे युक्त होकर प्रजापालन किया था।

२८८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे तात कुरु पितामह! हमारे हृदयमें बहुत समयसे यह वक्ष्यमाण कौतूहल विद्यमान होरहा है, इसलिये आपके समीप में उस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं। महाबुद्धिमान् देवर्षि उशना देवताओंके अप्रिय कार्य्यमें रत होकर किस कारण असुरोंके सदा प्रियकर थे और किस कारण अत्यन्त तेजस्वी देवताओंके तेजको क्षय किया था; दानव लोग ही किस लिये देवताओंके संग सदा वैरयुक्त थे। अमरद्युति उशना किस लिये शुक्रत्वको प्राप्त हुए और वह किस प्रकार समृद्धियुक्त हुए थे, आप मेरे समीप यह सब

वर्णन करिये। हे पितामह ! वह तेजस्वी शुक्र किस कारणसे आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन नहीं करते इन सब विषयोंको मैं विस्तार पूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे पापरहित ! मैंने जिस प्रकार निजबुद्धिके अनुसार इसे सुना है, वह तुम्हारे निकट कहता हूं। हे राजन् ! तुम सावधान होकर यह सब विषय ज्योंका त्यों सुनो। यह दृढ़व्रती, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए माननीय मुनि किसी कारणसे देवताओंके अप्रियकारी हुए थे। इस विषयमें यह इतिहास है, कि दानव लोग देवताओंको पीड़ित करके भृगुपत्नीके आश्रममें प्रवेश कर आपदरहित होकर निवास करने लगे। देवता लोग वहां प्रवेश करनेमें समर्थ न होकर सर्व्वव्यापी भगवान हृषीकेशके शरणमें गये। अनन्तर भगवान विष्णुने सुदर्शन चक्रकी धारासे भृगुपत्नीका शिर काट डाला। तब अन्तमें मरनेसे बचे हुए असुरोंने उसके एव भार्गवका आसरा ग्रहण किया। शुक्र मातृवधसे दुःखित होकर असुरोंको अभयदान करके देवताओंके विषयमें अत्याचार करनेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर जगन्नियन्ता पाकशासन इन्द्र और उनके धनाध्यक्ष यक्ष और राक्षसोंके स्वामी धनद कुबेर विरोध मिटानेके लिये शुक्रके निकट आये। योगसिद्ध महामुनि शुक्रने धनाधिपति कुबेरके हृदयमें योगबलसे प्रवेश कर योगबलसे ही उन्हें रुद्ध करके उनका सब धन हर लिया, सब धन हरे जानेपर धनपति किसी प्रकार सुस्थ न रह सके; उन्होंने दीनदशासेयुक्त और व्याकुल होके सुरसत्तम शिवके निकट जाके प्रियदर्शन अनेक रूपवाले अत्यन्त तेजस्वी देवश्रेष्ठ रुद्रदेवके निकटवर्त्ती होकर निवेदन किया, कि योगात्मा भार्गवने योगबलसे मेरे शरीरमें प्रविष्ट होके मुझे रुद्ध करके मेरा समस्त धन हर लिया है। वह महातपस्वी उशना योगबलसे सब धन अपने अधिकारमें करके मेरे शरीरसे निकल गये हैं। हे राजन् ! महायोगी महेश्वर धनाधिपतिका ऐसा वचन सुनके क्रोधसे नेत्र लालकर शूल लेकर खड़े रहे। वह उस परमास्त्रको ग्रहण करके "वह कहां है ? वह कहां है ?" बारम्बार ऐसा ही कहने लगे, उशना उनका अभिप्राय जानके दूरसे उनके दृष्टिगोचर हुए।

योगसिद्ध शुक्र महायोगी महात्मा रुद्रदेवके रोषके विषयको जानके विचारने लगे, कि उनके निकट जाऊं अथवा इस स्थानसे प्रस्थान करूं। वा इस ही स्थानमें स्थित रहूं; अनन्तर योगसिद्ध उशनाने उग्र तपस्याके सहारे महानुभाव महेश्वरके विषयमें विचार करके यह निश्चय किया, कि "मैं शूलके ऊपर निवास करूं, तो महादेव मेरे ऊपर शूल न चला सकेंगे" ऐसा समझके वह शैव शूलके अग्रभागमें स्थित हुए। विज्ञानरूप तपसिद्ध शुक्रको शूलस्थ जानके देवेश महादेवने हाथसे उस शूलको नमित किया। उग्रायुध महादेवने अपरिमित प्रभावयुक्त हाथसे शूलको शरासर रूपसे नमित किया था, इससे ही उनका नाम पिनाकी हुआ। अनन्तर उमापति रुद्रदेवने भार्गवको हाथके बीच देख कर उसी हाथसे ही उठाके मुख बाके उसको मैंहीमें डाल दिया। महात्मा भृगुनन्दन उशना महादेवके उदरमें पैठकर वहां विचरने लगे, अन्न आदिकी भांति जीर्ण न हुए।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! महातेजस्वी भृगुनन्दनने महादेवके जठरके बीच किस निमित्त विचरण किया था और वहां किस प्रकार तपस्या की थी ?

भीष्म बोले, पहले समयमें महाव्रती महादेवने स्थाणुकी भांति जलके बीच निवास करके तपस्याकी थी; उस तपस्यामें उनका दस हजार अर्व्बुद वर्ष बीत गया। अनन्तर वह दुस्तर

तपस्या करके महाह्रदसे निकले, तब देवश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा उनके समीप उपस्थित हुए। अविनाशी ब्रह्माने शिवके निकट जाके उनसे तप वृद्धि और कुशलका विषय पूछा, वृषभध्वजने तपस्या उत्तमरीतिसे हुई है, ऐसा ही उत्तर दिया। अनन्तर सत्य धर्म्ममें रत अचिन्त्य स्वभाव महाबुद्धिमान शङ्करने देखा, कि तपस्याके संयोगसे शुक्रने भी उत्कर्ष लाभ किया है। हे महाराज! महायोगी बीर्य्यवान शङ्कर उस तप रूप धनसे युक्त होकर त्रिभुवनमें बिराजने लगे। अनन्तर योगात्मा पिनाकपाणिने ध्यानयोगमें समाधि लगाई, उशना भी व्याकुल होके उनके उदरके बीच लीन होरहे। महायोगी भार्गव महादेवके उदरसे निकलनेकी इच्छा करके उदरमें रहके ही उस देवदेवकी स्तुति करने लगे; परन्तु उससे कुछ भी फल न दीख पड़ा। अनन्तर जठरके मध्यवर्त्ती महामुनि उशना बिनय बचनसे बोले, हे अरिन्दम! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये! जब शुक्र बार बार इस ही प्रकार कहने लगे, तब महादेव उनसे बोले, "तुम हमारे लिङ्गके मार्गसे निकलो" त्रिदशेश्वर महादेवने ऐसा वचन कहके सब इन्द्रिय द्वारोंको रुद्ध करते हुए लिङ्गद्वार सब भांतिसे शुक्रसे पिहित रहनेसे उसे नहीं देखा, अनन्तर उशना तेजसे प्रज्वलित होकर बाहर निकले, लिङ्गद्वारसे बाहर हुए थे इसहीसे उनका शुक्र नाम हुआ। और लिङ्गसे निकलनेसे ही वह हम लोगोंकी भांति आकाशमण्डलके मध्यभागसे गमन करनेमें समर्थ नहीं है। महादेव उस तेजपुञ्जसे प्रकाशमान शुक्रको निकला हुआ देखकर क्रोधयुक्त होकर हाथमें शूल लेकर खड़े हुए। निजपति महादेवको क्रुद्ध हुआ देखकर देवीने उन्हें निवारण किया महादेवके भवानीसे निवारित होनेपर शुक्रने देवीका पुत्रत्व लाभ किया।

देवी बोली, हे देव! जब शुक्र हमारा पुत्र हुआ, तब इसको हिंसा करनी तुम्हें उचित नहीं है; तुम्हारे उदरसे निकलनेसे कोई कदापि बिनष्ट न होगा। हे राजन्! अनन्तर भगवान् महादेव भगवतीके ऊपर प्रसन्न होकर हंसते हुए बार बार यह बचन बोले, इस समय इसकी जहां इच्छा हो, उस स्थानमें गमन करे, अन्तमें महामुनि बुद्धिमान् भार्गवने वरदाता महादेव और जगन्माता उमादेवीको प्रणाम करके निज अभिलषित स्थानमें गमन किया। हे तात भरतश्रेष्ठ! तुमने मुझसे जो पूछा, मैंने तुम्हारे निकट उस ही महानुभाव भार्गवका चरित्र वर्णन किया।

२८९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहु पितामह! इसके अनन्तर जो कल्याणकारी है, आप उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये आपके अमृत समान बचनको सुनके मुझे किसीसे भी तृप्ति नहीं होती है। हे पुरुषसत्तम! मनुष्य कैसा शुभ कर्म्म करके इस लोक और परलोकमें कल्याण लाभ करता है, आप उसे ही कहिये।

भीष्म बोले, इस बिषयमें पहले समयमें महा यशस्वी राजा जनकने महात्मा पराशरसे जो प्रश्न किया था, उसे ही मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं सुनो। "इस लोक और परलोकमें जो सब भूतोंके लिये कल्याणकारी है और जो सबका ही श्रेय बिषय है आप मेरे निकट उसे ही वर्णन करिये।" राजर्षि जनकका ऐसा बचन सुनकर सब धर्म्मोंके बिधाताको जाननेवाले तपोबलसेयुक्त, मननशील पराशर मुनि राजाके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा करते हुए वक्ष्यमाण बचन कहने लगे। पराशर मुनि बोले, उपार्ज्जित धर्म्मही इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है; मनीषी लोग जैसा कहते हैं, उससे बोध होता है, कि धर्म्मसे श्रेष्ठ वस्तु और कुछ

भी नहीं है। हे नृपसत्तम! मनुष्य धर्म्माचरण करके स्वर्गलोकमें बास करता है, देहधारियोंके योगयज्ञादि कर्म्म ही धर्म्ममय हैं, गार्हस्थ्य आदि आश्रयोंमें निवास करनेवाले सज्जन लोग धर्म्म-निष्ठ होकर इस लोकमें निज निज कार्य्योंको किया करते हैं। हे तात! इस लोकमें जीवन-यात्रा निभनेके उपाय चार प्रकारसे कहे गये हैं ब्राह्मणोंको प्रतिग्रह, क्षत्रियोंको कर ग्रहण करना, वैश्योंके लिये कृषि बाणिज्य और शूद्रोंके निमित्त सेवा करनेकी वेतन; मनुष्य जिस स्थानमें निवास करते हैं, जीविका भी यदृच्छा-क्रमसे वहां उपस्थित होती है। प्राणि समूह अनेक प्रकारके पुण्य पापका कार्य्य करके पञ्च-भूतोंमें बिभक्त अर्थात् पञ्चत्व प्राप्त होनेपर उनकी नाना भांतिकी गति हुआ करती है। पापियोंको तिर्य्यग् योनि पुण्यात्माओंको स्वर्ग-बास पाप-पुण्य समान रहनेपर मनुष्य जन्म और तत्वज्ञानके सहारे पाप पुण्यका नाश होनेपर मुक्ति हुआ करती है। जैसे ताम्रमय पात्रद्रवी भूत सुवर्ण वा रौप्यमें डाले जानेसे सोना तथा चांदीकी भांति दिखाई देता है, वैसे ही जीव पूर्व्वकर्म्मोंके वशमें होकर जन्म ग्रहण करता है बिना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती; जो बीज ग्रीष्मकालमें पांशुसे ढके रहनेसे नहीं दीख पड़ता, वर्षाकालमें वही अंकुर निकलनेसे जाना जाता है। इस ही भांति दृष्टादृष्ट कारणके जरिये सुख आदि उत्पन्न होते हैं; इसलिये पूर्व्व जन्ममें कुछ सुकृत न करनेसे जीव इस जन्ममें सुखलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, इससे सुकृतसे ही देहाधिपत्य अथवा देहक्षय प्राप्त होने-पर मनुष्य सुखोंको भोग करता है। हे तात! देवताओंमें कुछ पुण्य वा पापका लक्षण नहीं दीखता, उस विषयमें अनुमान वा साधन नहीं है। देव, गन्धर्व्व और दानव लोग स्वभावसे ही जन्म ग्रहण किया करते हैं; उनमें कोई कारणान्तर नहीं है। मनुष्य परलोकमें जानेपर इस लोकके किये हुए सब कर्म्मोंको सदा स्मरण करनेमें समर्थ नहीं होते; परन्तु उन कर्म्मोंके फलप्राप्त होनेपर पुण्य-पाप नीति वा अनीतिके जरिये प्रतिपादित चार प्रकारके कर्म्म स्मरण किया करते हैं। "पुण्यकर्म्मसे पवित्रता होती है" इत्यादि वेदाश्रय बचन लोकयात्रा निर्व्वाहके उपाय हुए हैं। हे तात! मनकी शान्तिके लिये लोकायत शास्त्र-प्रणेता प्राचीन पुरुष बृहस्पति आदिकी ऐसी आज्ञा नहीं है। नेत्र, मन, बचन और कर्म्मसे मनुष्य चार प्रकारके कर्म्मोंको जिस भावसे किया करता है उस ही भावसे उसकी फलप्राप्ति होती है। हे राजन्! कदाचित मनुष्य निरन्तर दुःख पाता है, कभी सुख दुःख दोनों ही मिश्रित भावसे भोग किया करता है; कल्याणकारी कर्म्म हो, अथवा पाप कर्म्म ही होवे, उसके निमित्त पुण्य-पापात्मक अपूर्व्वके भोगे बिना कदापि बिनाश नहीं होता, हे तात! संसारमें प्रायः डूबे मनुष्य दुःखोंसे छूटनेपर उनका सुकृत पक्षपात रहित होकर दुष्कृतके अविरोधमें निवास करता है।

हे मनुष्यराज! पुरुष दुःखका नाश करके सुकृत कर्मकी सेवा करता है, और सुकृत नाश होनेके अनन्तर दुष्कृत कर्म्मोंका फल भोग किया करता है, ऐसा ही प्रणिधान करे। दम, क्षमा, धृति, तेज, सन्तोष, सत्यवादिता, लज्जा, अहिंसा, व्यसन हीनता और दक्षता, ये दशोंसुखावह अर्थात् पुण्य-पापके समुच्छेद जनित सुख होया करते हैं। मनुष्य जीवन पर्य्यन्त सुख वा दुःखमें आसक्त न होवे; बुद्धिमान मनुष्य सदा ब्रह्मदर्शनके निमित्त समाधि करनेमें यत्नवान होवें। मनुष्य दूसरोंके सुकृत वा दुष्कृतको भोग नहीं करता, स्वयं जैसा कर्म्म करता है, वैसा ही फल भोग किया करता है। सुख और दुःखके हेतु पुण्य और पापको तत्वज्ञानके जरिये आत्मामें लीन करके पुरुष ज्ञान पथसे गमन करनेसे अभिलषित वस्तुओंको पाता है,

और जो पुरुष पृथ्वीपर स्थित होकर स्त्री, पुत्र, पशु, गृह, धन और आराम आदिमें आसक्त होता है, वह दूसरे मार्गमें गमन करता है,—वह स्वर्ग वा नरक विषयमें कोई उपकार नहीं करता। दूसरेका जो कार्य्य देखके निन्दा करना होती है, स्वयं उस निन्दनीय कर्म्मको न करे; योगी पुरुष यदि दोषदर्शी हों, तो अवश्य ही उन्हें निन्दनीय होना पड़ेगा। हे राजन्! चत्रिय होके कादर, ब्राह्मण होकर सर्व्वभक्षी, वैश्य होके कृषि वाणिज्यके कार्य्योंमें चेष्टा-रहित हीन वर्ण शूद्र होके आलसी, विद्वान होके असद्वृत्त, कुलीन होके वृत्तिहीन, वेदज्ञ होके सत्यसे भ्रष्ट, दुश्चरित्रवाली स्त्री, योगी होके विषयानुरागी, आत्म निमित्त पाचक, मूर्खवक्ता, राजासे रहित राज्य, वेदविहित योगाभ्याससे रहित होके भी प्रजासमूहके विषयमें स्नेह-हीन,—ये सभी शोचनीय हुआ करते हैं।

२६० अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, जो मनुष्य मनोमय शरीरको और इन्द्रिय विषय शब्द स्पर्श आदिको घोड़े रूपी जानकर ज्ञानसे उत्पन्न हुई रश्मि अर्थात् चित्त-प्रतिभाके सहारे परिचालित करते हुए विषयोंको चिन्मय रूपसे अवलोकन करते हैं; वेही बुद्धिमान हैं। हे चात्र संस्कारयुक्त महाराज! जिसका मन किसी अवलम्बका सहारा न करके निवास करता है, उस वृत्तिहीन पुरुषका ईश्वर प्रणिधान सबसे श्रेष्ठ है, अर्थात् निर्व्विकल्पक समाधिके सहारे निवास करनाही सबसे उत्तम है। चीण कर्म्मवाले ब्रह्मवित साधु पुरुष गुरुके प्रसादसे उस प्रणिधानको प्राप्त करके निवृत्त होते हैं, वैसा प्रणिधान परस्पर समान पुरुषोंमें नहीं प्राप्त होता। हे मनुजेश्वर! दुर्लभ परमायु पाके विषय सेवनसे उसे नष्ट करना उचित नहीं है। पुण्य, कर्म्मके सहारे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोक प्राप्त होनेके लिये मनुष्यमात्रको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। सत, रज और तमोगुणको ह्रास वृद्धिके तारतम्यके अनुसार कल्पित कृष्ण, धूम्र नील, लाल, पीला और सफेद, इन छःप्रकारके वर्णोंसे जो पुरुष परिभ्रष्ट अर्थात् उच्च वर्णसे नीच वर्ण लाभ करता है, वह कदापि सम्मान पानेमें समर्थ नहीं होता और जो लोग उच्च वर्ण लाभ करते राजस कर्म्मोंको सेवन नहीं करते, वेही सम्मान भाजन होते हैं इसलिये मनुष्य पुण्यकर्म्मसे ही श्रेष्ठ वर्ण लाभ किया करते हैं और पाप कर्म्मसे दुर्लभ वर्णको उत्कर्षता न प्राप्त कर सकनेसे बहुतेरे लोग आत्माको अनेक नरकोंमें डुबाते हैं। मनुष्य अज्ञानसे प्राप्त हुए दुःखको तपस्यासे दूर करे, जानके किया हुआ पाप कर्म्म केवल पापफलको ही उत्पन्न किया करता है; इसलिये परिणाममें दुःख ही जिसके फलरूपसे उत्पन्न होता है, वैसे पापकर्म्मका अनुष्ठान करना कदापि उचित नहीं है; पापयुक्त कर्म्मसे यदि महाफल उत्पन्न हो, तौभी जैसे पवित्र पुरुष चाण्डालका स्पर्श नहीं करता वैसे ही बुद्धिमान मनुष्य उस पाप कर्म्मके अनुष्ठान करनेमें विरत रहे। पापकर्म्मका फल कुत्सित कष्ट मात्र ही दीख पड़ता है; पापके वशमें होकर विपरीत दृष्टिवाला मनुष्य देहादिको ही आत्मा जानता है। इस लोकमें जिस मूढ़ मनुष्योंके अन्तःकरणमें वैराग्यका सञ्चार नहीं होता, मरनेपर भी उसे अत्यन्त ही नरक यन्त्रणासे दुःख उत्पन्न हुआ करता है। जो वस्त्र स्वयं श्वेत है, वह यदि विपरीत रङ्गसे रङ्गा जावे, तो समय विशेषमें सफेद होसकता है; परन्तु काले रंग भल्लातकादिसे रंगा हुआ वस्त्र कभी परिशुद्ध नहीं होता। हे मनुजेन्द्र! इसलिये मेरा यही मत है, कि प्रयत्नके जरिये किस पापसे पवित्रता लाभ की जा सकती है, और किस पापसे पवित्रता

नहीं प्राप्त होसकती, तुम इसहीको विचारो। जो पुरुष जानके पापाचरण करके शेषमें शुभ-कर्म्मोंका अनुष्ठान करता है, वह प्रायश्चित्त करनेके निमित्त पापपुण्य दोनोंके ही फलको पृथक् रूपसे भोग किया करता है, जानके किया हुआ पाप किसी भांति भी नष्ट नहीं होता।

यदि मनुष्य बिना जाने हिंसा करे, तो वेद-शास्त्रकी अनुसारिणी अहिंसाके जरिये उसके पापकी शान्ति होती है; ब्रह्मवादी लोग ऐसा कहा करते हैं, इसही प्रकार जानके किया हुआ पापकर्म्म अहिंसाके जरिये शान्त नहीं होता; वेद शास्त्र और स्मृतियोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंका ऐसा ही मत है कामना वा अका-मनासे किया हुआ कर्म्म चाहे थोड़ा हो चाहे अधिक वह बिना भोगे नष्ट नहीं होता; परन्तु मैं देखता हूं कि जो किया हुआ कर्म्म विद्यमान रहता है, वह पुण्य कर्म्म रूपसे प्रकाशित होने पर पापके जरिये कभी नहीं छिपता। इस लोकमें सब सूक्ष्मकर्म्म "इसे इस प्रकारसे करे" इस भांति परामर्श करके अथवा "इसे इस भांति करना चाहिये" ऐसा निश्चय करके स्थूल सूक्ष्मके तारतम्यके अनुसार सुख दुःख आदि फल उत्पन्न हुआ करते हैं; अव्यभिचारी नर-कावह कर्म्मका फल थोड़ा भी होनेसे वह सेवन किया जाता है। हे धर्म्मज्ञ! उग्रकर्म्मसे अज्ञा-नकृत कर्म्म सम्पादित हुआ करते हैं, जैसे जान-कर किये हुए कर्म्मोंका अवश्य फल उत्पन्न होता है, अज्ञानकृत कर्म्म भी वैसे ही हैं। देवता और मुनियोंके जरिये सब कर्म्म विहित हुए हैं, धर्म्मात्मा मनुष्य उन कर्म्मोंका आचरण अथवा उसे सुनके निन्दा न करें, क्यों कि अलौ-किक कर्म्म कदापि मनुष्योंके अनुष्ठेय नहीं हैं। हे राजन्! आप जिन कर्म्मोंके करनेमें समर्थ हो, मनहीमन उसका अनुशीलन करके जो लोग शुभ कर्म्म करते हैं, वेही कल्याण लाभ किया करते हैं।

हे राजन्! नवीन कपालमें डाला हुआ जल नष्ट होता है और उस जलके सम्बन्धसे कपाल भी गल जाता है और परिपक्व कपालमें डाला हुआ जल अनायास ही स्थित रहता है, जैसे जलयुक्त पात्रमें और जल डालनेसे पात्रके जलकी वृद्धि होती है, वैसे ही इस लोकमें बुद्धि युक्त कर्म्म चाहे सम हों वा विषम हो हों, पात्रके अनुसार पवित्रतायुक्त हुआ करते हैं। पाप पुण्यमें जो उदासीन हैं वैसे तेजस्वी पुरुषको कर्म्म कदापि हिंसा नहीं कर सकते, निस्तेज मनुष्य ही पापसे पराभूत हुआ करते हैं।

शत्रुओंके उन्नत होनेपर भी उन्हें जय करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है, प्रजासमूहको पूर्णरीतिसे अवश्य पालन करना चाहिये, अनेक भांतिके यत्नसे अग्निचर्य्या अत्यन्त अनुष्ठेय है; अवस्थाके परिणाममें अथवा मध्य अवस्थामें संसारसे विरक्त होकर जङ्गलके अवलम्बसे निवास करना उचित है। हे नरेन्द्र! दमयुक्त पुरुष धर्म्मशील होकर जीवोंको अपने समान देखे और वह अपनी शक्तिके अनुसार सत्य वा सदाचारके जरिये सहजमेंही बड़े पुरुषोंके सम्मान करनेमें यत्नवान होवे।

२९१ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, इस लोकमें कौन किसका उपकार करता है। कौन किसे दान किया करता है; यह प्राणि अपनी तृप्तिकेलिये आप ही सब कर्म्मोंको करता है, दूसरेका प्रया-जन सिद्धिके लिये कोई भी किसी कर्म्मको नहीं करता। "माताको देवी समान जानो, पिताको देवता समान मान्य करो" इत्यादि वेदवाक्यसे देवता समान आराधित माता पिता अवश्य ही पुत्रका उपकार करते हैं,—ऐसी आशङ्का उप-स्थित होनेपर भी जब कि यह देखा जाता है, कि अनुपकारी माता पिताको भी लोग परि-

त्याग करते हैं, तब यह निश्चय मालूम होता है कि कोई किसीका उपकार नहीं करता। मनुष्य जो गौरवके लिये पिता माताकी आराधना करता है, वह अपनेही ऐहिक और पारलौकिक हितके निमित्त, पिता-माताके हितके लिये नहीं करता। सहोदर भाई भी जब स्नेह हीन होता है, तब उसेभी जब कि मनुष्य त्याग देते हैं, तब दूसरे सामान्य लोगोंकी बातही क्या है। विशिष्टोंका विशिष्टसे दान वा प्रतिग्रह तुल्य है, सम्प्रदाता ब्राह्मणका दान प्रागुक्त दोनोंसे पुण्ययुक्त है। न्यायसे उपार्ज्जित धनकी न्यायानुसार बढ़ाके यत्नपूर्व्वक धर्म्म, अर्थ की रक्षा करनी उचित हैं, यही शास्त्रीय निश्चय है। धर्म्मार्थी मनुष्य नीच कर्म्मसे धन उपार्ज्जन न करे; शक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको सिद्ध करे, धन सम्पत्ति स्मरण न करे। निर्द्धन मनुष्य सावधान होकर शक्तिके अनुसार यदि भूखे अतिथिको ठण्ढा वा अग्निसे गर्म्म किया हुआ जल प्रदान करे, तो वह अन्नदानका फल भोग किया करता है।

फल मूल और पत्रसे मुनियोंकी अर्च्चना करके रन्तिदेवने इस लोकमें ही सिद्धिलाभ की थी। पृथ्वीपति शैव्यने भी उस ही प्रकार फल-पत्रके जरिये सूर्य्यदेवको सन्तुष्ट करके उस ही फलसे परम स्थान पाया, मनुष्य देवता, अतिथि पितर, पत्र और आत्माके निकट ऋणी होता है, इसलिये उनसे अऋणी होवे। स्वशाखोक्त वेदाध्ययनसे महर्षियों, यज्ञसे देवताओं, श्राद्ध और दानसे पितरों, सत्कारसे अतिथियों वेद शास्त्रमयी श्रवण मनन आदि वाणी पञ्चयज्ञसे शेष बचे अन्नके भोजन तथा जीवोंपर दया करनेसे आत्मा और जातकर्म्म आदि कार्य्योंकी यथावत् निर्व्वाह करके पुत्रोंसे अऋण होवे। मुनि लोग निर्द्धन होके भी प्रयत्नके सहारे सिद्ध हुए हैं, उन लोगोंने पूर्ण रीतिसे अग्निमें आहुति देकर सिद्धि लाभ की है। हे महाबाहो! ऋचीकपुत्र ऋग्मन्त्रके जरिये यज्ञभागि देवताओंकी स्तुति करके विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया। उशनाने देवोंके देव महादेवको प्रसन्न करके शुक्रत्व लाभ किया; वह देवी भगवतीकी स्तुति करके यशस्वी होकर आकाशमण्डलमें विराजते हैं। असित, देवल, नारद, पर्व्वत, कक्षीवान्, जमदग्निपुत्र राम, बुद्धिमान ताण्ड्य, वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधार और श्रुतश्रवा, ये सब महर्षि लोग तथा सावधानीसे ऋग्मन्त्रके जरिये बुद्धिमान् विष्णुकी स्तुति करके तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ की थी, भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपूज्य पुरुष भी पूज्य हुए हैं; इसलिये इस लोकमें जुगुप्सित कर्म्म करके कोई अपनी उन्नतिकी कामना न करे। धर्म्मसे जो सब अर्थ प्राप्त होता है, वही सत्य है और अधर्म्मसे जो उपार्ज्जित किया जाता है, वही निन्दित है; इसलिये धनकी अभिलाषसे इस लोकमें कोई नित्य धर्म्मको न त्यागे। जो धर्म्मात्मा आहिताग्नि हैं, वेही पुण्यात्माओंके बीच श्रेष्ठ हैं। हे प्रभु राजेन्द्र! वेदोंमें दाक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय, ये तीनों अग्नि निवास करती हैं। जिनकी क्रिया नष्ट नहीं होती, वे ब्राह्मण भी आहिताग्नि होते हैं। अनाहिताग्नित्व और निष्क्रिय अग्निहोत्र कदापि कल्याणकारी नहीं है। हे नरश्रेष्ठ! अग्नि ही आत्मा, अग्नि ही माता और जन्मदाता पिता है, तथा अग्नि ही गुरु है; इसलिये यथारीति अग्निकी परिचर्य्या करनी चाहिये। जो अभिमान त्यागके वृद्धोंकी सेवा करते हैं, वे कामहीन बुद्धिमान मनुष्य दयार्द्र दृष्टिसे सब जीवोंको देखा करते हैं। जो आलस रहित, धर्म्मपरायण और हिंसाहीन होते हैं, वे आर्य्य पुरुष ही इस लोकमें साधुओंके जरिये पूजित हुआ करते हैं।

२९२ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णोंसे हीनवर्ण शूद्रको वृत्ति ही उत्तम है, क्योंकि शूद्रको निर्द्दिष्ट सेवावृत्ति प्रीतिपूर्वक उपस्थित होकर सेवकोंको सदा धर्म्मिष्ठ किया करती है। शूद्रको यदि पितृ-पितामह आदि क्रमसे कोई निर्द्दिष्ट वृत्ति न रहे, तौभी वह त्रैवर्णिक सेवाके अतिरिक्त वृत्तग्रान्तरको खोज न करे, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंको सेवा करनेमें ही नियुक्त होवे। सब अवस्थामें ही सदा धर्म्मदर्शी साधुओंका संसर्ग ही शोभा पाता है, असत् संसर्ग कभी न करना चाहिये,—यही मेरी विवेचना होती है। जैसे उदयाचल पर स्थित मणि सुवर्णादि सूर्य्यको सन्निकर्षतासे प्रकाशित होते हैं वैसे ही सतां-सर्गसे नीच वर्ण शूद्र भी ज्ञानलाभ करके प्रकाशित हुआ करता है। जैसे श्वेत वस्त्र जिस रङ्गसे रङ्गा जाता है उसका रूप भी वैसा ही हुआ करता है, इसे ही तुम मेरे समीप मालूम करो; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, दोषोंमें कदापि अनुराग न करे, इस लोकमें मनुष्योंका चञ्चल जीवन अत्यन्त अनित्य है। बुद्धिमान् मनुष्य चाहे सुख अथवा दुःखरूपी किसी अवस्थामें निवास क्यों न करें, यदि वे शुभ कार्य्योंका सञ्चय करते हैं, तो अवश्य ही इस लोकमें कल्याण भाजन होते हैं। धर्म्मसे पृथक् कर्म्म यदि महाफल प्रदान करे तौभी बुद्धिमान मनुष्य उसे सेवन न करे; क्योंकि इस लोकमें वैसा कर्म्म हितकर कहके वर्णित नहीं हुआ है। प्रजासमूहके पालन विषयमें उदासीनता युक्त जो राजा दूसरेको सहस्र गऊ हरके दान किया करता है, वह नाम मात्रका फल-भागी तस्कर होता है। स्वयम्भू पहले सब लोक सत्कृत धाताको उत्पन्न करते हैं। धाता सब लोकोंके धारण करनेमें रत होकर पर्ज्जन्यदेव नाम पुत्रको उत्पन्न करते हैं। वैश्य जाति उनकी पूजा करके जीविकाके लिये कृषि वाणिज्य और पशुपालन आदि किया करती है। क्षत्रिय प्रजा पालन करें और ब्राह्मण लोग हव्यकव्य प्रयोगमें निपुण होकर जीविका निवाहें। शूद्र लोग निर्म्मार्ज्जन अर्थात् भूमि-शुद्धि आदि कार्य्य करें; इस ही भांति सब कोई स्वकर्म्म साधन करनेसे धर्म्मभ्रष्ट नहीं होते। हे राजेन्द्र! धर्म्म नष्ट न होनेसे सब प्रजा सुखी रहती है, उन लोगोंके सुखके निमित्त सुर लोकमें देवता लोग प्रसन्न होते हैं; इससे जो राजा स्वकर्म्मके अनुसार प्रजापालन करता है, जो ब्राह्मण वेद पढ़ता है, जो वैश्य कृषि वाणिज्य पशुपालन आदिसे धन उपार्ज्जनमें रत रहता है, और जो शूद्र सदा सावधान होकर तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहते हैं, वे सब कोई लोकसमाजमें सम्मानित होते हैं। हे मनुजेन्द्र! इसमें अन्यथा करनेसे मनुष्य स्वधर्म्मसे च्युत होता है। प्राण सन्ताप पूर्व्वक बीस वराटिका दान करनेसे भी महाफल हुआ करता है, और अन्यायसे उपार्ज्जित सहस्र धन दान करनेसे भी कुछ फल नहीं होता। हे नरनाथ! जो ब्राह्मणोंका सत्कार करके जिस प्रकार दान करते हैं, वे सदा वैसा ही उर्ज्जस्वल फलभोग किया करते हैं। जो दाता स्वयं पात्रके निकट जाके उसकी तुष्टिके निमित्त दान करता है, पण्डित लोग उस दानको अभिष्टुत अर्थात् सब प्रकारसे प्रशंसित कहते हैं, और मांगनेपर जो दान किया जाता है, उसे मध्यम दान कहा करते हैं, तथा अवज्ञा वा अश्रद्धासे जो दान किया जाता है, सत्यवादी मुनि लोग उसे ही अधम दान कहते हैं। संसारसमुद्रमें प्रायः डूबते हुए मनुष्य विविध उपायके सहारे उससे पार होनेकी चेष्टा करें, और संसारजालसे जिस प्रकार छुटकारा मिल सके, मनुष्य मात्रको ही उस विषयमें चेष्टा करनी उचित है। ब्राह्मण इन्द्रियोंके जीतने और क्षत्रिय युद्धमें विजय पानेसे शोभित होता है।

वैश्य धनउपार्ज्जन करने, और शूद्र सदा कार्य्योंमें निपुणता प्रकाशित करनेसे शोभा पाता है।

२९३ अध्याय समाप्त।

पराशर मुनि बोले, ब्राह्मणोंको दानसे, चत्रियोंको युद्ध जीतने, वैश्योंको न्यायसे प्राप्त होने और शूद्रोंको सेवाके जरिये मिला हुआ धन अत्यन्त थोड़ा होनेपर भी प्रशंसित होता है, और धर्म्मार्थमें लगानेसे वह महाफलजनक हुआ करता है। ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सदा सेवा करनेवाले पुरुषको ही शूद्र कहा जाता है। वृत्तिहीन ब्राह्मण, चत्रिय वा वैश्य धर्म्मका आचरण करनेसे पतित नहीं होता; परन्तु शूद्रका धर्म्म अवलम्बन करनेसे उस ही समय पतित होता है। अपने धर्म्ममें रहके जीविका लाभमें असमर्थ शूद्रके लिये बाणिज्य, पशुपालन और चित्र खींचना आदि शिल्प कर्म्मके जरिये जीविका निर्व्वाह विहित है, क्यों कि उक्त कार्य्य सेवामें ही परिगणित हुआ करते हैं। स्त्रीका वेष बनाके रङ्गभूमिमें जाना, रूप पलटना (बहुरूपी) अर्थात् सूक्ष्म वस्त्र पहनके चर्म्ममय आकारके जरिये राजा और सेवकोंके आचरणको प्रदर्शित करना, मद्यमांस बेचके जीविका निभानी, लोहा और चमड़ेको बेंचना; इन सब निन्दित कर्म्मोंको जिनके पूर्व्व पुरुषोंने कभी नहीं किया, उन्हें किसी प्रकार भी उसे न करना चाहिये; और जिनके पूर्व्व पुरुषोंने उक्त निन्दित कर्म्मको किया है, अधस्तन (नीचेके) यदि कोई पुरुष उक्त कर्म्मको छोड़ दें, तो उन्हें बहुत ही धर्म्म हुआ करता है, ऐसी ही जनश्रुति है। इस लोकमें बहुतसे अन्न वस्त्र आदि पाके मदोन्मत्त चित्त होकर लोकमें जो पुरुष पापाचरण करता है, वैसा निन्दित कार्य्य इन्हींके जरिये अनुष्ठित होनेपर भी मनुष्योंके सब भांतिसे अनङ्गो कार्य्य रूपसे वर्णित हुआ करता है। पुराणप्रवन्धमें सुना जाता है, कि प्रजासमूहने धिगदण्ड राजाके शासनके अनुसार जितेन्द्रिय, धर्म्मपरायण और न्याय धर्म्मानुयायी वृत्तिको अवलम्बन किया था। हे राजन्! इस लोकमें मनुष्योंके लिये धर्म्म ही सब समयमें श्रेष्ठ है; पृथ्वीमण्डलपर धर्म्मवृद्ध मनुष्य ही केवल गुणोंकी सेवा किया करते हैं। हे तात प्रजानाथ! काम क्रोध आदि असुर-स्वभाव वैरीवृन्द उस धर्म्मकी अवमानना करते थे। उस समय उनके क्रमसे वर्द्धित होते रहने पर प्रजा उनमें अनुप्रविष्ट हुई; तब प्रजा समूहमें धर्म्मनाशक दर्प उत्पन्न होने लगा; दर्पसे अभिमान और उसके अनन्तर उन लोगोंमें क्रोध उत्पन्न हुआ। धीरे धीरे क्रोधयुक्त प्रजावृन्दका चरित्र लज्जाकर होगया। हे राजन्! अनन्तर उन लोगोंकी लज्जा नष्ट हुई, अन्तमें मोह उत्पन्न हुआ। उस समय प्रजा मोहमें फंसकर अवमर्द्दनके जरिये यथा सुखसे वृद्धि लाभ करती हुई पहलेकी भांति आपसमें परस्परको तलावधान करनेमें विरत हुई। राजा धिगदण्ड उन सब समुद्धत प्रजाको शासन करनेमें असमर्थ हुए। तब वे सब प्रजा ब्राह्मणोंकी अवमानना करके देवस्वभाव शम दम आदिके सम्मुखीन हुईं। उस समय पहले कहे हुए देवता लोग माया वशसे बहुरूपधारी, नित्य ज्ञान ऐश्वर्य्य आदि गुणोंमें श्रेष्ठ वीरवर देवेश्वर शिवके शरणमें गये, शिवका दर्शन करनेसे उन लोगोंके तेजकी वृद्धि हुई, तब उन्होंने एक बाणसे ही दानव स्वभाववाले आकाशगत क्रोध आदि प्रजा समूहको स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके सहित पृथ्वीपर गिरा दिया। उक्त काम क्रोध आदि दानवोंका जो भीमपराक्रमी भयङ्कर महामोह नाम अधिपति था, वह देवताओंके पचमें भयानक होनेसे शूलपाणि महादेवके जरिये मारा गया। महामोहके मारे जानेपर मनुष्योंने निज निज भाव लाभ

किया और पहलीकी भांति वेदशास्त्र प्राप्त हुए आदि सृष्टिमें जैसे मरीचि आदि महर्षि लोग एकमात्र वेदनिष्ठ होकर तत्वज्ञानके अनन्तर जीवन मुक्त हुए थे, उस समयमें मनुष्योंका अन्तःकरण उस ही प्रकार अनादि सहासनासे एकमात्र वेदनिष्ठ हुआ था। अनन्तर सप्तर्षि वेद स्वरूप इन्द्रियोंके राज्यरूप वशिल विषयमें हृदयाकाश मय स्वर्ग लोक स्वरूप चैतन्यके जरिये शरीर वा इन्द्रियोंके निवास प्रवर्त्तक चिदात्माको अभिषिक्त करके मनुष्योंके शासन कार्य्यमें नियुक्त हुए। अनन्तर सप्तर्षियोंसे उर्द्ध लोकमें स्थित अवयव उपचयसे रहित विष्णु नाम पार्थिव अर्थात् शिर स्थानमें सहस्रदल कमलपर अधिष्ठित परमात्मा और योगविघ्न षट् चक्राधिपति गण आदि रूप विनाशि चत्रिय लोग पृथक् पृथक् मण्डलस्वरूपसे शरीरमें निवास करने लगे। जो सब पहलेके उग्रलोग महावंशमें उत्पन्न हुए थे, उनके हृदयसे भी आसुर भाव दूर न हुआ; इससे भयङ्कर पराक्रमी पार्थिव लोग उस आसुर भावसे ही आसुर कार्य्योंको निबाहने लगे, जो सब मनुष्य अत्यन्त मूढ़ थे, वे आसुर भावोंमें प्रतिष्ठित रहे, सबने आसुर कार्य्योंको स्थापित किया है, और अबतक भी आसुर भावोंमें रत हैं, प्रकृत भावको प्राप्त न कर सके। हे राजन्! इसलिये मैं शास्त्र अनुशीलन करके तुमसे कहता हूं, कि आसुर भावकी निवृत्तिकेलिये आत्मज्ञानके सिद्ध करनेमें यत्नवान् होकर मनुष्यमात्रको ही हिंसात्मक कर्म्म अवश्य परित्याग करना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य सत्कार कार्य्यसे धन पैदा न करे, न्याय पथमें जलाञ्जलि देकर जो धर्म्मार्थ धन उपार्जन करते हैं वह धन उनके लिये कल्याणकारी नहीं होता। तुम इस ही प्रकार सद्गुणोंसे युक्त, दान्त, और बन्धु प्रिय चत्रिय हो, इसलिये प्रजा, सेवक और पुत्रोंको स्वधर्म्मके अनुसार प्रतिपालन करो। इष्ट और अनिष्टके संयोगसे जो बैर और सुहृदता होती है, कई सहस्र जातियोंमें वह प्रवर्त्तित हुआ करती है; इसलिये सब गुणोंमें ही अनुरक्त होवे, किसी मतसे दोषोंमें अनुराग प्रकाशित न करे; क्योंकि निर्गुण नीच बुद्धि पुरुष भी जब कभी अपने किसी गुणको कथा सुनता है, तब वह अत्यन्त ही सन्तुष्ट होता है। हे महाराज! जैसे मनुष्य धर्म्माधर्म्ममें विद्यमान रहते हैं, मनुष्यहीन देशमें भी धर्म्म अधर्म्म दोनों ही हैं। धर्म्मशील विद्वान् मनुष्य अन्नार्थी ही हो, अथवा अनीह ही होवे, सदा सब भूतोंमें आत्मवित् ज्ञान करके जीवोंकी अहिंसाके जरिये जन समाजमें विचरे। जब उसका मन वासनाहीन, निरहंकार वा निर्गताज्ञान होगा, तब वह ब्रह्मानन्द लाभ करनेमें समर्थ होवेगा।

२६४ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, यह गृहस्थोंकी धर्म्मविधि कही गई, अब तपस्याकी विधि कहता हूं, सुनो। हे राजन्! राजस और तापस भावके प्रसङ्गसे प्रायः गृहस्थोंमें ममत्व उत्पन्न होती है, मनुष्य गार्हस्थ्य आश्रमको अवलम्बन करनेसे उनके गो आदि पशु चेत्र, धन, स्त्री, पुत्र तथा सेवक प्रभृति हुआ करते हैं। इस ही भांति संसार आश्रममें प्रवृत्त मनुष्य प्रतिदिन निज सम्पत्तिकी उन्नति और नित्यताको देखते रहने पर भी क्रमसे उनके राग द्वेषकी विशेष रूपसे वृद्धि हुआ करती है। हे नरनाथ! मनुष्यके विषयासक्त होकर राग द्वेषसे अभिभूत होने पर मोह जनित रति उसे अवलम्बन करती है। रतिपरायण मनुष्यमात्र ही आत्माको भोगशील और कृतार्थ समझ कर अनुराग वशसे ग्राम्य सुखके अतिरिक्त दूसरे लाभको लाभ ही नहीं समझता। अनन्तर मनुष्य विषयोंमें आसक्त होनेसे लोभमें फंसके कुटुम्ब और दासदासी

आदिके परिमाणको वृद्धि करता है, अन्तमें उन्हींके प्रतिपालनके लिये कुसीद व्यापारसे धन बढ़ानेमें यत्नवान होता है। मनुष्य सन्तान सन्ततिमें स्नेहयुक्त होकर जिस कार्य्यको अकार्य्य समझा जाता है, धनके लिये वैसे कार्य्योंको भी करनेमें कुण्ठित नहीं होता; परन्तु उस अर्थके नष्ट होने पर परिताप किया करता है। अनन्तर अभिमानयुक्त होके जिस भांति अपनी पराजय न हो, उस विषयमें सदा सावधान मनुष्य किस प्रकारसे "मैं सुख भोग करूंगा"—ऐसी ही चिन्तामें निमग्न होता है, अन्तमें भोगाभिलाषमें आसक्त होकर मृत्युके मुखमें पड़ता है। जो मनुष्य ऐसा समझता है, कि मैं स्त्री आदि परिवारोंसे भोगवान हूंगा, वह उन परिजनोंसे ही बिनष्ट होता है। जो सब प्रत्याशा रहित शाश्वत ब्रह्मवादी मनुष्य लोक निषिद्ध काम्य कर्म्म परित्याग करके शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें ही सुख लाभ हुआ करता है। हे राजन्! मनुष्य प्रीतियुक्त स्त्री पुत्रोंके नाश, धन नाश और आधिव्याधिके प्रभावसे दुःख पाता है। हे महाराज! उस ही निर्व्वेद निबन्धनसे आत्मबोध होता है, आत्मबोधसे शास्त्र दर्शन हुआ करता है, शास्त्रार्थ दर्शनसे मनुष्य तपस्याको ही कल्याणकारी समझता है। हे मनुजेन्द्र! सार असारमय विवेकयुक्त मनुष्य अत्यन्त दुर्ल्लभ हैं; पत्नीसे जो सुख उत्पन्न होता है, उससे जो मनुष्य क्लेश पाके उसमें दोष देखता है, वही तपस्या करनेमें समर्थ होता है। हे तात! जितेन्द्रिय और दान्त पुरुषोंके स्वर्गमार्ग प्रवर्त्तक तपके नियम साधारण हैं, दम दया और दान आदिमें हीन वर्णोंकाभी अधिकार है। हे राजन्! पहिले समय यजमान अवस्थामें प्रजापतिने किसी किसी स्थानमें व्रत अवलम्बन करके तपस्याके सहारे प्रजासमूहको उत्पन्न किया था। हे तात! आदित्यगण, वसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, मरुत, विश्वदेव साध्य, पितर, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व्व, सुरपुरवासी सिद्ध लोग तथा इनके अतिरिक्त दूसरे स्वर्गवासियोंने भी तपस्याके जरिये सिद्धि लाभकी है। आदित्य प्रभृति सबने ही यजमान होकर निज निज पदप्रापक कर्म्मोंको करके उसहीने उस ही पदको पाया है। पहले समयमें सृष्टिके आरम्भमें प्रजापतिने तपस्याके जरिये जिन सब ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, वे भूलोक और सुरलोक दोनों ही स्थानोंमें विचरते रहते हैं। मर्त्त्य लोकमें जिन राजाओं और गृहमेधी पुरुषोंने महावंशमें जन्म ग्रहण किया है, उनका वैसे सद्‌वंशमें जन्म होना तपस्याके फलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कौसिकवस्त्र मनोहर आभूषण, विचित्र आसन, वाहन और यान, ये सभी तपस्याके फल हैं। मनके अनुकूल सहस्रों रूपवती प्रमदा और कोठेके ऊपर निवास, ये सब तपस्याके ही फल हैं। उत्तम शय्या, अनेक प्रकारके उपादेय भोज्य और अभिप्रेत विषयोंकी सिद्धि शुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंको ही प्राप्त हुआ करती हैं। हे शत्रुतापन! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो तपस्याके जरिये प्राप्त न होसके; कृतकृत्यता-हीन मनुष्योंके लिये उपभोगका परित्याग अर्थात् वैराग्य ही तपस्याके फल रूपसे निर्दिष्ट हुआ करता है। हे नृपसत्तम! चाहे मनुष्य सुखी हो, वा दुःखी हो, मन तथा बुद्धिके सहारे शास्त्रको देखके लोभ त्याग करे। असन्तोष केवल दुःखका ही हेतु है, लोभसे इन्द्रियोंमें पूर्णरीतिसे भ्रम उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये इन्द्रियभ्रमसे लोभी पुरुषोंकी प्रज्ञा अभ्यास रहित विद्याकी भांति होजाती है। जब मनुष्य नष्टबुद्धि होता है, तब उसकी न्याय दृष्टि नहीं रहती अर्थात् उस समयमें वह कर्त्तव्य अकर्त्तव्यके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये सुखकी समाप्ति होनेपर पुरुष उग्र तपस्या करे। प्राचीन लोग

कहा करते हैं, जो दृष्ट है, वही सुख है; और जो द्वेषयुक्त है, उसहीका नाम दुःख कहा जाता है। तपस्या करनेसे सुख, न करनेसे दुःख होता है, इसलिये कृतकृत्य तपस्याका जिस प्रकार फल हुआ करता है, उसे देखो। मनुष्य शुद्धतासे तपस्या करके सदा शुभ दर्शन वा सब विषयोंको उपभोग करता तथा जनसमाजमें विख्यात होता है; और फलकी इच्छावाला मनुष्य अप्रिय अवमानना तथा अनेक प्रकार दुःख लाभ करते हुए तपस्याका फल परित्याग करके विषमय फल पाता है। धर्म्म, तपस्या और दान विषयमें यथा समय कर्त्तव्यता होनेपर भी स्थिर कार्य्योंमें चिकीर्षा उत्पन्न होती है, नित्यकर्त्तव्य कार्य्यके समय जो पुरुष स्वेच्छापूर्व्वक प्रवृत्त होकर अन्य कर्म्म करता है, वह वैसा पापाचरण करके नरकमें डूबता है। हे नरेन्द्र! जो मनुष्य सुख अथवा दुःखके समय भी निज धर्म्मसे विचलित नहीं होता, उसे ही शास्त्रदर्शी कहा जाता है। हे नरनाथ! जितने समयके बीच धनुषसे छुटा हुआ बाण पृथ्वीपर गिरता है, उतनेही समयमें देखना, चखना, सूंघना, सुनना और स्पर्शेन्द्रियके विषयसम्बन्ध निबन्धनसे अनुराग हुआ करता है, अनन्तर इन्द्रियजनित सुखकी समाप्ति होनेपर तीव्र दुःख उत्पन्न होता है; इसलिये मूढ़ लोग अनुत्तम मोक्ष सुखकी प्रशंसा नहीं करते, तब उस विषयमें यत्न क्यों करेंगे। विषयके आकर तीव्र पीड़ाके हेतु विवेक मात्रमें ही मोक्ष फलके लिये शम दम आदि साधनोंमें प्रवृत्ति हुआ करती है। विवेकी मनुष्यके धर्म्मानुसार निवास करनेपर काम और अर्थ उसे अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होते। गृहस्थ लोग प्रारब्ध कर्म्मके अनुसार सम्प्राप्त अयत्न सिद्ध विषयोंके सेवनसे विरत न होवें; क्यों कि उससे फल विसम्वाद दर्शनके जरिये पुरुषके प्रयत्नकी दुर्बलता देखी जाती है। धर्म्मविषयमें पुरुषार्थकी प्रबलता दीखती है; इसलिये यत्नके अनुसार प्राप्त विषयोंका सम्भोग ही निज धर्म्म है, मेरी ऐसी ही विवेचना होती है। माननीय सत्कुलमें उत्पन्न सदा शास्त्र देखनेवाले मनुष्य जिन कार्य्योंको करते हैं, धर्म्मरहित मूढ़चित्तवाले मनुष्य उसे कदापि सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते। जब कि मनुष्योंके क्रियमाण कर्म्म विनष्ट हुआ करते हैं, तब उन्हें तपस्याके अतिरिक्त दूसरा कर्त्तव्य कर्म्म और कुछ भी नहीं है। हे महाराज! इसलिये मनुष्य यज्ञादि कर्म्म करनेके लिये निपुणताके सहित निजधर्म्ममें स्थित होके स्थिर बुद्धिवाला होवे। जैसे सब नद नदी समुद्रमें जाके निवास करती हैं, वैसे ही सब आश्रमोंके मनुष्य गृहस्थके अवलम्बसे निवास किया करते हैं।

२९५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे महर्षि! कृष्ण, धूम्र, नीला, लाल, पीला और सफेद इन छः प्रकारके वर्णोंके बीच किस प्रकार स्वभाविक वर्णोंसे किन किन वर्णोंमें अधिकता उत्पन्न होती है, इसे ही मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। हे वक्तृवर! इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये; सतोगुण प्रधान ब्राह्मणोंका अपत्य सतोगुणनिष्ठ ही हुआ करता है। ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्य पुत्ररूपसे स्वयं उत्पन्न होता है, परन्तु क्या कारण है, कि ब्राह्मणोंसे उत्पन्न हुए सन्तान क्षत्रिय आदि जाति विशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं।

पराशर मुनि बोले, आपने जो कहा वह यथार्थ है, जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसहीके रूप समान हुआ करता है, परन्तु तपस्याके अपकर्षसे जातिविशेषके धर्म्मको ग्रहण करते हैं। पवित्र वीर्य्य और पवित्र क्षेत्रसे जिसकी उत्पत्ति होती है, वह अवश्य ही पवित्र होता है। क्षेत्र

और बीजमेंसे एककी हीनता होनेसे सम्भव है, उससे उत्पन्न हुए मनुष्य अपकृष्ट रूपसे उत्पन्न होते हैं। हे राजन्! धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसाही जानते हैं, कि लोकस्रष्टा प्रजापतिके मुख, बाहु, ऊरु और दोनों चरणसे मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। हे तात! उसमेंसे ब्राह्मण लोग प्रजापतिके मुखसे, क्षत्रिय बाहु, वैश्य ऊरु और परिचारक शूद्र लोग पांवसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। हे पुरुषप्रवर! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंकी ही उत्पत्तिका विषय निर्णीत है, इनसे अतिरिक्त जो सब दूसरी जाति हैं, वे सङ्करज हैं। हे नर-नाथ! उक्त चारों वर्णोंके परस्पर अनुलोम और विलोम परिग्रहसे क्षत्रिय; अतिरथ अम्बष्ठ उग्र, वैदेहक, स्वपाक, पक्कस, तेन, निषाद, सूत, मागध, अयोग, करण व्रात्य और चाण्डाल जाति उत्पन्न होती हैं।

जनक बोले, हे मुनिसत्तम! एकमात्र प्रजा-पतिसे उत्पन्न हुए मनुष्योंमें किस प्रकार गोत्रके अनुसार अनेकत्व हुआ करती है। इस लोकमें अनेक भांतिके गोत्र दीखते हैं, इसका क्या कारण है मुनिलोग स्वयोनिसे जिन सन्तानोंको उत्पन्न करते हैं, वेही ब्राह्मण हैं, परन्तु जिस किसी योनिमें जिन सब सन्तानोंको उत्पन्न किया है, उन लोगोंको ब्राह्मणत्व किस प्रकारसे हुआ; जो लोग शुद्ध योनिसे उत्पन्न होते हैं, वेही पवित्र हैं, और जो लोग विरुद्ध योनिसे जन्मे हैं, वेही निकृष्ट हैं। काक्षीवानके जरिये शूद्रागर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रोंने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था।

पराशरमुनि बोले, हे राजन्! तपस्याके सहारे जो आत्माका ध्यान किया करते हैं, उन महात्माओंकी निकृष्ट जन्मके जरिये जो उत्पत्ति होती है वह कदापि ग्राह्य नहीं हैं। हे राजन्! मुनियोंने जिस किसी योनिसेही पुत्रोंको उत्पन्न करके निज तपोबलसे उसका ऋषित्व विधान किया है। हे विदेहराज! पहले मेरे पितामह कश्यप गोत्रमें उत्पन्न ऋष्यशृङ्ग, वेद, ताण्ड्य, कृप, काक्षीवान, कमठ आदि मुनि लोग यवक्रीत वक्र, वर द्रोण, आयु, मतंग, दत्त, द्रुपद और मात्स्य आदि मनुष्य तपस्याके अवलम्बसे निज प्रकृतिको प्राप्त हुए थे। ये सब वेदवित् पुरुष इन्द्रिय विजय और तपस्याके जरिये धर्म्म मर्य्यादा रक्षक कहके प्रसिद्ध हैं। हे राजन्! पहले चार ही मूल गोत्र उत्पन्न हुए थे, अंगिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु, येही उक्त चारों मूल गोत्रोंके प्रवर्तक हैं। इसके अति-रिक्त दूसरे सब गोत्र कर्म्मसे उत्पन्न अर्थात् पर-मात्मासे कर्म्मके निमित्त ही वर्णाश्रम गोत्रकी कल्पना हुई है। तपस्याके जरिये उन सब गोत्रोंके जो सब नाम धेय कल्पित होते हैं ऋषि लोग उसे ही ग्रहण किया करते हैं, अर्थात् ऋषियोंसे समुद्दिष्ट वरण विवाह आदि श्रौत स्मार्त्त व्यवहार अवलम्बन करके पृथक् गोत्रोंके नामसे वर्णित हुए हैं।

जनक बोले, हे भगवन्! आप पहले मेरे समीप वर्णोंके विशेष धर्म्म वर्णन करिये, शेषमें सामान्य धर्म्मोंका विवरण कहियेगा; आप सब विषयोंको ही वर्णन करनेमें विशेष पारदर्शी हैं।

पराशरमुनि बोले, हे नरपाल! प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन, ये ब्राह्मणोंके विशेष धर्म्म हैं, क्षत्रियोंके लिये प्रजापालन ही उत्तम धर्म्म है, कृषि, पशु पालन तथा वाणिज्य वैश्योंके मुख्य धर्म्म हैं और द्विजोंकी सेवा ही शूद्रोंका धर्म्म है। हे तात नरनाथ! ये सब वर्णोंके विशेष धर्म्म कहे गये, अब मेरे मुखसे विस्तार पूर्व्वक साधारण धर्म्मोंकी सुनिये। हे राजन्! अनृशंसता, अहिंसा, अप्रमाद, सम्विभाग, श्राद्ध-धर्म्म, अतिथि, सत्कार, सत्य, क्रोधहीनता, सन्तोष, पवित्रता, सदा, अनुसूयता, आत्मज्ञान और तितिक्षा, ये तेरह धर्म्म सब वर्णों और आश्रमोंमें साधारण हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्णही द्विजाति कहे जाते हैं। हे

राजन् ! इसलिये ऊपर कहे हुए तेरह धर्म्मोंमें उन लोगोंका समान अधिकार है। जैसे ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वकर्म्ममें रत होकर साधु पुरुषोंका आसरा ग्रहण करनेसे उन्नत होते हैं, वैसे ही निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे पतित हुआ करते हैं। शूद्र जातिका कोई संस्कार नहीं है, इसीसे निषिद्ध कर्म्मोंके अनुष्ठानसे उसके पतित होनेकी सम्भावना नहीं है। वेद विहित कर्म्मोंमें उसका अधिकार न रहनेसे पहले कहे हुए तेरह प्रकारके धर्म्म पालनके लिये शूद्रके विषयमें निषेध विधि कुछभी विहित नहीं है। हे महाराज विदेह ! वेदज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग शूद्रको ब्रह्माके समान अर्थात् ब्राह्मण तुल्य कहा करते हैं, परन्तु मैं शूद्रको जगत्‌में प्रधान क्षत्रिय स्वरूप विष्णुरूपसे देखा करता हूं। पहिले कहा गया है, प्रजापति ब्राह्मण और विष्णु क्षत्रिय वर्ण हैं; इसलिये शूद्र वैश्य और क्षत्रिय जन्मके अनन्तर ब्राह्मणत्व लाभ करके विदेह कैवल्य लाभ करता है, यह वैदिक मत है; और मेरे मतमें शूद्र क्षत्रियजन्मके अनन्तर ही ब्राह्मणत्व लाभ करके मोक्षपद पाता है। शूद्र लोग यदि साधुओंके आचरित दम, दान, दया आदिका अनुष्ठान करते हुए काम क्रोध आदि दोषोंको नष्ट करनेके अभिलाषी होकर मन्त्रपाठ छोड़के पौष्टिकी क्रियाका निर्व्वाह करें, तो उसके लिये दूषित नहीं होते। साधारण लोगोंमें जो जिस प्रकार सदाचार अवलम्बन करते हैं, वे उस ही भांति सुख लाभ करके इस लोक और परलोकमें आनन्दित होते हैं।

जनक बोले, हे महामुनि ! कोई कर्म्म और कोई जाति शूद्रको दूषित करती है, अर्थात् अत्यन्त हीन करनेमें समर्थ होती हैं; उस विषयमें मुझे सन्देह उत्पन्न हुआ है; इसलिये मेरे समीप आपको उस विषयकी व्याख्या करनी उचित है।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज ! कर्म्म और जाति दोनों ही दोषकारक हैं, इसमें सन्देह नहीं है; इसलिये उस विषयका विशेष वृत्तान्त सुनो। जाति और कार्य्यके जरिये जो कर्म्म दूषित होता है, पुरुष कदाचित उसका आचरण नहीं करता; और जो पुरुष जातिके जरिये दूषित होता है, वह पापयुक्त कर्म्म करनेसे विरत हुआ करता है। जातिके अनुसार प्रधान पुरुष यदि निन्दित कर्म्म करे, तो वह कर्म्म ही उसे दूषित करता है, इसलिये वैसा कर्म्म कदापि उत्तम नहीं है।

जनक बोले, हे द्विजसत्तम ! इस लोकमें कौन कर्म्म धर्म्मयुक्त हैं, जिसे सदा अनुष्ठान करनेसे भी सब भूतोंकी हिंसा नहीं होती।

पराशरमुनि बोले, हे महाराज ! जो सब अहिंस्र कर्म्म मनुष्योंकी सर्व्वदा रक्षा करते हैं, उस विषयमें तुम मुझसे जो कुछ प्रश्न करते हो, अब उसका उत्तर सुनो। परिव्राजक धर्म्म अवलम्बन कर अग्नि स्पर्श करके जो लोग उदासीन हुए हैं, वे शोकरहित होकर यथाक्रमसे वितर्क विचार, आनन्द और अस्मिता नामक योगभूमिमें आरोहण करके निःश्रेयस कर्म्मपथ अवलोकन करते हैं। वे सब श्रद्धावान् विषयान्वित, दम परायण, अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धिसे युक्त मनुष्य लोग सब कर्म्मोंसे रहित होकर उस स्थानमें गमन किया करते हैं; जहांपर जरा नहीं है। हे राजन् ! ब्राह्मण आदि सब वर्ण इस जीव लोकमें पूर्णरीतिसे कर्म्म कार्य्योंको सिद्ध करने सत्य वचन कहने और दारुण अधर्म्मके त्यागनेसे स्वर्गमें जाते हैं, इस विषयमें कुछ भी विचार करना उचित नहीं है।

२९६ अध्याय समाप्त।

पराशरमुनि बोले, हे राजन् ! भक्ति हीन पुरुषोंको पिता, सखा, पत्नी और गुरुजन आदि

सेवाका फल दान करनेमें समर्थ नहीं होते, जो अनन्य भक्त होके प्रिय वचन कहा करता है, सब कोई उसके हितकारी और वशीभूत हुआ करते हैं। मनुष्योंके लिये पिता ही परम देवता है, पण्डित लोग पिताको मातासे भी अधिक गौरवशाली कहा करते हैं; और पितासे ज्ञान लाभके कारण उसे परम श्रेष्ठ कहा जाता है; क्यों कि मनुष्य ज्ञान लाभसे इन्द्रिय विषयोंको जीतकर परमपद पाते हैं। जो राजपुत्र रणभूमिमें घायल होके शराग्नि शय्यापर शयन करके जलते हैं, वे देवताओंके भी अत्यन्त दुर्ल्लभ लोकोंको पाके अनायास ही स्वर्गसुख भोग किया करते हैं। हे राजन्! संग्राममें श्रान्त, भीत, शस्त्रहीन, रोदन परायण जो भागे जाते हों, रथ घोड़े कवच आदिसे रहित, अनुयोगी, रोगी, याचमान, बालक और वृद्धको किसी प्रकार भी हिंसा करनी उचित नहीं है। और जो क्षत्रिय युद्धमें रथ, घोड़े कवच आदिसे संयुक्त, उद्योगी तथा अपने समान हो, राजा उसे ही आक्रमण करे। ऐसा निश्चय है, कि अपने समान वा विशिष्टके जरिये मरना ही कल्याणकारी है; अत्यन्त हीन, कादर और कृपणसे मारा जाना बहुत ही निन्दित है। हे नरनाथ! पापात्मा पापाचारी और अत्यन्त हीन पुरुषसे जो वध होता है, वही पापयुक्त और नरकका निमित्त कहके निश्चित हुआ है। हे राजन्! मृत्युके मुखसे परित्राण वा जिसकी परमायु शेष हुई है उसे मृत्यु मुखसे आकर्षण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता। आत्मगणोंके जरिये क्रियमाण अभ्यङ्ग कर्म्म और हिंसामय समस्त कर्म्मोंसे निवृत्त होना उचित है, दूसरेकी परमायुसे अपनी आयु दूषित करनेकी कोई इच्छा न करे। हे तात! मृत्युकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ लोग यदि किसी तीर्थमें जीवन परित्याग करें, तो उनकी वह मृत्यु परम उत्तम है। परमायु क्षय होनेसे ही मनुष्य पञ्चत्वको प्राप्त होता है, यदृच्छा मरणसे किसीकी अकारण मृत्यु होती है। किसीको अज्ञानमात्रके दूर होनेसे स्वतः सिद्ध मोक्ष फल तीर्थ-मरण आदि कारणसे सिद्ध हुआ करता है। जो पुरुष देह लाभ करके जल प्रवेशादिके जरिये उस शरीरका पञ्चत्व साधन करता है, वह देहत्यागी मनुष्य फिर दुःख भोगनेके निमित्त वैसा ही शरीर पाता है; पवित्र क्षेत्र तीर्थादिमें भी यदि किसीको अवैध भावसे मृत्यु हो तो वह मोक्षका पथिक होके भी कुत्सित कार्य्य वशसे देहको त्यागके देहान्तर लाभ किया करता है, उस विषयमें दूसरा कारण और कुछ भी नहीं है। देहधारियोंको वह यातना देह मोक्ष योग्य सूक्ष्मपिशाचमें आत्महत्या जनित पापको ढोने और दुःख भोग करनेके निमित्त निवास करती है। अध्यात्म विचार करनेवाले विद्वान पुरुष इस चर्म्मसे ढके हुए शरीरको शिरा, स्नायु और हड्डी आदिसे युक्त विभत्स तथा मलमूत्रसे परिपूरित, पञ्चभूत, दशों इन्द्रिय और वासना-मय विषयोंका स्थान कहा करते हैं। यह शरीर सुन्दरता आदि गुणोंसे हीन होनेपर भी पूर्व्व वासनासे मनुष्यत्वको प्राप्त होता है। यातना शरीर सबके आरम्भकभूतोंके प्रकृतिको प्राप्त होनेपर जीवसे परित्याग किये जानेसे चेत रहित होजाता है, तथा निश्चेष्ट होके पृथ्वीपर गिर पड़ता है। हे विदेहराज! यह शरीर जिस जिस स्थानमें मृत होता है, कर्म्म संयोगसे फिर उस ही स्थानमें जन्म ग्रहण करता है, परन्तु जो शरीर पहले परित्यक्त होता है, कर्म्म फल भोगनेके निमित्त पुनर्व्वार उत्पन्न हुआ शरीर तत्सजातीयरूपसे नहीं दीखता। हे राजन्! जबतक पाप नष्ट नहीं होता, भूतात्मा सूक्ष्मपिशाच तबतक निज स्वरूपसे प्रकट नहीं होता। महान् अम्बुधरकी भांति आकाशमण्डलमें भ्रमण करता है।

अन्तमें उपाधि जनित कलुषता छूटनेपर स्थान पाके फिर जन्मता है। मनसे आत्मा श्रेष्ठ और इन्द्रियोंसे मन उत्तम है। हे राजन्! जो सब अनेक प्रकारके जीव हैं, उनमेंसे जङ्गम जीव श्रेष्ठ हैं, और जङ्गम जीवोंके बीच दो पांववाले मनुष्य ही परम श्रेष्ठ हैं, दो पांववालोंमें द्विज लोग ही उत्तम हैं। हे राजेन्द्र! द्विजोंके बीच बुद्धिमान पुरुष ही श्रेष्ठ हैं, ज्ञानियोंमें योगी पुरुष और योगियोंके बीच योग ऐश्वर्य्यके दर्पसे रहित मनुष्य गरिष्ठ होते हैं। यह निश्चय है, कि मनुष्योंका मरना जन्मका ही अनुसरण किया करता है, सब लोग गुणके अनुसार चयशील कर्म्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं। हे राजन्! सूर्य्यके उत्तरायण गमन करनेपर पवित्र नक्षत्र और पवित्र मुहूर्त्तमें जिसकी मृत्यु होती है, वह किसी पुरुषको क्लेश न देकर पापोंको धोके आत्मशक्तिके अनुसार कर्म्म करते हुए कालकृत मृत्युके जरिये इस लोककी परित्याग करते हैं। विष भक्षण, उद्बन्धन, दाह, दस्युओंके हाथसे मारा जाना और दंष्ट्र पशुओंके जरिये जो मृत्यु होती है। वह प्राकृत मृत्यु कही जाती है। पुण्यशील मनुष्य आधिव्याधियोंसे पीड़ित होके भी ऐसे ही अनेक प्रकारकी तथा अन्यान्य दुर्म्मरणकी कामना नहीं करते। हे नृपति! जो लोग उत्तरायणमें प्राणत्याग करते हैं, उन पुण्यवान मनुष्योंका प्राण सूर्य्यमण्डलका भेदकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मध्यम पुण्यशालि मनुष्योंका प्राण मनुष्य लोकमें प्रतिष्ठा लाभ करता है, और पापी लोगोंका प्राण अधोलोकमें गमन करता है। हे राजन्! जो मनुष्य अज्ञानसे आहत वा प्रेरित होकर अत्यन्त दारुण घोर कर्म्मोंको किया करता है, उस पुरुषको अज्ञानके समान कोई भी शत्रु नहीं है। हे राजपुत्र! जिसके प्रबोधके लिये वेद वा धर्म्मके अनुसार लोग वृद्धोंकी उपासना करनेमें प्रवृत्त होते हैं वह अज्ञानरूप शत्रु-

यत्न साध्य प्रज्ञाशरके जरिये उन्मथित होनेसे ही नष्ट हो जाता है। धर्म्मकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करके वेदाध्ययन तपस्याके जरिये यज्ञ निर्व्वाह तथा यथाशक्ति पञ्चइन्द्रियोंको निग्रह करके निज वंश स्थापित करते हुए मोक्षार्थी होकर वनमें गमन करे। हे तात! मनुष्य उपभोगहीन आत्माको कदापि अवसन्न न करे, चाण्डालके घरमें जन्म होनेपर भी मनुष्य जीवनको सब प्रकारसे उत्तम समझे। हे पृथ्वीनाथ! आत्मा जिसे पाके शुभ लक्षणयुक्त कर्म्मोंके जरिये अपना परित्राण करनेमें समर्थ होता है, वह मनुष्य जीवन ही प्रथम योनि है। मनुष्य लोग श्रुतिप्रमाण्य दर्शन निबन्धनसे "किस प्रकार इस योनिसे च्युत न होऊं" इसे ही सोचके सदा धर्म्मका अनुष्ठान करते हैं। जो मनुष्य अत्यन्त दुर्ल्लभ जीवन पाके इससे द्वेष करता है, वह धर्म्मावमन्ता कामात्मा पुरुष कामसे वञ्चित हुआ करता है। हे तात! जो पुरुष विरक्त होकर विषयोंकी ओर न देखकर प्रीतियुक्त नेत्रसे स्नेह सम्वर्द्धनीय दीपककी भांति जीवोंको देखते हैं, और धैर्य्य वचन, अन्नदान तथा प्रिय वाक्यसे सबके दुःख सुखमें मिलित होते हैं, वे परलोकमें पूजित हुआ करते हैं। हे भूपति! सरस्वती, नैमिषक्षेत्र, पुष्कर अथवा पृथ्वीके बीच कुरुक्षेत्र आदि जो सब पवित्र क्षेत्र हैं, वहांपर दान, विषयासक्तिका परित्याग शान्तमूर्त्ति धारण तथा जल वा तपस्याके जरिये शरीरको शोधन करना उचित है। घरमें जिसका प्राण निकल जाता है, उसके मृत शरीरको जलाना ही उत्तम है, इसलिये मृत्यु शरीरको यानके जरिये श्मशानमें लेजाकर शौचविधिके अनुसार दाह करना ही योग्य है इष्टि, पुष्टि, यजन, याजन, दान और पुण्य कर्म्मोंके अनुष्ठान तथा शक्तिके अनुसार पितृ लोकके उद्देश्यसे जो कुछ विहित है, मनुष्य अपने ही लिये वह सब किया

करता है। हे नरनाथ ! आत्मष्टकर्म्मा मनुष्योंके कल्याणके निमित्त ही धर्म्म शास्त्र, शिचा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, ये षड़ङ्ग और सब वेद विहित हुए हैं।

भीष्म बोले, हे महाराज ! महानुभाव पराशर मुनिने पहिले समयमें कल्याणके निमित्त विदेहराजके निकट इन सब विषयोंको कहा था।

२९७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, मिथिलाधिपतिने धर्म्म विषयसे कृत निश्चय होकर महात्मा पराशर मुनिसे फिर प्रश्न किया। जनक बोले, हे ब्रह्मन् ! कल्याण साधन क्या है, गति किसे कहते हैं। कौन कर्म्म करनेसे वह नष्ट नहीं होता और कहां जानेसे मनुष्यको संसारमें फिर नहीं आना पड़ता। हे महाबुद्धिमान आप मुझसे वही कहिये।

पराशर मुनि बोले, जो कुछ कल्याणके साधन हैं, आसक्तिहीनता ही उसका मूल है, ज्ञान ही परम तपस्या है, और सत्पात्रमें दानका फल कदापि विनष्ट नहीं होता। जब मनुष्य अधर्म्ममय पाशको काटके धर्म्म कार्य्यमें अनुरक्त होता है, उस समय वह सब भूतोंको अभय दान करके सिद्ध लाभ करता है। जो लोग सहस्रों गऊ और सैकड़ों घोड़े दान करते तथा सब भूतोंको अभय दान करते हैं, अभय सदा उनके सब ओर निवास करती है, अर्थात् उसे कभी किसी पुरुषसे भय नहीं होता। बुद्धिमान मनुष्य विषयके बीच निवास करके भी उसमें लिप्त नहीं होते और दुर्बुद्धि पुरुष असत् विषयोंमें ही आसक्त हुआ करते हैं। जैसे पय पुष्करपत्रमें संश्लिष्ट नहीं होता, वैसे ही अधर्म्म कभी बुद्धिमान् पुरुषको स्पर्श नहीं कर सकता। समस्त पाप अप्राप्त पुरुषको ही जतुकाष्टकी भांति आलिङ्गन किया करता है। कभी अधर्म्म फल दानात्मिका क्रियापेची होकर कर्त्ताको परित्याग नहीं करता, कर्त्तृ-त्वाभिमानी मनुष्य यथा समयमें अधर्म्मका फल पाता है। आत्माप्रत्ययदर्शी कृतात्मा मनुष्य कदापि कर्म्म फलके जरिये क्लेशित नहीं होते; बुद्धि कर्म्म और इन्द्रिय सम्बन्धसे प्रमत्त होकर जो पुरुष अपनी बुरी चेष्टाको नहीं समझ सकता, वह शुभाशुभ विषयोंमें आसक्तचित्त होकर महत् भय पाता है। जो लोग सदा पूर्ण रूपसे राग रहित होके क्रोधको जीतते हैं, वह विषयोंमें लिप्त रहके भी पापयुक्त नहीं होते। जो विषयोंमें आसक्त रहके मर्य्यादा-रूपी नदीमें धर्म्मसेतु बांधते हैं, वे किसी प्रकारभी अवसन्न नहीं होते, वल्कि प्रति दिन उनके तपवृद्धिकी परिपुष्टि होती है। हे राजश्रेष्ठ ! जैसे विशुद्धमणि नियमके अनुसार सूर्य्यके तेजको ग्रहण करती है, वैसे ही जीव योगके सहारे ब्रह्मभाव लाभ किया करता है। जैसे तिलोंका स्नेह पृथक् पृथक् पुष्प संश्रयसे अत्यन्त रमणीय होता है, वैसे ही आत्मध्यान परायण मनुष्योंमें बार बार वासनाभ्यास निवन्धनसे सतोगुण उत्पन्न हुआ करता है।

जब मनुष्य सुरपुरमें वास करनेकी अभिलाष करता है, तब पत्नी पुत्र आदि परिवार और अतुल सम्पत्ति अनेक प्रकारकी सत्क्रिया तथा निज पद परित्याग किया करता है; उस समय उसकी बुद्धि शब्द स्पर्श आदि विषयोंसे पृथक् होती हैं। हे राजन् ! जिस मनुष्यकी बुद्धि विषयोंमें लिप्त होती है, वह कदापि आत्महित समझनेमें समर्थ नहीं होता। जैसे मछली बंशीमें मांस देखकर उसमें फंस जाती हैं, वैसे ही मनुष्य भी सर्व्वभाव अनुगत मानसके जरिये आकृष्ट हुआ करते हैं, देह इन्द्रिय आदि संघातकी भांति स्त्री-पुत्र पशु आदि परस्पर उपकारक होके भी कदली गर्भवत् निःसार हैं; जैसे नौका जलमें डूबती है, वैसे

ही ये भी विनष्ट हुआ करते हैं। पुरुषके पक्षमें धर्म्मके समयका कुछ भी निश्चय नहीं है और "मनुष्यने धर्म्म नहीं किया है" इसके लिये मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। जब कि मनुष्य मृत्युमुखमें ही पड़ा हुआ है, तब उसे सदा धर्म्माचरण करना ही शोभा देता है। जैसे अन्धा अभ्यासके सहारे निज गृहमें गमन करता है, वैसे ही प्राज्ञ पुरुष अभ्यास और गुरुलब्ध युक्तिके जरिये अगोचर पथमें गमन किया करते हैं। जन्मका निमित्त मरण है और मरणका अवलम्ब जन्म वर्णित हुआ है; अविद्वान् मनुष्य मोक्ष धर्म्ममें बद्ध होकर चक्रके समान भ्रमण किया करता है और जो लोग ज्ञान पथसे गमन करते हैं, वेही इस लोकमें सुखी होते हैं। अग्निहोत्र आदि कर्म्मके फैलाव दुःखदायक मात्र हैं। यज्ञादि कर्म्मोंसे आत्माको कुछ फल नहीं मिलता, पण्डित लोग विषयत्यागको ही आत्माका हितकर समझते हैं। जैसे मृणाल निज शरीरमें लगी हुए कीचडको शीघ्र परित्याग करता है, पुरुषका शरीर भी उस ही प्रकार मनके जरिये शीघ्र ही परित्यक्त होता है। मन आत्माको योगविषयमें उत्सुक करता है, अनन्तर वह आत्मा योगी होकर मनको परम पदमें लीन करता है। जब मन योगसिद्ध होता है, तब वह उस सर्व्व उपाधिरहित आत्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष दूसरेके निमित्त प्रवर्त्तमान होकर उसके कार्य्यको अपना कार्य्य समझकर अभिमान करता है, वह इन्द्रियविषयोंमें आसक्त मनुष्य योगरूपी स्वकार्य्यसे सब भांतिसे भ्रष्ट हुआ करता है। योगभ्रष्ट मनुष्य अधोलोकमें तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं और बुद्धिमान् तथा उनसे इतर लोगोंको आत्मा सुकृत कर्म्मोंके जरिये स्वर्गमें जाके इन्द्र-लोक लाभ किया करती हैं। जैसे पके हुए मट्टीके पात्रमें द्रव-वस्तु जल आदि नहीं गिरते, वैसे ही जिस शरीरके जरिये सदा तपस्याकी आलोचना की जाती है, वह लिङ्ग शरीर ब्रह्म-लोक पर्य्यन्त सब लोकोंमें व्याप्त हुआ करता है, किसी स्थानसे च्युत नहीं होता। जो शरीर प्रकाशको भांति सब विषयोंमें व्याप्त हुआ करता है, उससे निःसन्देह कभी विषयभोग नहीं होता; और जो शरीर भोग त्याग करता है, वह भोग करनेमें समर्थ होता है। शिश्नोदरपरायण जन्मान्ध मनुष्य जैसे अन्धकारसे परिपूरित होकर मार्ग नहीं देख सकता, वैसे ही आवृतात्मा जीव छिपे हुए निज रूपको नहीं जान सकता। जैसे वणिक् समुद्रयात्राके सहारे मूल धनके अनुसार धनलाभ करता है, वैसेही इस संसार-सागरमें कर्म्मविज्ञानके अनुसार जीवकी गति हुआ करती है। जैसे सांप वायुको ग्रास करता है वैसे ही इस दिन रात्रिमय जीवलोकमें मृत्यु जरा रूपसे तरती हुई जीवोंको ग्रास किया करती है।

जीव जन्म लेके अपने किये हुए कर्म्मोंको भोग किया करता है, जो कुछ प्रिय और अप्रिय कोई बिना कर्म्मके उन्हें नहीं पासकता। मनुष्य सोया हो, अथवा चलता हो, बैठा हो, वा विषयोंमें प्रवृत्त ही रहे, शुभाशुभ कर्म्म सदा ही उसके निकटवर्त्ती होते हैं। किसी प्रकार समुद्रके दूसरे किनारे पहुंचके फिर वहांसे लौट नहीं सकता; परन्तु उसके पक्षमें समुद्रमें विनिपात ही दुर्लभ बोध होता है। महासागरमें खेवनेवालेके अभिप्रायके अनुसार जैसे तन्तुके सहारे नौका चलती है, वैसे ही मनके भावताभिनिवेशके जरिये शरीर चालित हुआ करता है। जैसे सब ओरसे नदियें आकर समुद्रमें मिलती हैं; वैसे ही योगके सहारे मन आद्याप्रकृतिका अवलम्बन करता है। जैसे बालूके गृह जलसे नष्ट होजाते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार स्नेहपाशके जरिये अज्ञान वशसे संसक्त चित्तवाले मनुष्य विषय हुआ करते हैं। देहनिष्ट नाम और रूपको आत्म धर्म्मरूपसे

माननेवाले देहधारी यदि ज्ञानपथसे गमन करें, तो उन्हें इस लोक और परलोकमें परम सुख प्राप्त होता है। अग्निहोत्र आदि सब कर्म्म केवल क्लेश देनेवाले हैं; संक्षिप्त सन्न्यास धर्म्म ही अत्यन्त सुखदायक है; यज्ञ आदि कर्म्मोंसे आत्माका कुछ उपकार नहीं होता, इसलिये वे सब केवल परार्थ हैं; पण्डित लोग वैराग्यको ही आत्म-हितकर जानते हैं। सङ्कल्पजनित मित्रवर्ग कारणात्मक स्वजनसमूह भार्य्या, पुत्र और दास दासी सब कोई केवल निज अर्थ उपभोग करते हैं। माता वा पिता किसीका भी पारलौकिक हित नहीं कर सकते। जो मनुष्य दानकी ही स्वर्ग मार्गमें जानेकी सीढ़ी करता है, वह निज कर्म्म फलोंको भोग किया करता है। माता, पुत्र पिता, भाई, भार्य्या और मित्रलोग देहचय निनादभूत श्वास-मुद्रारेखा विशेष हैं; इससे स्वर्गकी भांति निज अदृष्ट ही अभ्युदयका हेतु है। जीव पूर्व्वजन्मकृत अपने शुभाशुभ कर्म्मोंको प्राप्त करनेपर अन्तरात्मा कर्म्मफल दान करनेके निमित्त बुद्धिको प्रेरणा करता है। जो उद्योग अवलम्बन करके सब सहाय संग्रह करते हैं, उनका कोई कार्य्य कदाचित् अवसन्न नहीं होता, जैसे किरण सूर्य्यको कभी परित्याग नहीं करती, वैसे ही एकाग्रचित्त योगयुक्त, शूर, धीर और विपश्चित पुरुषको श्री कदापि नहीं त्यागती। अनिन्द्-नीय स्वभावसे युक्त मनुष्य आस्तिक्य और व्यवसाय अथवा उपाय वा गर्व्वहीनताके कारण बुद्धिके सहारे जिस कार्य्यको आरम्भ करते हैं, वह कदापि अवसन्न नहीं होता। जीवपूर्व्वज-न्ममें यत्नपूर्व्वक जिन शुभाशुभ कर्म्मोंको करता है, जननीजठरमें प्रविष्ट होनेके समयसे ही अपने किये हुए वेही सब शुभाशुभ कर्म्म प्राप्त हुआ करते हैं, और जैसे वायु करपत्र विदारित समस्त चारुणोंको स्थानान्तरित करता है, वैसे ही अपरिहार्य्य मृत्यु भी कालक्रमसे जीवोंको विनाश मुखमें डालती है, इसलिये यदृच्छा प्राप्त अन्न आदिके जरिये जीवन धारण करते हुए सबका ही मोक्षके निमित्त यत्न करना चाहिये। मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंके जरिये पूर्व्वजन्मके कर्म्मोंसे प्राप्त हुए निज कुलके अनुसार सुन्दरताई और परिग्रह सन्तान आदि सद्दंशसभूति तथा द्रव्यसमृद्धि सञ्चय लाभ किया करता है।

भीष्म बोले, हे राजन्! पण्डित प्रवर परा-शर मुनिने धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रगण्य राजा जनकसे जब ऐसी कथा कही, तब उसे सुनके वह परम आनन्दित हुए।

२९८ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोकके बीच विद्वान् मनुष्य सत्य, दम, क्षमा और बुद्धिकी प्रशंसा किया करते हैं, इस विष-यमें आपका क्या मत है?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप हंस और साध्य लोगोंके सम्वाद-युक्त प्राचीन इतिहास कहता हूं, जन्म रहित शाश्वत प्रजापति सुवर्णमय हंस होकर तीनों लोकमें भ्रमण करने लगे, अनन्तर उन्होंने सिद्धोंके निकट गमन किया।

साध्योंने पक्षिश्रेष्ठ हंसको निकटमें आया हुआ देखके कहा, हे द्विजवर! हम लोग देवताओंके अन्तर्गत साध्यगण तुमसे प्रश्न करते हैं, तुम मोक्षवत् हो, इसलिये मोक्ष धर्म्म क्या है? उसे ही तुम हमसे कहो। हे महात्मन् पतत्रिन्! हमने सुना है, कि तुम धीरवादी पण्डित हो, तुम्हारी साधुताकी बड़ाई सर्व्वत्र सुनाई देती है; इससे तुम किसे श्रेष्ठ समझते हो और तुम्हारा मन किस विषयमें रत है। हे विह-ङ्गवर! कार्य्योंके बीच जिस किसी एक कार्य्यको तुम श्रेष्ठ जानो, वही हम लोगोंके समीप

उपदेश करो। हे विहगेन्द्र! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे सब बन्धनोंसे शीघ्रही छुटकारा होता है। हमको वही करना उचित है।

हंस बोला, हे अमृत पोनेवाले देवगण! मैंने यही सुना है, कि स्वधर्म्माचरण, वाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, यथार्थ बचन और चित्तको जीतना योग्य है; हृदयकी ग्रन्थिराग आदिको मोचन करके हर्ष और विषादको वशीभूत करना उचित है। किसीके मर्म्म छेदक वा निठुरभाषी होना उचित नहीं। नीच पुरुषोंसे शास्त्र ग्रहण करना अयोग्य है, लोकमें जिस बचनसे दूसरे लोग व्याकुल हों, उस अकल्याण कर नरकविधायक बचनको न कहना चाहिये। जो वाक्यरूपी सब बाण शरीरसे बाहर होते हैं, उससे लोग घायल होके रात दिन शोकार्त्त हुआ करते हैं; वे सब वाक्यबाण दूसरेके मर्म्म-स्थलके अतिरिक्त अन्य स्थानमें नहीं लगते; इसलिये पण्डित पुरुषोंको उचित है, कि वैसे वाक्यबाणोंको दूसरेके ऊपर प्रयोग न करें दूसरे लोग यदि उन धीर पुरुषोंको अतिवाद बाणके जरिये अत्यन्त विद्ध करें, तो उन्हें शान्ति रस अवलम्बन करना उचित है। जो लोग दूसरेसे क्रुद्ध होनेपर भी उसपर रोष प्रकाश नहीं करते, बल्कि हर्षित होते हैं, वे दूस-रोंके सुकृतको ग्रहण किया करते हैं, जो अधि-क्षेपकारी पुरुष अभिनिवेशके कारण अप्रिय प्रज्वलित क्रोधको निग्रह करते हैं, वे दुष्टता-रहित, असूयाहीन प्रसन्न चित्तवाले मनुष्य दूसरोंसे सुकृत ग्रहण किया करते हैं। कोई मेरे विषयमें आक्रोश प्रकाश करे, तो मैं कुछ भी नहीं कहता और मेरे ऊपर प्रहार करे, तो भी मैं सदा उसे क्षमा किया करता हूं; ऐसा आचरण ही श्रेष्ठ है, क्यों कि आर्य्य-लोग सत्य, सरलता, अनृशंसता और क्षमाकी प्रशंसा किया करते हैं। वेदाधिगमका फल सत्य है, सत्यका फल दम अर्थात् वाह्य इन्द्रि-योंका निग्रह है, दमका फल मोक्ष है, यह सब शास्त्रोंमें वर्णित हुआ है। जो लोग वाक्य, मन, क्रोध, विधित्सा उदर और उपस्थ इन सब इन्द्रियोंके प्रबल वेगको सहनेमें समर्थ होते हैं, मैं उन्हें ही ब्रह्मिष्ठमुनि समझता हूं। क्रोधी पुरुषोंसे बिना क्रोधवाले, क्षमाहीनोंसे क्षमावान् पुरुष, कुकर्म्मियोंसे सदाचारयुक्त मनुष्य और मूर्खोंसे ज्ञानी लोग ही प्रशंसनीय हुआ करते हैं। पुरुष यदि दूसरेसे क्रोधित होने पर भी रोष प्रकाश न करके उसे क्षमा करे, तो उस तितिक्षु पुरुषकी क्षमा आक्रोशकारी पुरुषको जला देती है और तितिक्षु पुरुष भी आक्रोश करनेवालेके सुकृतको ग्रहण करता है। यदि कोई दूसरेके जरिये अत्यन्त निन्दित होने पर भी धैर्य्य अवलम्बन करके उसके विषयमें वा अप्रिय बचन प्रयोग न करे, अथवा घायल होके भी मारनेवालेके ऊपर प्रहार न करे, और "उस मारनेवालेको पाप हो" ऐसी इच्छा भी न करे, तो वह इस लोकमें सदा देवताओंके स्पृहणीय हुआ करता है। कोई पुरुष अपने समान वा अपनेसे उत्कृष्ट वा निकृष्ट लोगोंके निकट अवमानित होनेपर उनपर क्रोध न करके क्षमा करे तो उसे सिद्धि लाभ हुआ करती है, मैं अध्ययनकी समाप्ति होने पर भी सदा आचा-र्य्यकी उपासना किया करता हूं, किसी विषयमें मेरी तृष्णा वा रोष वर्द्धित नहीं होता। मैं लिप्समान होकर अधर्म्म पथमें गमन नहीं करता और विषय वासनासे देवताओंके निकट कुछ प्रार्थना भी नहीं करता। कोई मुझे शाप दे, तो मैं उसे प्रतिशाप न देकर शान्ति अवल-म्बन किया करता हूं; क्यों कि इस लोकमें दम ही मुक्तिका द्वार है, मैंने ऐसा ही निश्चय किया है। हे साध्यगण! मैंने तुम्हारे समीप इस गुप्त विषयको वर्णन किया, अब तुम लोग विचार करके देखो, मनुष्य जन्मसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। बुद्धिमान् लोग धीरज धरके

समयकी प्रतीक्षा करते हुए पापहीन होकर बादलसे मुक्त हुए चन्द्रमाकी भांति सिद्धि लाभ करते हैं। जो सबके पूजनीय हैं, वेही ब्रह्माण्ड-मण्डपके स्तम्भ स्वरूप हुआ करते हैं और सब लोग जिससे प्रसन्न बचन कहते हैं, उस संयतात्माको देवत्व प्राप्ति होती है। स्पर्द्धावान् पुरुष जिस प्रकार मनुष्योंके दोषोंको प्रकाश करनेके अभिलाषी होते हैं, उस प्रकार उनके कल्याणकर गुणोंको प्रकाशित करनेकी अभिलाष नहीं करते। जिनका बचन, मन सब प्रकार ही असत् मार्गसे निवृत्त और सदा सावहित है, वे बेद, तपस्या और त्याग, यह सब प्राप्त करते हैं। विद्वान् पुरुष मूर्खोंसे आक्रुष्ट वा अवमानित होने पर उन्हें मूर्ख जानके उनकी निन्दा न करें, अनुरोधसे अप्रशंसित पुरुषकी प्रशंसा न करें और समान लोगोंकी हिंसा भी न करनी चाहिये। पण्डित लोग दूसरेके जरिये अपनी अवमाननासे अमृतकी भांति सन्तुष्ट होकर सुखकी नींद सोते हैं; परन्तु अवमानना करनेवाला असन्तुष्ट होकर शीघ्र विनष्ट होता है। क्रोधी पुरुष यज्ञ, दान तपस्या और होम आदि जो कुछ कर्म्म करता है, सूर्य्यपुत्र शमन उसके सब कर्म्मोंको हरण किया करता है, इससे क्रोधी लोगोंके सब परिश्रम निष्फल होजाते हैं।

हे सुरसत्तमगण! जिसके उपस्थ, उदर हाथ और वाक्य, ये चारों द्वार उत्तम रीतिसे रक्षित होते हैं, वेही धार्म्मिक हैं। जो लोग यत्न पूर्व्वक सत्य, सरलता, दम, अनृशंसता, धृति और तितिक्षा, इन सबको सेवा करते हैं, तथा जो पराये वित्तकी बासना न करके निर्ज्जनमें वेदाध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं, वेही ऊर्द्ध गति लाभ किया करते हैं। जैसे गऊका बछड़ा चारों मातृस्तनोंका अनुगामी होता है, वैसे ही मैं सत्य आदिका अनुसरण किया करता हूं; क्यों कि कहीं पर सत्यसे अत्यन्त पवित्र और कुछ भी नहीं है, यह मुझे विशेष रूपसे मालूम है। मैं सर्व्वत्र भ्रमण करके मनुष्य और देवताओंसे यही कहा करता हूं, कि समुद्रस्थ नौकाकी भांति सत्य स्वर्गका सोपान है। पुरुष जैसे लोगोंके सहवासमें रहता है, जैसे लोगोंकी उपासना करता और जैसा होनेकी अभिलाष करता है, वैसा ही हुआ करता है। जो जिस प्रकारके पुरुषकी सेवा करता है, वह उसहीके वशीभूत होता है। जैसे वस्त्र वर्णके वशमें होता है, वैसेही कोई साधु तपस्वीकी सेवा करनेसे उस तपस्वीके वशवर्त्ती होता है और असत् तस्करकी सेवा करनेसे उस तस्करके अधीन होता है। देवता लोग साधुओंके सङ्ग ही सर्व्वदा सम्भाषण किया करते हैं, मनुष्य भोगको विनाशी जानके देखनेकी भी इच्छा नहीं करते; क्यों कि चन्द्रमा वा वायुका समभाव सदा सम्भव नहीं रहता, भोगवशसे उनकी भी उपचय और अपचय हुआ करती है इसलिये जो सब विषयोंके उच्चावच मालूम करते हैं, वेही सब जान सकते हैं। अन्तर्य्यामी पुरुषके राग द्वेषसे रहित होकर निवास करने पर सन्मार्गमें स्थित उस अन्तर्य्यामी पुरुषके जरिये ही देवता लोग तृप्त होते हैं। जो लोग सदा शिश्न और उदरके कार्य्यमें रत रहते हैं, जो सदा चोरीवृत्ति करते हैं, तथा जो सर्व्वदा कठोर बचन कहते हैं, उनके प्रायश्चित्त आदिसे निष्पाप होने पर देवता लोग उन्हें पापरहित समझके भी दूरसे ही परित्याग करते हैं। नीचबुद्धि, सर्व्वभक्षी और पाप कर्म्म करनेवाले नरकगामीसे देवता लोग कदापि परितुष्ट नहीं होते। परन्तु जो लोग सत्यव्रती कृतज्ञ और धार्म्मिक हैं, देवता लोग उनके सहित समभावसे सुखसेवन किया करते हैं। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मिथ्या न कहके चुप रहना ही कल्याणकारी है यह प्रथम कल्प है, द्वितीय कल्प यदि कहना पड़े, तो सत्य ही कहे। तीसरे कल्पमें धर्म्मवाक्य

कहना उचित है। चौथे कल्पमें प्रिय वचन कहना सर्व्वांशमें कल्याणकारी है।

साध्य लोग बोले, यह लोक किसके जरिये आवृत हुआ करता है, किस कारण प्रकाश प्राप्त नहीं होता। किस निमित्त मित्रता छूटती है और स्वर्ग किस लिये नहीं मिलता?

हंस बोला, यह लोक अज्ञानसे परिपूरित होरहा है, मत्सरतासे प्रकाश प्राप्त नहीं होता, लोभसे मित्रता छूटती है, संसर्ग निबन्धनसे लोग स्वर्गमें गमन नहीं करते।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंके बीच अकेला रहके भी कौन पुरुष रमण करता है; कौन पुरुष अकेला होके भी बहुतोंके सङ्ग आनन्द अनुभव किया करता है। इन लोगोंके बीच कौन पुरुष निर्ब्बल होके भी बलवान और कौन पुरुष कलहानभिज्ञ है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वह अकेले ही रमण किया करते हैं बुद्धिमान पुरुष अकेला ही अनेक लोगोंके सङ्ग आनन्द अनुभव करता है। इन लोगोंके बीच जो बुद्धिमान हैं, वे दुर्बल होनेपर भी बलवान तथा जो प्राज्ञ हैं, वेही कलहानभिज्ञ हैं।

साध्य लोग बोले, ब्राह्मणोंमें देवतापन क्या है; साधुता किसे कहते हैं। इनमें असाधुता और मनुष्यता किस प्रकार कही गई है।

हंस बोला, ब्राह्मणोंमें स्वाध्याय ही देवतापन है, व्रतको साधुता कहते हैं, इसके परिवादको असाधुता और मरना मनुष्यत्व कहता है।

भीष्म बोले, साध्योंका यह सम्वाद श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे शुभाशुभ कर्म्मोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और सत्तामात्रको सत्य कहते हैं।

२९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आप धर्म्मज्ञ हैं, सब विषय ही आपको विदित है। हे कुरुसत्तम! सांख्य और योगमें क्या विशेषता है, आपको मेरे समीप उसे वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रुकर्षण सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्य शास्त्रकी प्रशंसा किया करते हैं, योगशास्त्रावलम्बी द्विजाति मनीषि लोग योगशास्त्रकी प्रशंसा करके निज पक्षको उद्भावन करते हुए योगशास्त्रको मुख्य कहा करते हैं और अनीश्वरवादी लोग "किस प्रकारसे मुक्ति होगी" इस विषयमें महती युक्ति पूर्ण रीतिसे वर्णन करते हैं। सांख्य मतवाले द्विजाति भी ऐसा कारण दिखाते हैं, कि जो लोग इस लोकमें सब गति जानके विषयभोगसे विरत होते हैं, वे निज शरीर त्यागनेके अनन्तर निश्चय ही स्पष्ट रूपसे मुक्ति लाभ किया करते हैं। इस ही निमित्त महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पण्डित लोग सांख्यको मोक्ष दर्शन कहते हैं। हे युधिष्ठिर! दोनों पथमें बलवान युक्ति विद्यमान रहनेपर भी जो पक्ष अपनेको सम्मत हो, उस विषयकी ही युक्ति ग्राह्य होती है और अपने अपने पक्षमें निज निज मतके अनुयाई वचन हितकर होता है; क्यों कि अपने अपने सम्प्रदायके शिष्टोंके मत तुम्हारे समान लोग ग्रहण किया करते हैं। हे तात! योग मतके अनुयायी पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाणको कारण कहते हैं और सांख्य मतवाले शास्त्रसिद्ध अर्थात् श्रुति प्रमाणको कारण कहते हैं, ये दोनों ही मत मेरी सम्मतिमें यथार्थ हैं। हे राजन्! साधुसम्मत ये दोनों मतोंके शास्त्ररीतिसे अनुष्ठित होनेपर परम गति प्राप्त होती है। हे पापरहित! पवित्र आचार, सब प्राणियोंके विषयमें दया और अहिंसा आदि व्रतोंके अनुष्ठान, इन सबमें दोनों मतोंकी ऐक्यता है; परन्तु दोनोंके दर्शन समान नहीं हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! व्रत पवित्रता दया और इन सबके फल यदि दोनों मतमें ही समान हैं, तब दोनोंके दर्शन किस निमित्त

पृथक् हुए। उसे मेरे समीप विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, मनुष्य योगबलसे राग, मोह, स्नेह, काम, क्रोध आदि इन पांचो दोषोंको छेदन करके मुक्ति लाभ करता है। जैसे बड़ी मछली जालको छेदन करके फिर जलमें चली जाती है, वैसे ही योगी लोग योगबलसे पापरहित होके ब्रह्मपद लाभ किया करते हैं, जैसे बलवान मृग बागुरा छेदन करके निज स्थानपर चले जाते हैं, वैसे ही योगी लोग सब बन्धनोंसे छूटकर विमलपद पाते हैं। हे राजन्! बलवान योगी पुरुष ही लोभज बन्धनोंको काटके मङ्गलमय पवित्र मार्गमें गमन करते हैं। हे कुन्तीपुत्र राजेन्द्र! जैसे निर्व्वल हरिन जालमें बन्धकर विनष्ट होता है और बलहीन मछलियें जालवश होकर मृत्यु मुखमें पड़ती हैं, वैसे ही अत्यन्त निर्व्वल योगी पुरुष भी बिना योगबलके काम आदिके वशमें होकर विनष्ट हुआ करते हैं। हे शत्रुनाशन! जैसे निर्व्वल पच्छियें सूक्ष्म जालमें फंसके विपदग्रस्त होती हैं, परन्तु बलवान पच्छियोंको छुटकारा मिलता है, वैसेही निर्व्वल योगी कर्म्मज बन्धनोंसे बद्ध होकर विनष्ट होते हैं और बलवान योगी लोग सहजमें ही उससे मुक्ति लाभ किया करते हैं। हे राजन्! जैसे अत्यन्त निबल थोड़ी अग्नि स्थूल काष्ठोंसे दबके बुझ जाती है, वैसे ही निर्व्वल योगी भारी योगसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ करते हैं। और जब वह थोड़ीसी निबल अग्नि वायुके संयोगसे फिर बलिष्ठ होती है; तब वही अग्नि सारी पृथ्वीको भस्म करती है। इस ही भांति अभ्याससे उत्पन्न हुए बलके सहारे तेजस्वी योगी भी प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति सब जगत्‌को सुखा सकते हैं। हे राजन्! जैसे बलहीन पुरुष स्रोतके जरिये बह जाता है, वैसेही निर्व्वल योगी भी अवश होकर विषयोंके जरिये हृत हुआ करते हैं और जैसे बलवान हाथी महास्रोतको भी तुच्छ समझकर अनायास ही रुद्ध करनेमें समर्थ होता है, वैसेही योगी भी योगबल लाभ करके प्रबल विषयोंको सामान्य समझा करते हैं। हे पार्थ! योगबलशाली योगी लोग योगसे स्वतन्त्रता लाभ करके प्रजापति, ऋषि, देवता और महाभूतोंमें प्रवेश करनेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! यम, अन्तक और भयङ्कर पराक्रमी मृत्यु ये सब क्रुद्ध होकर भी तेजस्वी योगीके निकट प्रभु नहीं हो सकते; योगी पुरुष योगबल लाभकर अपने शरीरको कई हजार विभागमें विभक्त करके उसके सहित पृथ्वीपर पर्य्यटन किया करते हैं, उनमेंसे कोई योगी विषयभोगमें लिप्त होकर निज तेज संक्षेपकारी सूर्य्यकी भांति शरीर संक्षेप करते हुए पुनर्व्वार उग्र तपस्याचरणमें प्रवृत्त होते हैं। हे राजन्! बन्धनको काटनेमें समर्थ बलवान योगी पुरुष अपनी मुक्तिके विषयमें आप ही प्रभु हुआ करते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे भारत! मैंने तुम्हारे निकट योगसे प्राप्त हुए ये सब बल कहे, प्रमाणाके निमित्त फिर सूक्ष्म रूपसे उन सबका वर्णन करूंगा। हे विभु! आत्माकी समाधि और धारणाके विषयमें मैं सूक्ष्म दृष्टान्त कहता हूं, तुम सुनो। जैसे अप्रमत्त सावधान धनुषधारी लक्ष्यको वेधता है, वैसे ही युक्त योगी अर्थात योगयुक्त पुरुष निश्चय ही सब प्रकारसे मुक्ति लाभ करते हैं। जैसे प्रशान्त चित्तवाले कर्म्ममें आसक्त पुरुष सिरपर स्थित जल भरे पात्रमें मन लगाकर सीढ़ीपर चढ़ते हैं, वैसे ही पहले कहे हुए युक्त योगी आत्माको निश्चल वा सूर्य्यकी भांति निर्म्मल किया करते हैं। हे कुन्तीपुत्र! जैसे मल्लाह सावधान होकर समुद्रमें गई हुई नौकाको शीघ्र ही निज बन्दरपर लौटा लाता है, वैसे ही तत्ववित् पुरुष योगयुक्त होकर आत्म समाधान करते हुए इस शरीरको छोड़कर दुर्गम स्थान पाते हैं। जैसे सारथी अत्यन्त

सावधान होकर उत्तम घोड़ोंके जरिये धनुर्धारी पुरुषको शीघ्र ही अभिलषित स्थानमें पहुंचाता है, और जैसे बाण धनुषसे छूटकर शीघ्र ही निशानेपर लगता है वैसे ही योगी पुरुष धारणा विषयमें अत्यन्त सावधान होकर शीघ्र ही परम पद पाते हैं। जो योगी जीवात्माको परमात्मामें प्रवृष्ट करके अचलभावसे निवास करता है, वह सब पापोंका नाश करके पुण्यवान् पुरुषोंके अजर पदको पाता है। हे मनुजेन्द्र! अत्यन्त पराक्रमसे युक्त जो योगी पुरुष महाव्रतमें स्थित होके नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षस्थल, कोख, नेत्र और कान आदि इन सब स्थानोंमें बुद्धिके सहारे जीवात्माका दृढ़ संयोग कर सकते हैं, वे अविनाशी रूपसे भासमान शुभाशुभ कर्म्मोंको शीघ्र ही जलाकर उत्तम योग अवलम्बन करते हुए इच्छानुसार मुक्त होते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! योगी किस प्रकारके अहार और कौन कौनसे विषयोंको जय करके ऐसा बल प्राप्त करते हैं आपको उसे ही मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे अरिदमन! जो योगी स्नेह वस्तुको त्यागके तिलकल्ककी कणा वा रूखा यावक भक्षण करते हुए बहुत समयतक एकही आहारसे स्थिति करते हैं वे शुद्धचित्तवाले योगीवर बल लाभ करते हैं। और जो दिन, पक्ष, महीना, ऋतु वा सम्वत भर दूध मिले हुए जलको पीके रहते हैं, वे बल लाभ करते हैं। हे मनुजेश्वर! योगी लोग नित्य अखण्ड मांस भी परित्याग करनेसे सब प्रकारसे शुद्धचित्त होकर बललाभ किया करते हैं। हे नृपसत्तम! स्पृहाहीन ज्ञानवान महात्मा योगी लोग काम, क्रोध, सर्दी, गर्म्मी, वर्षा, भय, शोक, श्वास, पौरुष, विषय, दुर्ज्जय, अरति, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा और दुर्ज्जय तन्द्रा परित्याग करके ध्यान अर्थात् धेयाकार प्रत्यय प्रवाह तथा अध्ययन अर्थात् प्रणव जपरूपी सम्पत्तिसे युक्त होकर ज्ञानके सहारे जीवात्माको प्रकाशित करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! विपश्चित ब्राह्मणोंका यह महान् पथ अत्यन्त दुर्गम है। जैसे सांप वा सरिसृप समूहसे परिपूरित, जल रहित बिल सम, अनेक कांटोंसे युक्त भक्ष्यवस्तुओंसे रहित दावाग्निसे जले हुए वृक्षों और तस्करोंसे पूरित, भयङ्कर बनके बीच कोई युवा पुरुष कुशलसे रहके विचरनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही विद्वान ब्राह्मणोंके महापथमें कोई भी गमन नहीं कर सकता। यदि कोई द्विज योगमार्ग अवलम्बन करके गमन करते हुए उससे उपरत हो, तो वह पुरुष अत्यन्त दोषभागी हुआ करता है। हे राजन्! कृतात्मा पुरुष ही चोखे चूरधारको भांति योगधारणामें सुखसे निवास करनेमें समर्थ होते हैं; परन्तु अकृतात्मा पुरुष कभी उसमें वैसे सुखसे निवास नहीं कर सकता। हे राजन्! जैसे समुद्रमें स्थित पुरुष मल्लाहसे रहित नौकाके जरिये पार नहीं होसकता, वैसे ही धारणा नष्ट होनेसे उसके जरिये पुरुषको कभी शुभ गति नहीं होती। हे कुन्तीनन्दन! जो लोग धारणामें पूर्ण रीतिसे निवास कर सकते हैं, वेही जन्म, मरण, सुख और दुःख त्यागनेमें समर्थ होते हैं, यह योगशास्त्रमें अनेक भांतिसे निर्णयके सहित कहा गया है। परन्तु जो योगका फल है, वह द्विजातियोंमें निश्चित रूपसे विद्यमान है।

हे महात्मन्! वह योगका फल परब्रह्मस्वरूप है। महात्मा योगी लोग उस ही योगबलसे लोकेश ब्रह्मा, बरदाता विष्णु, महेश्वर, धर्म्म, कार्त्तिकेय, महानुभाव कपिल आदि ब्रह्मपुत्रगण, योगमें विघ्न करनेवाले तम, रज और आत्मतत्वको प्रकाशक शुद्ध सतोगुण, परम प्रकृति, वरुण पत्नी सिद्धदेवी, तेज और धीरज, इन सबमें इच्छानुसार प्रवेश कर सकते हैं।

अर्थात् इन्हें जय करनेमें समर्थ होते हैं, और तारोंसे घिरे हुए ताराधिप चन्द्रमा, विश्वदेव, सर्प, पितर, वनके सहित समुद्र, नदी, बादल, नाग, पर्व्वत, यक्ष, गन्धर्व्व, स्त्री, पुरुष और दिश, इन सबमेंसे जब जिसके रूपको धारण करनेकी इच्छा हो, उस समय उस ही रूपको धारण कर सकते हैं और शीघ्र ही मुक्त होते हैं। हे राजन्! महावीर्य्यसम्पन्न परमात्माकी जगत् कर्तृत्वादि निरूपण रूपी जिन सब कथाओंका प्रसङ्ग होता है, उसे ही मैं शुभ समझा करता हूं, क्यों कि ईश्वरपरायण योगी लोग परमात्म विषयक प्रसङ्ग करते हुए सर्व्वाधिक होकर सङ्कल्पमात्र समस्त मर्त्य लोककी सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं।

योग विधानमें ३०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरपाल! आपने शिष्यके पूछनेपर शिष्यहितैषी होकर शिष्य सम्मत इस योग मार्गका शिष्यके समीप पूर्णरीतिसे न्याय पूर्व्वक वर्णन किया; परन्तु अब मैं सांख्य शास्त्रकी विधि पूछता हूं उसे मेरे समीप विस्तार पूर्व्वक कहिये। तीनों लोकोंके बीच जो ज्ञान निर्दिष्ट हैं, उन सबको आप जानते हैं।

भीष्म बोले, हे मनुजेन्द्र! कपिल आदि यतीन्द्रोंने जो प्रकाश किया है, उसमें किसी भांतिका भ्रम नहीं दीखता, जिसमें अनेक प्रकारके गुण विद्यमान हैं, और जिससे सब दोष नष्ट होते हैं, आत्मवित् सांख्यमतवाले मनुष्योंका वह सूक्ष्म तत्व तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम सुनो। हे राजन्! मोक्षके उपयोगी सात्विक भावसे चित्तको वशमें करनेवाले, ज्ञान और विज्ञानयुक्त सांख्यमतवाले मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व्व और तिर्य्यग्गामी पितर, नाग, पक्षी, मारुत, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, असुर, विश्वदेव, योगी प्रजापति और ब्रह्मा, इन लोगोंके सदोष अर्थात् मिथ्यात्व दोषयुक्त सब दुर्ज्जय विषय, इस लोकमें आयुका समय, सुखका परमतत्व, सदा विषयकी इच्छा करनेवाले पुरुषके प्राप्तकालमें उत्पन्न हुए दुःख, तिर्य्यग्गामी और नरकगामी लोगोंके क्लेश, स्वर्गके दोष तथा गुण, वैदिक, वेदवाद, ज्ञान-योग और सांख्य ज्ञान, इन सबके दोष गुणोंका ज्ञानके सहारे जानके और आनन्द प्रीति, उद्वेग, प्रकाश्य, पथ्यशीलता, सन्तोष, श्रद्धानत्व, आर्ज्जव, दानशीलता तथा ऐश्वर्य्य आदि दश गुणोंसे युक्त सत्व, अनशन, कृपणता हीनता, सुख, दुःख सेवा, भेद, पौरुष, काम, क्रोध, मद और मत्सरता, इन नव गुणोंसे युक्त रज, तम, मोह, महामोह, तामिस्र अन्धतामिस्र, निद्रा, प्रमाद और आलस्य, इन आठों गुणोंसे युक्त तम, महत्, अहंकार शब्द तन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र, इन सातों गुणोंसे युक्त बुद्धि, कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, इन पांचों इन्द्रियोंके सहित षष्टमरूप मन, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चगुणोंसे युक्त आकाश, संशय निश्चय, गन्धर्व्व, स्मरण, इन चारों गुणोंसे युक्त बुद्धि, अप्रतिपत्ति विप्रतिपत्ति और विपरीत प्रतिपत्ति ये त्रिगुणात्मक तम आदि तथा दुःखरूपी द्विगुण रज, प्रकाशात्मक एक गुणसत्व, ये सब और प्रलय अर्थात् प्राकृत लय तथा प्रेक्षण अर्थात् आत्मतत्त्व समालोचनके समयमें मोक्ष मार्ग यथार्थ रीतिसे जानके आकाशगामी सूर्य्य किरणकी भांति मङ्गलकारी परम मोक्षलाभ किया करते हैं। और रूप-गुणसे युक्त श्रवणेन्द्रिय, रस गुणसे युक्त रसनेन्द्रिय, स्पर्शगुण युक्त त्वगेन्द्रिय, आकाशाश्रित वायु, तमोगुणयुक्त मोह अर्थाश्रित लोभ, विक्रम अर्थात् पादविक्षेपमें आसक्त विष्णुबल अर्थात् हस्तेन्द्रियासक्त इन्द्र, कोष्ठासक्त अग्नि, जलमें आसक्त सिद्ध देवी, तेजसामाश्रित जल, वायुवाश्रित तेज, प्रकाशाश्रित वायु महत्तत्वसे

संयुक्त आकाश, बुद्धि समान्वित महत् तम संयुक्त बुद्धि रजके आश्रित तम, सत्वाश्रित रज, आत्मा अर्थात् जीविताश्रित सत्त्व, ईश्वर नारायण देवमें आसक्त आत्मा, मोक्षमें समासक्त नारायण देव, शिवमहिमामें प्रतिष्ठित मोक्ष, सोलह गुणोंसे युक्त लिङ्ग शरीर, लिङ्ग देहके आश्रित स्वभाव अर्थात् पूर्व्वकर्म्म वा चेतना अर्थात् बुद्धिवृत्ति, निष्पाप उदासीन अद्वितीय आत्मा, विषय वासनावान पुरुषोंके द्वितीय कर्म्म आत्माश्रित इन्द्रिय और इन्द्रियार्थ वेदके अनुसार मोक्षके दुर्ल्लभत्व प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान आदि पञ्चप्राण तथा अधः और प्रवाह इस ही प्रकारसे सप्तधा विहित सातों वायु प्रजापति, ऋषि अनेक भांतिके उत्कृष्ट धर्म्म मार्ग, सप्तर्षि, देवर्षि, सूर्य्यके समान दूसरे दूसरे महान् ब्रह्मर्षि, उक्त ऋषियोंकी कालवशसे ऐश्वर्य्यच्युति, महाभूतोंका नाश, पापाचारियोंकी अशुभ गति, यमलोकगामी लोगोंके वैतरनी पार होनेका दुःख जीवोंका विचित्र योनियोंमें भ्रमण और रुधिर जलके पात्र अशुभकर जठरके बीच वास, जीवके कफ, मूत्र, पुरीषसे परिपूरित तीव्र गन्धसे युक्त, वहुतसे शुक्रशोणित संयुक्त मज्जा और स्नायुसे परिवृत सेकड़ों नाड़ियोंसे परिपूरित अपवित्र नवद्वार युक्त पुरीके बीच निवास और उसमें विविध सम्बन्ध, रमणीय वस्तुमें आसक्तचित्त तामस और सात्विक जन्तुओंके कुत्सित कर्म्म हैं, आत्मतत्ववित् सांख्यवादियोंके गर्हित आचरण चन्द्रमा और सूर्य्यका घोर उपराग, तारोंका गिरना, नक्षत्रोंका विपर्य्यय, दम्पतियोंका विरह और दीनता, प्राणियोंके परस्पर अशुभ भक्षण, बाल्यकालमें मोह और देहका पतन, राग और मोह उपस्थित होनेपर किसी पुरुषमें सतोगुण आश्रित होता है, सहस्र लोगोंके बीच कोई पुरुष मोक्षबुद्धि अवलम्बन करता है, श्रुतिके अनुसार मोक्षका दुर्ल्लभत्व, अप्राप्त वस्तुमें बहुमान, प्राप्तवस्तुमें उदासीनता विषयोंमें दौरात्म्य अर्थात् बन्धनकारित्व दोष मृतकोंके सुन्दर शरीर, जन्तुओंको गृहवासरूपी दुःख, ब्रह्मघ्न पतित पुरुषोंकी दारुण गति, मद्य पीनेमें आसक्त और गुरुस्त्रीमें रत, दुरात्मा ब्राह्मणोंकी अशुभ गति, जो मनुष्य माताके अनुवर्त्ती नहीं होते और जो देवस्थानमें वास नहीं करते, उन अशुभ कर्म्म करनेवाले मनुष्योंकी गति, तिर्य्यग् योनिगत सब प्राणियोंकी पृथक् पृथक् गति, विचित्र वेदवाद ऋतुका बदलना, सम्वत्सर, महीना, पक्ष और दिवसका क्षय, चन्द्रमा, समुद्र; धन, इनकी घटती बढ़ती, सम्बन्ध, युग, पहाड़, नदी वर्षा इन सबका बार बार नष्ट होना, जन्म, जरा, मृत्यु देह दोष, देहके दुःख, देह नष्ट करनेवालोंके दुःख, सर्व्व जीवस्थित आत्मदोष, निज शरीरसे उत्पन्न अशुभ गन्ध,—इन सबको यथार्थ रीतिसे जानकर मुक्ति लाभ किया करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, हे अमित विक्रम! निज शरीरसे उत्पन्न कौन कौनसे दोष अशुभरूपसे दीखते हैं, मेरे इस सन्देहके विषयको यथावत् वर्णन करना आपको उचित है।

भीष्म बोले, हे शत्रुनाशन! मोक्ष मार्गवित् कपिल प्रणीत सांख्य मतावलम्बी मनीषि लोग देहके बीच स्थित जिन सब दोषोंको कहा करते हैं, उन्हें मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। पण्डित लोग काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास, इन पांचोंको दोष कहा करते हैं, वे सब दोष शरीरमें ही दीख पड़ते हैं, हे राजन्! मनीषि लोग क्षमासे दोष, संकल्प त्यागसे काम, तत्वसेवाके जरिये निद्रा, अप्रमादसे भय और अल्प आहारसे श्वासको छेदन किया करते हैं।

हे नरपाल! महाप्राज्ञ सांख्य मतवाले पुरुष सांख्यसम्मत महान् व्यापक ज्ञान-योगसे सेकड़ों गुणोंके जरिये सब गुणों, सेकड़ों

दोषोंके सहारे सब दोषों और बिबिध हेतुगतके जरिये अनेक प्रकारके हेतुओंको यथार्थ रूपसे जानकर जलके फेन समान विष्णुकी मायासे आवृत्त विचित्र भित्तिसदृश नलतृणकी भांति अन्तःसार रहित अन्धकारसे परिपूरित बिल-सदृश, बर्षाके बुलबुलेके समान, सुखहीन, नष्टप्राय बिनाशान्तर अवश, इन सब लोकोंको देखते हुए कीचड़में फंसे अवश हाथीकी भांति अन्धकारमें निमग्न रज और प्रजाकृत स्नेहको त्यागके देहस्थित रज तथा तमोगुणसे उत्पन्न वैसे अशुभ गन्ध और सतोगुणसे उत्पन्न सब स्पर्शन पुण्यगन्धोंको ज्ञानरूपी शास्त्रसे शीघ्र ही काटके जिसका दुःखरूप जल, चिन्ता वा शोकरूपी भयङ्कर तालाब, व्याधि और मृत्यु-रूपी महाग्राह, भयरूपी महासर्प, तमरूपी कूर्म्म, रजोगुणरूपी मीन, बुद्धिरूपी नौका, स्नेहरूपी कीचड़, ज्ञानरूपी दीपक, कर्म्मरूपी अगाध, सत्यरूपी तीर, हिंसारूपी प्रबलवेग, अनेक रस सदृश आकर, नाना प्रीतिरूपी महा-रत्न, दुःख और ज्वररूपी वायु, शोक और तृष्णा-रूपी महाआवर्त्त, तीक्ष्ण व्याधिरूपी महाहस्ती, हड्डोरूपी सघट, कफ रूपी फेन, दानरूप मुक्ताकी खान सीप, रुधिर ह्रदरूपी विद्रुम, हंसी और रोदनरूपी निर्घोष और जो जराके जरिये दुर्गम अनेक भांतिके ज्ञानके सहारे दुस्तर, रोदनके आंसू और मलरूप जिसका चार तथा सङ्गत्यागरूप जिसका परम आश्रय है, लोककी उत्पत्तिरूपी वेग, वान्धव और पुत्र रूपी पत्तन, अहिंसा और सत्यरूपी सीमा प्राण-त्यागरूपी महान् तरङ्ग वेदान्त गमनरूपी दीप और जिसमें मोक्ष विषय अत्यन्त दुर्लभ है, वैसे बाड़वानलसे युक्त सब भूतोंके दयारूप समुद्रको ज्ञानयोगके जरिये पार हुआ करते हैं। हे कुन्तीनन्दन! सांख्य मतवाले इस ही भांति आलोचनासे दुस्तर जन्मयुक्त स्थूल शरीरको भूल कर हृदयरूपी निर्म्मल आकाशमें प्रविष्ट होने पर वहां जिस भांति सुख, संयोगसे अन्तःछिद्र मृणाल दण्डके जरिये आकर्षित जल भीतरमें प्रवेश करता है, वैसे ही चौदह भुवन बिहारी सूर्य्य आत्मामें प्रणिहित मनके जरिये उन मुक्तमान सांख्यमतवालोंके अन्तरमें प्रविष्ट होकर उन लोगोंको चतुर्द्दश भुवनोंके विषयोंको मालूम करानेसे वे उन्हीं सब विषयोंको प्राप्त करते हैं। हे भारत! वहां प्रवह-वायु उन रागरहित बीर्य्यवान तपोधन यतिसिद्ध सांख्य लोगोंको ग्रहण करता है। अनन्तर शुभलोक-गामी, सूक्ष्म, सुन्दर शीतलता सुगन्धि सुख-स्पर्श मरुत श्रेष्ठ वह प्रवहमान वायु उन्हें आकाशकी चरम गति अर्थात् हृदयरूपी आका-शमें लेजाता है। हे लोकेश! इस ही प्रकार धीरे धीरे आकाशसे रजोगुणमें रजोगुणसे सत्वको परमगति और सत्वसे परमात्मा प्रभु नाराय-णको पाता है। फिर सब भूतोंके निवास स्थान वे सांख्य लोग पवित्र परमात्माको पाके अमृत-कल्प होते हैं, इसलिये उन लोगोंको फिर पुन-रावृत्ति नहीं होती। हे पार्थ! सत्य और सर-लतायुक्त सब भूतोंमें दयावान् भेद ज्ञानसे रहित महात्माओंको वही परमगति है।

युधिष्ठिर बोले, हे पाप रहित! स्थिरव्रत-वाले सांख्योंके षड़गुण ऐश्वर्य्ययुक्त परमात्म स्वरूप मोक्षधाम मिलने पर उन्हें जन्म मरण आदिका स्मरण और मोक्ष बिषयका विशेष ज्ञान रहता है, वा नहीं। तथा मोक्ष प्रतिपादक श्रुतिमें मोक्ष बिषयक ये दो प्रकारके महान् दोष दीख पड़ते हैं, कि कोई कोई यति मोक्ष धर्म्मको प्रशंसा करते हुए मोक्ष मार्गमें प्रवृत्त होते हैं, कोई कर्म्मकाण्डको प्रशंसा करते हुए प्रवृत्ति मार्गमें प्रवृत्त होते हैं; मुझे भी वही प्रवृत्ति धर्म्म प्रधान जंचता है, परन्तु यह भी युक्ति सङ्गत है, कि मोक्षमार्गमें प्रविष्ट पुरुषोंका ज्ञान श्रेष्ठ है। हे कौरवेन्द्र! इसलिये इस विषयमें जो यथार्थ है, उसे यथावत वर्णन

करनेमें आप ही उपयुक्त हैं, आपके समान पुरुषके अतिरिक्त मैं और किसीसे पूछनेमें समर्थ नहीं होता हूं।

भीष्म बोले, हे तात भरत श्रेष्ठ! तुमने जो युक्ति सङ्गत प्रश्न किया, वह अत्यन्त कठिन है, यद्यपि इस प्रश्नमें पण्डितोंको भी मोह उपस्थित होता है, तोभी कपिलोक्त सांख्य मतावलम्बी महात्मा लोग जिस परम तत्वको जानते हैं, उसे ही तुम्हारे समीप विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। हे राजन्! प्राणियोंको निज देहमें स्थित इन्द्रियोंके जरिये ही आत्माको जाना जा सकता है, इसलिये वे इन्द्रियें आत्म ज्ञानकी हेतुभूत बोध होती हैं, क्यों कि सूक्ष्म चिदात्मा उन इन्द्रियोंके सहित ही अन्तर-बाह्य सब विषयोंको प्रकाश किया करतो है। परन्तु इन्द्रियें आत्मासे रहित होने पर काठ और कुड्यप्राय होकर महार्णवमें स्थित जल रहित फेनकी भांति विनष्ट होती हैं। हे प्रवुतापन! देहाभिमानी जोव इन्द्रियोंके सहित शयन करनेपर स्वप्नावस्थामें सूक्ष्म अन्तरात्मा आकाश मण्डलवर्त्ती वायुकी भांति सर्व्वत्र विचरण किया करतो है। हे भारत! जाग्रत अवस्थाकी भांति स्वप्नमें भी वह सूक्ष्म अन्तरात्मा यथाक्रमसे रूप और स्पर्शविषयोंको दर्शन और स्पर्शन किया करती है। इस स्वप्नावस्थामें निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियें अपने अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर विषरहित सर्पकी भांति आत्मामें लीन होती हैं। हे पार्थ! उक्त अवस्थामें अन्तरात्मा निज निज स्थानमें स्थित इन्द्रियोंको सब वृत्ति और धर्म्म आदि सतोगुण, प्रवृत्ति आदि रजोगुण, अप्रवृत्ति आदि तमोगुण, अध्यवसाय आदि बुद्धिके गुण और संकल्प आदि मनके गुण, श्रोत्र आदि आकाशके गुण, स्पर्श आदि वायुके गुण, स्नेहन आदि अग्निके गुण, रस आदि जलके गुण और गन्ध आदि पृथ्वीके गुणोंको आक्रमण करके सर्व्वत्र विचरण करता है। हे युधिष्ठिर! अन्तरात्मा क्षेत्रज्ञ जीवस्थित उक्तानुक्त सत्वादि गुणसान्त और अमित माया गुणके जरिये आच्छादित करके जीवको आक्रमण करती है, उसहीके अनुसार शुभाशुभ कर्म्म भी जीवको आच्छन्न किया करते हैं। अनन्तर क्षेत्रज्ञ जीवकार्थ्य उपाधि इन्द्रिय और कारणोपाधि प्रकृतिको अतिक्रम करके अव्यय परमात्माको पाता है। हे भारत! क्षेत्रज्ञ जीव मायातीत अनामय एकमात्र निर्गुण परमात्मा नारायणमें प्रविष्ट होनेपर पुण्य-पापसे मुक्त होती है, इससे उसको फिर पुनरावृत्ति नहीं होती। हे तात! समाधि भङ्ग होनेपर आत्मामें लीन हुए अन्तःकरण और इन्द्रियें प्रारब्ध कर्म्मोके अनुसार ईश्वरकी आज्ञा पालन करनेके निमित्त फिर देह धारण किया करती है। अनन्तर थोड़े समयमें ही वर्त्तमान देहका पतन होनेपर मुक्तार्थी, मोक्षकी इच्छावाले ज्ञानयुक्त योगी लोग विदेह मुक्ति लाभ करते हैं।

हे राजन्! महाप्राज्ञ सांख्य लोग इस ही ज्ञानके सहारे परम गति पाते हैं, इसलिये कोई ज्ञान भी इसके समान नहीं है। हे कुन्तीनन्दन! मेरी समझमें यह सांख्य ज्ञान जो अत्यन्त उत्कृष्ट और अचर अवज्ञ्न सनातन पूर्णब्रह्म स्वरूप है; इसलिये इसमें तुम्हें और सन्देह न करना चाहिये। मनीषि लोग जिसे अद्वैत उत्पत्ति, स्थिति और नाशरहित, नित्य अखण्ड, जगत्कर्त्ता कूटस्थ ब्रह्म कहा करते हैं, जिससे सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूपी सब क्रिया उत्पन्न होती हैं, ऋषि लोग सब शास्त्रोंमें जिसकी प्रशंसा किया करते हैं; सब भूतोंमें समज्ञान करनेवाले साधु, ब्राह्मण और देवता लोग ब्राह्मणोंके परम हितकारी उस अच्युत अनन्त देवकी प्रार्थना किया करते हैं। विषयज्ञानसे युक्त ब्राह्मण लोग मायिक गुणोंके सहारे जिसकी स्तुति करते हैं; अमित दर्शन सांख्य और योगसिद्ध योगी लोग उसे जगत्का

कारण कहके अनेक प्रकारसे स्तुति करते हैं; और यह वेदमें प्रसिद्ध है, कि सांख्य उस अमूर्त्त शुद्ध चिन्मात्र परब्रह्मकी मूर्त्ति है तथा घटादि विषयक सब विषयोंका ज्ञान ही उसका महाज्ञान स्वरूप है।

हे राजन्! इस पृथ्वीपर जो स्थावर और जङ्गमात्मक दो प्रकारके प्राणी हैं, उनमें जङ्गम ही श्रेष्ठ हैं। हे महात्मन्! अत्यन्त विस्तृत वेद, सांख्य, योग, पुराण, इतिहास, शिष्टजन सेवित अर्थशास्त्र और इस लोकमें जो सब विविध भांतिके ज्ञान दीख पड़ते हैं, वे सब इसी सांख्यज्ञानके अन्तर्गत हैं, हे राजन्! शम, बल, सूक्ष्म ज्ञान, तपस्या और सुख, ये सब सांख्यज्ञानके बीच यथावत विहित हुए हैं। हे पार्थ! किञ्चित विकलता वशसे उस सांख्य ज्ञानका उदय न होनेसे सांख्य लोग देवलोकमें जाके वहां सदा सुखसे बास करके देवताओंके ऊपर आधिपत्य करते हुए कृतार्थ होकर भोगको समाप्ति होनेपर यत्नशील विप्रकुलमें फिर पतित होते हैं। सांख्य लोग देह छोड़के देव लोकवासी देवताओंकी भांति देवलोकमें प्रवेश करके क्रमसे महापूज्य शिष्टोंसे सेवित सांख्य ज्ञानमें अधिक अनुरक्त हुआ करते हैं। हे राजन्! कभी वे तिर्य्यग्गति, अधोगति वा पापात्माओंके अधिवासको प्राप्त नहीं होते; क्यों कि जो द्विजाति एकमात्र ज्ञानमें अनुरक्त रहते हैं, वेही प्रधानता लाभ करते हैं। जो महात्मा महासागरकी भांति विशाल सुन्दर, अप्रमेय, पुरातन परम पवित्र सब सांख्यज्ञानको धारण अर्थात् दर्शन करते हैं वेही नारायण परब्रह्मरूप होते हैं। हे नरदेव! मैंने तुम्हारे निकट यथावत् तत्व बर्णन किया, वह जगदन्तर्य्यामी नारायण सृष्टि कालमें यही पुरातन विश्व उत्पन्न करता है, और प्रलयके समय फिर इस जगत्‌का संहार करता है। अन्तमें निज देह स्थित विषयादि कार्य्यजात अपनेमें लीन करते हुए कारण सलिलमें शयन किया करता है।

३०१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन! जिससे जीवोंकी पुनरावृत्ति रहित होती, जिससे जीवोंका पुनरागमन होता है और जो अक्षर तथा क्षररूपसे बर्णित हुआ है, वह कौन है? हे महाबाहो कुरुनन्दन! उस अक्षर और क्षर दोनोंके प्रभेदको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये आपसे प्रश्न करता हूं। क्यों कि वेदपारग ब्राह्मण, महाभाग ऋषि और महात्मा योगी लोग आपको ज्ञाननिधि कहा करते हैं। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! आपकी परमायुके दिन बहुत हो कम बाकी हैं; क्यों कि भगवान सूर्य्यके दक्षिणायनसे लौटनेसे ही आपको परमगति प्राप्त होगी। आप कुरुवंशके दीपक हैं, तथा ज्ञान दीपसे सदा प्रकाशित हैं, इसलिये आपके परमधाममें गमन करने पर हम लोग किसके समीप इस कल्याणकर बचनको सुनेंगे। हे राजेन्द्र! इस ही निमित्त आपके समीप इन सब विषयोंके सुननेकी इच्छा करता हूं, इस लोकमें ऐसे अमृतमय बचनको सुनकर मैं परितृप्त नहीं होता हूं।

भीष्म बोले, इस विषयमें करालजनक और वशिष्ठके सम्बादयुक्त प्राचीन इतिहास तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। पहिले समयमें कराल नाम महाराज जनक सूर्य्यके समान तेजस्वी अध्यात्म विद्याके जाननेवाले, आध्यात्मिक अनुभव और निश्चययुक्त ऋषिश्रेष्ठ मित्रावरुण वशिष्ठको बैठे हुए देख उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़के सुन्दर अक्षरोंसे युक्त बिनीत कुतर्क रहित मधुर बचनसे मोक्ष सम्बन्धी परम ज्ञानका विषय पूंछा कि, हे भगवन्! जिससे मनुष्योंकी पुनरावृत्ति निवारित होती है,

जिसमें यह जगत् लीन होनेसे चर रूप कहा गया है और जिसे अचर कहते हैं, उस संसार मोचक आनन्द स्वरूप निद्दन्द सनातन परब्रह्मके विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, उसे आप मेरे समीप बिस्तार पूर्व्वक कहिये।

वशिष्ठ बोले, हे पृथ्वीपाल! यह जगत् जिस प्रकार नष्ट होता और किसी समयमें भी जो बिनष्ट नहीं होता है, उस ही चर और अचरको विशेष रीतिसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये। देव परिमाणसे बारह हजार वर्षका एक युग होता है, चार युगका एक कल्प और हजार कल्पका ब्रह्माका एक दिन और इस ही परिमाणसे ब्रह्मरात्रि हुआ करती है। हे राजन्! उस ब्रह्माका नाश होनेपर अमूर्त्तात्मा शम्भु, परमेश्वर अनन्त कर्म्मा महाभूत मूर्त्तिमान विश्वरूप अग्रज हिरण्य गर्भको उत्पन्न करते हैं, उसहीमें स्वयम्भु ब्रह्माके नित्य स्वतःसिद्ध अणिमा आदि सब ऐश्वर्य्य बिद्यमान हैं, सर्व्वनियन्ता ज्योतिमय, अविनाशी, सर्व्वत्रगामी, सर्व्वग्राही, सर्व्वदर्शी, सर्व्वशिरा, सर्व्वानन, सर्व्वश्रोता वह हिरण्यगर्भ लोकमें सब वस्तुओंको आवरण करके स्थिति कर रहा है। यह सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त हिरण्यगर्भ वेद शास्त्रोंमें सूत्रात्मा और बुद्धि समष्टि कहके निर्द्दिष्ट हुआ है। योग शास्त्रमें इसे सृष्टिका प्रथम कार्य्य महान् विरञ्चि और अज कहते हैं, सांख्य शास्त्रमें यह अनेक नामसे विख्यात् है, अनेक शरीरधारी, बहुरूपी, विश्वात्मा, एक मात्र अक्षररूप कहा गया है। वही अचर स्वयं अनेक रूप होकर तीनों लोकोंको उत्पन्न करके उन्हें आवरण कर रहा है, इसलिये रूप निबन्धनसे लोग उसे विश्वरूप कहा करते हैं। यही महातेजस्वी विश्वरूप सूत्रात्मा बिकृतभावसेयुक्त होकर स्वयं ही अपनेको उत्पन्न करके अहङ्कार और अहङ्काराभिमानी बिराटकी सृष्टि करता है। पण्डित लोग अव्यक्त प्रकृतिसे व्यक्तभावापन्न उस विश्वरूपको बिद्यासृष्टि और महान् कहा करते हैं और अहङ्कारको अविद्या सृष्टि कहते हैं। एक मात्र ईश्वरविषयकी उपासना वा ज्ञानसम्बन्धमें जो विधि और अविधि दोनों उत्पन्न हुई हैं; वेदशास्त्रोंके अर्थ जाननेवाले उन दोनोंको अविद्या कहके व्याख्या करते हैं। हे पार्थ! अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्र अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंकी जो सृष्टि होती है, वह तीसरी सृष्टि है और सात्विक, राजस तथा तामस आदि अहङ्कारसमूहके बिकारको चौथी सृष्टि समझिये। हे राजन्! आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और शब्द स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध, ये दशवर्ग, युगपत् उत्पन्न हुए हैं, इसलिये इस सार्थक भौतिक सृष्टिको पांचवीं जानो। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका, ये पांचो बुद्धि इन्द्रिय और नाक, हाथ, पांव लिङ्ग और गुदा, ये पांचो कर्म्मेन्द्रिय मनके सहित युगपत् उत्पन्न हुई हैं। ये चौबोस तत्व सब शरीरमें ही विद्यमान हैं, तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग इसे यथार्थरूपसे जानके शरीरके बिषयमें शोक नहीं करते। हे नरेन्द्र! यह निश्चय जानो, कि तीनों लोकके बीच सब जीवोंमेंही ये चौबीस तत्व देहरूपसे बर्णित हुए हैं। देव, दानव, मनुष्य, किन्नर, यच, गन्धर्व्व, भूत, महोरग, चारण, पिशाच, देवर्षि, निसाचर, दंश, कीट, मशक, भनगे, कीड़े, चूहे, कुत्ते, स्वपाक, व्याध, चाण्डाल, पुक्कस, हाथी, घोड़े, गधे, शार्दूल गज और वृक्ष आदि सब मूर्त्तिमान प्राणिमात्रमें ही इसके दृष्टान्त दीख पड़ते हैं और प्राणियोंका जल, भूमि और आकाशके अतिरिक्त अन्यस्थान नहीं है, इस ही भांति स्थिर सिद्धान्त भी सुना जाता है। हे तात! हिरण्यगर्भ आदि व्यक्तात्मक सब वस्तु ही सदा बिनष्ट होती हैं, इस ही लिये भूतात्मा पञ्चभौतिक शरीर चररूपसे कहा गया है। पण्डित लोग शुद्ध चिन्मय प्रत्यगात्माको अचर कहते हैं और व्यक्त वा अव्यक्ता-

रख्य महात्मक जगत्का चर कहा करते हैं। हे महाराज! आप जो मुझसे पूछते हैं, उसे मैंने तुमसे प्रथम ही चरके दृष्टान्तभूत नित्य महान् और अग्रज हिरण्यगर्भका विवरण कहा है। विष्णु निस्तत्व होके भी पञ्चविंशति तत्व-रूपसे गिने गये हैं; और वह सब तत्वोंके अव-लम्ब हैं, उस ही लिये मनोषी लोग इन्हें तत्व कहते हैं। चौबीस तत्व अव्यक्त मूल प्रकृति मर्त्य रूपसे संहत होकर व्यक्त अर्थात् कार्य्य-रूपी जगत्की सृष्टि करती हुई उस मूर्त्तिमान जगत्की अधिष्ठाता होती हैं; परन्तु पचीसवीं तत्त्व पुरुष अमूर्त्त और असंहत है, इससे वह जगत्का अधिष्ठाता नहीं है। वह अव्यक्त मूल प्रकृति ही चित्शक्तिसे युक्त होकर सब वस्तु-ओंके भीतर निवास करता है और सर्ग वा प्रल यधर्म्मिणी उस प्रकृतिके सहित वह नित्य शुद्ध चैतन्य स्वभावसे मूर्त्तिहीन होके भी सर्ग और प्रलयरूपसे सबको दीख पड़ता है। इस ही भांति सर्ग और प्रलयवित् वह महान् आत्मा हिरण्यगर्भ प्रकृतिके संयोगसे विकृत और मूढ़ होकर "मैं" इस ही प्रकार अभिमान करता है, वा तम, रज और सतोगुणसे युक्त होकर इस लोकमें मूर्खोंकी सेवा तथा मूर्खताके कारण सब योगियोंमें लीन होता है और सहवास निबन्धनसे विनाशी होकर "मैं दूसरा नहीं हूं" इस ही भांति "मैं अमुकका पुत्र तथा अमुक जातीय हूं"—ऐसा कहके ब्राह्मणादि गुणोंके अनुवर्त्ती होता है। तमोगुणके जरिये क्रोधादि तामसभाव, रजोगुणसे प्रवृत्यादि राजसभाव और सतोगुणके सहारे प्रकाशादि सात्विकभाव प्राप्त होता है। स्वच्छता, रञ्जकता और मलिनता निबन्धनसे पहले कहे हुए सत, रज और तमो-गुणसे क्रमशः श्वेत, लाल और नीला, ये तीन प्रकारके रूप तथा इस लोकमें जो सब रूप विद्यमान हैं, वे सभी प्रकृतिके जरिये उत्पन्न हुए हैं। तामसिक लोग नरकमें गमन करते, राजस लोग मनुष्य लोकमें गमन करते और सात्विक लोग सुखभागी होकर देवलोकमें गमन किया करते हैं। जो लोग केवल पाप-कर्म्म करते हैं, वे तिर्य्यग् योनिको प्राप्त होते हैं जो पाप पुण्य दोनों कर्म्म करते हैं, वे मनुष्य योनि पाते हैं और जो लोग केवल पुण्य कर्म्म ही करते हैं वे देव योनिको प्राप्त हुआ करते हैं; यह पचीसवां अक्षर पुरुष अज्ञानसे इस ही भांति अव्यक्त प्रकृतिके वशीभूत होकर मनीषी पुरुषोंके जरिये चररूपसे कहा जाता है और वही ज्ञानके सहारे सदा अक्षर रूपसे प्रकाशित होता है।

३०२ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, इस ही प्रकार वह अक्षर पुरुष प्रकृति संयोगवशसे अज्ञानका अनुवर्त्ती होकर एक शरीरसे अनेक शरीर धारण करता है और सत्वादि गुणोंकी सामर्थसे वह सत्वादि गुणोंके सहित कभी तिर्य्यग् योनि कभी देवयो-निमें उत्पन्न हुआ करता है और मनुष्य लोकसे देवलोक, देवलोकसे मनुष्य लोक, वहांसे अनन्त नरक लोक पाता है। जैसे कोषकार कीट अत्यन्त सूक्ष्म सूत्ररूपी गुणके जरिये आपही बद्ध होता है, वैसे ही यह निर्गुण अक्षर पुरुष इस लोकमें तिर्य्यग् आदि योनियोंमें उत्पन्न होके सिरके रोग, नेत्र रोग, दन्तशूल, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वर, गण्ड, विशूचिका, श्वित्रकुष्ट अग्निदग्ध श्वास, खांसी और मिरगी आदि सब रोगोंसे दुःख भोग करता है और शरीरमें जो सब दूसरे अनेक प्रकारसे प्राकृत सुख दुःखरूपी द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, यह उन सब गुणोंको स्वयं ही ग्रहण करके "मैं दुःखी हूं मैं रोगी हूं" इस ही भांति अनुभव किया करता है। कभी तिर्य्यग् योनि और कभी देव योनिमें उत्पन्न होके अभिमानके कारण उस ही

योनिसे उत्पन्न हुए सब सुकृत अनुभव करता है और मूर्खताके सबब अभिमानी होकर सफेद वस्त्र परिधान चर्म्मवस्त्र धारण, सदा नीचे स्थानमें शयन, मेढ़ककी भांति शयन करना, वीरासनसे बैठना, चीर धारण, सूने स्थानमें शयन और निवास, इष्टक पत्थर, कण्टक पत्थर, भस्म पत्थर, भूमि, शय्यातल, वीरस्थान, जल, कीचड़ और फलक आदि विविध शय्यापर शयन करना फलकी वासनासे मूंजकी करधनी पहननी और वस्त्रोंको त्याग करना बाघके चमड़े, पट्टवास भुर्ज्जत्वच और कण्टक वस्त्रोंको धारण करना, पाटसूत्रके वस्त्र, चीर वसन और दूसरे अनेक प्रकारके वस्त्रोंको पहनना विचित्र रत्न धारण करना, अनेक प्रकार भोजन, एक रात्रिके अनन्तर भोजन, एककालिक भोजन, दिनके चौथे, छठवें और आठवें समयमें भोजन षष्ठाह, सप्ताह, अष्टाह, दशाह और द्वादशाहके अनन्तर भोजन, एक मास उपवास, फल, मूल, वायु, जल, तिलकल्क दही, गोमय, गोमूत्र, शाक फूल, शैवाल, आमद्रव्य, सूखे पत्ते और गिरे हुए फलोंका भक्षण, सिद्धिकी कामनासे विविध कृच्छ्र अनेक प्रकारके व्रत, चिन्ह और विधि पूर्व्वक चान्द्रायण सेवन, चतुराश्रम विहित और अवहितमार्ग पाखण्डके विविधमार्ग पाशुपत अर्थात् पशुपति सम्मत पञ्चरात्र आदिमें कहे हुए दीक्षायोग विविक्त शिलाच्छाया झरने, निर्ज्जन वन पुलिन, पुण्यजनक देवस्थान, तालाव, पहाड़ गृहके समान गुफा, गूढ़ जापके मन्त्र विविध व्रत, अनेक प्रकारके नियम तपस्या, अनेक तरहके यज्ञ, विधि, वाणिज्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंके व्यवसायका अवलम्बन तथा दीन अन्धे और कृपण पुरुषोंको अनेक प्रकारके धनदान आदि सब कार्य्योंको किया करता है। वह अक्षर आत्मा इस ही भांति प्रकृतिके संयोगसे शरीर धारण करके मूर्खताके कारण सत रज और तम, इन तीनों गुण तथा धर्म्म, अर्थ और काम, ये त्रिवर्ग "मुझमें विद्यमान हैं"—ऐसा समझके अभिमान करता है।

हे राजन्! स्वधाकार, वषट्कार, स्वाहाकार, नमस्कार, याजन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह यजन, अध्ययन, जन्म, मृत्यु और विवाद तथा युद्धमें जो कुछ शुभाशुभ कार्य्य हैं, इन सबको ही पण्डित लोग क्रियापथ कहा करते हैं, क्रीड़ाभिलाषिणी प्रकृति सृष्टि और संहार करती है, जैसे सूर्य्य दिनके प्रारम्भमें अपनी किरणोंको फैलाकर दिनके शेषमें उन्हें समेटकर अकेला ही निवास करता है, वैसे ही आत्मा सृष्टिके समयमें सत्वादि गुणोंका विस्तार करके प्रलयकालमें उन्हें अपनेमें लीनकर अकेलाही निवास किया करता है। यह त्रिगुणाधिपति आत्मा इस ही भांति बार बार कल्पित अवस्था, वर्ण, कार्य्य और सत्वादि अनेक प्रकारके हृदयप्रिय ऐसे गुणोंके क्रीड़ार्थ जानता है और कर्म्ममार्गमें अनुरक्त होकर सर्ग तथा प्रलयधर्म्मिणी इस प्रकृतिको विकृत करते हुए त्रिगुणात्मक कार्य्योंको सिद्ध किया करता है। वह कर्म्ममार्गमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंको "यह कर्म्मका गुण है, यह फल है और इसे अवश्य करना चाहिये" ऐसा ही ज्ञान प्रदान करता है। हे विभो! प्रकृतिने इस समस्त जगत्‌को रज और तमोगुणके जरिये आच्छादन करती हुई अन्धीकृत कर रखा है, इस ही निमित्त सुख दुःखरूपी वे सब द्वन्द्व सदा आवर्त्तित हुआ करते हैं, हे नराधिप! इन द्वन्द्वोंको अपना समझनेसे ये इस लोक वा परलोक सर्व्वत्र ही जीवका पीड़ा किया करते हैं; इसलिये जीवको इन द्वन्द्वोंसे निस्तार पानेका उपाय सब प्रकारसे करनी उचित है। क्यों कि मूर्खतासे आत्मा ऐसा समझती है, कि मैं देवलोकगामी होकर द्वन्द्व वा सब सुकृत भोग करूंगा और इस लोकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंको भोगूंगा। इस लोकमें सदा

सुखका उपाय सुकृत कर्म्मोंको करना चाहिये, क्यों कि इसी एक बार कर सकनेसे जन्म जन्म जीवन पर्य्यन्त मुझे सुख होगा और यदि मैं इस लोकमें दुष्कृत कर्म्म करूंगा, तो मुझे अनन्तदुःख भोग करना होगा। मनुष्यता महादुःखका कारण है; मनुष्य ही नरकमें डूबता है। और कालक्रमसे नरकसे भी मनुष्यत्व प्राप्त होती है। मनुष्यत्वसे देवत्व, देवत्वसे फिर मनुष्यत्व और मनुष्यत्वसे पर्य्यायक्रमसे नरकमें जाना पड़ता है। जो निरात्मा अथवा चेतनत्व आदि आत्म गुणोंसे परिवृत होकर सदा ऐसा ही जानते हैं वे देव, मनुष्य और नरलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। जीव सदा ममतासे आवृत होकर अनन्तसृष्टिकालमें उस ममतायुक्त शरीरसे भ्रमण किया करता है। जो शुभाशुभ फलात्मक ऐसा कर्म्म करते हैं, वे त्रिलोकमें शरीरी होकर इस ही भांति फल पाते हैं। जो प्रकृतिके शुभाशुभ फलजनक कर्म्म करते हैं, वे तीनों लोकमें इच्छानुसार गमन करके उन सब कर्म्मोंको ग्रास करते हैं। इसलिये तिर्य्यगयोनि देवयोनि और मनुष्ययोनि इन तीनों स्थानोंको प्राकृत जानना चाहिये। सांख्य लोग कहते हैं कि प्रकृति अलिङ्ग अर्थात् अनुमेय है; जैसे महदादि कार्य्योंसे प्रकृतिका अनुमान होता है, वैसेही आभास चैतन्यके जरिये पौरुष लिङ्ग अर्थात् पुरुष अनु नामक देहादिके अनुगत चैतन्यका अनुमान हुआ करता है। निर्व्विकार प्रकृतिसाधक वह पुरुष कर्म्मके अनुसार लिङ्गान्तर अर्थात् पुर्य्यष्टक गर्भ लाभ करके व्रणद्वार इन्द्रियवर्गोंमें अधिष्ठान करते हुए इस स्थूल शरीरका अभिमान करता है और इस स्थूल शरीरमें श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक् आदि सब कर्म्मेन्द्रिय निज निज गुणोंके सहित गुणोंमें प्रवृत्त हुआ करती है। पुरुष इन्द्रियरहित और व्रणशून्य होके भी "मैं इन कार्य्योंको किया करता हूं, ये इन्द्रियें मेरी हैं और मैं व्रणवान हूं"—ऐसा ही ज्ञान किया करता है। वह मूढ़ता निबन्धनसे अलिङ्ग होनेपर भी लिङ्ग अर्थात् पुर्य्यष्टक, अमर होनेपर भी आत्माको मरणधर्म्मी बुद्धिसे पृथक् होके भी आत्माको बुद्धिमान् अतत्व अर्थात् अवस्तु देह आदिको आत्मतत्व, किसीका हन्ता न होनेपर भी आत्माको हन्ता अचर होके आत्माको चलनेवाला अचैत्र होके आत्माको चैत्र असर्ग होके आत्माको सर्ग अतपी होके आत्माको तपस्वी अगति अर्थात् गतागतिसे रहित होके आत्माकी गति, संसार रहित होके आत्माका संसारी अभय होके आत्माको भययुक्त और अचर होके आत्माको चर,—ऐसाही ज्ञान किया करता है।

३०२ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे राजन्! पुरुष इस ही भांति प्रकृति संसर्गके वशमें निज मूर्खता और मूर्खोंके सेवाकी समाप्तिमें पतनशील कोटिसहस्र सृष्टिलाभ किया करता है और चित्तलाके संयोगसे देव मनुष्य और तिर्य्यगयोनिमें भी मरणशील अनेक स्थान लाभ करता है। इस ही भांति पुरुष प्रकृतिके संयोगसे मूढ़ होकर चन्द्रमाकी भांति फिर उन सहस्र भूतयोनियोंको प्राप्त किया करता है, चिदाभासके सहित मूल प्रकृति, दशों इन्द्रिय और अन्तःकरण चतुष्टय ये पन्द्रह कलायोनि हैं, सोम अर्थात् चिदात्मा षोड़श कला है; यह निश्चय जाने कि वे ही योनिभूत पञ्चदश कला और सोमरूप चिदात्मा षोड़श कलाकी प्रभा नित्य प्रकाशित हुआ करती है। अविद्यावलसे पुरुष बुद्धिहीन होकर योनिभूत उन पन्द्रहों कलामें बार बार निरन्तर जन्म ग्रहण करता है। अनन्तर दूसरे समस्त भूत उस जायमान पुरुषके धाम अर्थात् आनन्द रूप षोड़श कलाको अव-

लम्बन करके फिर जन्म किया करते हैं, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म उस षोड़श कलाको शेष अर्थात् चिदात्मरूपसे जानना चाहिये, चिदात्मा इन्द्रियोंसे रचित नहीं है, परन्तु वही सत्ता और स्फूर्त्ति प्रदान करके इन्द्रियोंको पालन किया करता है ।

हे नृपसत्तम! षोड़श कला प्राणियोंके उत्पत्तिका कारण है, उसके बिना प्राणिसमूह किसी प्रकार भी जन्म ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते; क्यों कि वह सोलहवीं कला ही प्राणियोंके सृष्टिकार्य्यकी प्रकृति रूप वर्णित हुई है। इस ही लिये पण्डित लोग कहते हैं, कि कार्य्यरूपी प्रकृतिके नष्ट होनेसे ही मुक्ति हुआ करती है। जो लोग उस सोलहवीं कला अर्थात् अव्यक्तसंज्ञक प्राकृत देहमें ममता करते हैं। वे लोग उस पचीसवें महात्मा पुरुष विमल विशुद्ध चिन्मय परब्रह्म स्वरूपको न जानकर उस ही देहमें बारबार भ्रमण किया करते हैं कदाचित मुक्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। क्रमसे वे शुद्ध और अशुद्ध लोगोंकी सेवा करके पवित्र तथा अपवित्र हुआ करते हैं।

हे राजन्! वे असङ्ग शुद्धात्मा होके "यह शरीर मेरा है"—ऐसा समझनेसे अशुद्ध होते हैं, ज्ञानवान होके मूर्खोंकी सेवा करनेसे मूर्खता प्राप्त हुआ करती है। और प्रतिकूल ज्ञान रहित होके भी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिकी परिचर्य्याके अनुसार त्रिगुणान्वित हुआ करते हैं।

३०४ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे भगवन्! जैसे लोकसमाजमें स्त्री और पुरुषोंका सम्बन्ध दृष्ट है, शास्त्रमें अक्षर और क्षर अर्थात् प्रकृति पुरुषका सम्बन्ध भी उस ही भांति कहा गया है, और जैसे इस लोकमें बिना पुरुषके स्त्री गर्भ धारण नहीं कर सकती, वैसे ही पुरुष भी स्त्रीके बिना आकृति तयार करनेमें समर्थ नहीं होता। इस लिये सब योनियोंमें ही परस्परके सम्बन्ध वा परस्परके गुण संश्रयाधीन हैं, इस ही भांति सब रूप निवर्त्तित हुआ करते हैं। परन्तु रतिके निमित्त ऋतु कालमें स्त्रीपुरुष दोनोंके सम्बन्ध और गुणसंश्रयसे जैसा रूप उत्पन्न होता है, उसका दृष्टान्त कहता हूं। हे द्विजश्रेष्ठ! पिता-मातामें जो सब गुण विद्यमान हैं, वे सभी विभाग क्रमसे सन्तानमें उत्पन्न हुआ करते हैं। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें वर्णित है, कि अस्थि, स्नायु, मज्जा, तीनों मातासे उत्पन्न होते हैं, इसे मैं जानता हूं और इसलिये इसे अवश्य ही प्रमाणिक समझना होगा। क्यों कि वेद और शास्त्रोंमें जो प्रमाणरूपसे पठित होता है, वह और वेद वा शास्त्र ये दोनों ही सनातन प्रमान हैं। पुरुष प्रकृतिके जड़ता गुणको रोध करके दुःख अवलम्बन करता है, और प्रकृति पुरुषके आनन्द आदि गुणोंको रोध करके चैतन्यता अवलम्बन करती है। इस ही भांति प्रकृति और पुरुष परस्पर गुणरोध और गुणसंश्रय करते हुए नित्य मिलित हुए हैं। हे भगवन्! इसलिये मैं देखता हूं, कि इसमें मोक्ष धर्म्म किसी प्रकार विद्यमान नहीं रह सकता। यद्यपि दूसरा कोई मोक्ष विषयक निदर्शन हो, तो उसे यथार्थ रीतिसे मुझसे कहिये; आप सदा ही प्रत्यक्षदर्शी हैं, आपको कुछ भी अविदित नहीं है। हम मोक्षगामी हैं, इससे जो अनामय, अदेह, अजर, अतीन्द्रिय ईश्वरसे भी अतिरिक्त और नित्य है, हम उसहीको आकांक्षा करते हैं।

वशिष्ठ बोले, हे नरराज! आपने जो यह वेद और शास्त्रके प्रमाण कहे और मन ही मन जैसी धारणा की है, वह ठीक ऐसी ही है; आपने वेद और शास्त्र दोनों ग्रन्थोंमें अभ्यास किया है, परन्तु उसमेंसे यथार्थ अर्थको ग्रहण न कर सके, जो लोग वेद और शास्त्रोंके

अभ्यासमें अनुरक्त होकर उनके मर्म्मको यथावत् ग्रहण नहीं कर सकते, उनका ग्रन्थ-अभ्यास निष्फल है। जो लोग ग्रन्थके अर्थको नहीं जान सकते, वे केवल ग्रन्थका बोझ ढोया करते हैं, जो उनके अर्थको यथार्थ रीतिसे जान सकते हैं, उनका अभ्यास निष्फल नहीं होता, तैसे अर्थवित् पुरुषोंसे यदि कोई ग्रन्थका अर्थ पूछे, तो जिस प्रकार जिज्ञासु पुरुष समझ सके, वैसे ही उसे अवश्य उपदेश देना योग्य है। जो स्थूलबुद्धि पण्डित सभामें ग्रन्थका अर्थ नहीं कह सकता, वह मन्दबुद्धि किस प्रकार निश्चय करके ग्रन्थकी व्याख्या करेगा। जब कि आत्मज्ञानी लोग भी यथार्थ रूपसे ग्रन्थके मतकी व्याख्या करते हुए उपहासको प्राप्त होते हैं, तब अज्ञानी लोग जो हास्य स्पद होंगे उसमें सन्देह ही क्या है। हे राजेन्द्र! इसलिये सांख्य योग और महात्म ये जिस प्रकार आत्मज्ञानियोंमें यथार्थ रूपसे दीखते हैं, उसे सुनो। योगी लोग अनुभव करते हैं, सांख्य लोग उसहीका अनुगमन किया करते हैं; इसलिये जो लोग योग और सांख्य दोनोंको ही एक जानते हैं, वेही बुद्धिमान हैं। हे तात! त्वक्, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, स्नायु और इन्द्रियां स्त्री पुरुषसे उत्पन्न होती हैं स्त्री-पुरुषको भांति प्रकृति पुरुषसे शरीर सम्पादित होता है, यह जो वचन पहले मुझसे कहे थे, वह युक्तियुक्त नहीं है; क्यों कि द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रिय देहसे देह और बीजसे बीज उत्पन्न हुआ करते हैं। निरिन्द्रिय बीजशक्ति शून्य, निर्द्रव्य, अदेही निर्गुण महात्मा पुरुषसे किस प्रकार सब गुण उत्पन्न होंगे। समस्त गुण गुणसे ही उत्पन्न होते हैं, और उस होमें निविष्ट हुआ करते हैं; इसलिये सब गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होके उसहीमें लीन होते हैं। त्वचा, मांस, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, हड्डी और स्नायु, ये आठों शुक्रके जरिये प्रकृतिसे उत्पन्न होती हैं, इसलिये इन सबको प्राकृतिक जानना चाहिये। पुमान जीव, अपुमान पञ्चविषयादि और प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमाता ये लिङ्गत्रय प्राकृत हैं। विशुद्ध चिन्मात्र लिङ्गो प्राकृत पुमान् वा अपुमान् कुछ भी नहीं है। जैसे सब ऋतु फल और पुष्पके जरिये सदा मूर्त्तिमान रूपसे मालूम होती है, वैसे ही प्रकृति अलिङ्ग पुरुष पुरुषको प्राप्त होकर आत्मज लिङ्ग महदादि कार्य्योंके जरिये अनुभूत हुआ करती है। इस ही भांति अलिङ्ग पुरुष भी अनुमानसे अनुभूत होता है। हे तात! पचीस तत्व लिङ्गके बीच नियतात्मा, उत्पत्ति विनाशसे रहित, अनन्त सर्व्वदर्शी निरामय पुरुष केवल देहादि गुणोंके अध्यासके कारण गुण रूपसे वर्णित हुआ है। जो गुणवान हैं, उन्हींमें संयोग आदि गुण विद्यमान रहते हैं, निर्गुण आत्मामें किसी प्रकार उक्त गुण विद्यमान नहीं रह सकते; इसलिये गुणदर्शी लोग ही उसे विशेष रूपसे जान सकते हैं, जब कोई पुरुष प्राकृतकाल आदि गुणोंको जय करे, तब वह देहादिमें आत्मभावरूप भ्रम परित्याग करके परम पुरुषका दर्शन करनेमें समर्थ होगा। सांख्य और योगी लोग जिसे बुद्धिसे अतिरिक्त, अबुद्ध जड़ अहङ्कार आदिके परित्यागसे बुध्यमान, महाप्राज्ञ, अप्रबुद्ध अर्थात् अज्ञान गुणातीत, गुणसम्बन्धरहित अन्तर्य्यामी, नित्य, सर्व्वकार्य्योंके नियन्ता, प्रकृति और महदादि गुणोंकी अपेक्षा पचीसवीं कहके निर्द्देश करते हैं, सांख्य और योगमार्गमें कुशल पण्डित लोग ही उसे जान सकते हैं वाल्य आदि अवस्था और जन्मभयसे भीरु ज्ञानवान् पुरुष जब प्रमाता जीवको यथार्थ रूपसे जान सकेंगे, तब उनके जीव ज्ञानके समकालमें ब्रह्मज्ञान उदय होगा। हे अरिदमन! ज्ञानवान पुरुष जीव और ईश्वरके अभेद ज्ञानको शास्त्रसम्मत सम्यक वा पृथक् कहा करते हैं और अज्ञानी लोग जीव ईश्वरके अभेद ज्ञानको अशास्त्र, असम्यक् तथा

पृथक् कहा करते हैं, चर और अचर अर्थात् जीव ब्रह्मका निदर्शन परस्पर इस ही भांति कहा गया है, परन्तु पण्डित लोग एक मात्र अबिनाशी पुरुषको अचर और अनेक रूप बिनाशीको चर कहा करते हैं। जब पुरुष रज्जु सर्पकी भांति भ्रमात्मक पञ्चविंशति तत्वकी सब भांतिसे आलोचना करनेमें प्रवृत्त होता है, तब वह षड्विंश आत्माका दर्शन करते हुए आत्माके एकत्व शास्त्रसम्मत और नानात्व अशास्त्र, इसे बिशेष रूपसे जानता है, तत्वजनित और निस्तत्व अजन्य दोनोंका निदर्शन पृथक् है, परन्तु मनीषी लोग पञ्चविंशति सर्गको तत्व कहके निर्द्देश करते हैं, पञ्चविंशके अतिरिक्त षड्विंश निस्तत्व है, और पञ्चविंशात्मक सर्गके प्रत्येक पांच पांच बर्ग बिषयक जो ज्ञान है वही सत्य है।

३०५ अध्याय समाप्त।

जनक बोले, हे ऋषिसत्तम! आपने अनित्य चर और नित्य अचरके अनेकत्व और एकत्वरूप जो दो दृष्टान्त प्रदर्शित किये, उनमेंसे एकत्वमें बन्ध और मोक्ष बिषयक व्यवस्थाको अनुपपत्ति तथा अनेकत्वमें आत्मनाशका प्रसङ्ग;—इस प्रकारके संशयमें दोनों पक्षमें अवलोकन करता हूं। हे अनघ! मैं स्थूलबुद्धिके कारण मूर्ख और ज्ञानवान् पुरुषोंसे बध्यमान जीवात्माका तत्व निश्चय रूपसे नहीं जान सकता हूं; और आपने जो चर तथा अचर अनेकत्व एकत्वरूप कारण निर्द्देश किया है, बुद्धिकी अस्थिरता निबन्धनसे उसे भी मैं निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। हे भगवन्! इसलिये पहले कहे हुए नानात्व, एकत्व बुद्धज्ञाता, अप्रतिबुद्ध, प्रधानादि, बुध्यमान जीव नित्य अचर, अनित्य चर बस्तुतत्व-बिवेक सांख्य, चित्तवृत्ति निरोधयोग, पृथक् भेद और अपृथक् अभेद, इन सबको फिर यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

बसिष्ठ बोले, हे महाराज! आपने जिन बिषयोंको पूछा है, मैं उनका यथार्थ बृत्तान्त तुमसे बिशेष करके कहूंगा; अब आप मेरे समीप पृथक् रूपसे योगकृत्य सुनिये। योगीयोंको योग अवश्य करना योग्य है, योगरूप ध्यान ही उनका परमबल है; बिद्याबित् पुरुष उस ध्यानको चित्तकी एकाग्रता और प्राणायाम भेदसे दो प्रकारका कहा करते हैं। उनमेंसे प्राणायाम सगुण बिषयमें और चित्तको एकाग्रता निर्गुण बिषयमें कही गई है। हे नरनाथ! भोजन, मूत्र और मलत्याग, इन तीनों कालके अतिरिक्त पुरुष आलसरहित होके सब समयमें ही योगका अनुष्ठान करे, बुद्धिमान मनुष्य शब्द आदि बिषयोंसे अन्तःकरणके सहित इन्द्रियोंको निवृत्त करते हुए पवित्र होकर परमात्मतत्व जाननेके निमित्त नासिका पुटमें वायुको आकर्षण करके अंगूठेसे सिर पर्य्यन्त सब शरीर वायुके जरिये परिपूर्ण करके धीरे धीरे ब्रह्मारन्ध्रसे मस्तकमें, मस्तकसे भौंके बीच, भ्रूमध्यसे नेत्रमें; नेत्रसे नासामूलमें, नासामूलसे जिह्वामें, जिह्वासे कण्ठ कूपमें, कण्ठकूपसे हृदयमें, हृदयसे नाभिस्थलमें, नाभिस्थलसे पीठ, पीठसे फिर हृदय, हृदयसे गुह्य, गुह्यसे ऊरुमूल, ऊरुमूलसे दोनों जानु, जानुसे चितिमूलमें, चितिमूलसे जङ्घामें, जङ्घासे गुल्फ और गुल्फसे पैरके अंगूठेमें वायुका आकर्षण तथा ध्यान धारणा समाधि और प्रकृति पुरुषका भेद ज्ञान, इन बाईस प्रकारके प्राणायामके जरिये मनीषी लोग जिसको सर्व्व शरीरमें स्थित और अजर कहा करते हैं, उस चौबीस तत्वके अतिरिक्त जीवको बाईस प्रकार प्रेरण करे। हे राजन्! मैंने ऐसा सुना है, कि उस बाईसों प्रकारके प्रेरणसे ही आत्माको सदा जाना जासकता है और यह निश्चय है, कि जिसका चित्त काम आदिके जरिये कभी आहत नहीं हुआ है, उन्हें ही यह योगरूप व्रत अनुष्ठेय है, ऐसे लोगोंके अतिरिक्त दूसरोंका

अनुष्ठेय नहीं है। योगाचारी पुरुष अल्पाहारी जितेन्द्रिय और सब प्रकारकी आसक्तिसे मुक्त होकर रात्रिके प्रथम और शेष भागमें आत्मामें मन संयुक्त करें।

हे मिथिलेश्वर! जो लोग मनके जरिये इन्द्रिय-वर्गोंको स्थिरीकृत करके बुद्धिके सहारे चित्त स्थिर करते हुए पत्थरकी भांति निश्चल स्थाणु-प्राय अकम्प और पहाड़की भांति अविचल होसकें, विधि वा विधानवित् पण्डित लोग उन्हें ही योगी कहा करते हैं और जो लोग समाधि समयमें सुनना, सूंघना, चखना देखना और छूना आदि विषय ज्ञान तथा अन्य विषयक मनन वा अभिमान रहित काष्ठके समान किसी विषयका बोध नहीं करते, मनीषी लोग उन्हें विशुद्ध स्वभावसे युक्त योगी कहा करते हैं। जैसे निर्व्वात स्थानमें जलता हुआ दीपक ऊर्द्ध अध और तिर्य्यग् गतिसे रहित होकर अविचलित रूपसे प्रकाशित होता है, वैसेही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें बुद्धि आदि अन्तःकरण धर्म्मसे सहित होकर निश्चल भावसे प्रकाशित होता है। हे तात! जिस परमात्माके साक्षात्कार होनेसे हृदयस्थ अन्तरात्माका 'अहं ब्रह्म' यह ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता, ये तीनों मेरे समान पुरुषोंके जरिये अभिहित नहीं होते, समाधि समयमें समाधिस्थ पुरुष उस परमात्माको देख सकते हैं; उस समयमें धूमरहित अग्नि, रश्मिवान् सूर्य्य और आकाशस्थ वैद्युत अग्निकी भांति आत्मा योगियोंके हृदयमें प्रकाशित हुआ करती है, जिस समय महात्मा धृतिमान मनीषी वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस अयोनि अमृत स्वरूप परब्रह्मका दर्शन करते हैं, तब वे उसे सूक्ष्म महत्तर, सर्व्व भूतोंमें विद्यमान और सबके अगोचर ऐसा ही बचन कहा करते हैं। हे तात! ज्ञानरूप द्रविणयुक्त मनुष्य मनोमय दीपकके जरिये महान् तमोगुणके पारमें स्थित ईश्वरातिरिक्त भूरादि भुवनके कर्त्ता उस परमात्माका दर्शन करते हैं। सर्व्वज्ञ वेदपारग ब्राह्मण लोग इस ही प्रकार कहा करते हैं, कि उस निर्म्मल तमसे रहित वाक्य मनके अगोचर निरुपाधि ब्रह्मका बोध होनेपर मनुष्य संसार-पाशको छेदन करता है। हे राजन्! मैंने जो कहा, इसे ही योग कहते हैं, इसके अतिरिक्त योगका और कुछ भी लक्षण नहीं है। इस योगबलसे ही महात्मा योगी लोग सर्व्वदर्शी अजर परमात्माका दर्शन किया करते हैं। हे तात! मैंने तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त योग-ज्ञानको यथावत् वर्णन किया; परन्तु जिसके जरिये सब भ्रम दूर होके परमात्म दर्शन होता है; उस सांख्य ज्ञानको फिर तुम्हारे समीप कहता हूं सुनो।

हे राजसत्तम! मैंने सुना है, कि प्रकृतिवादी आत्मदर्शी सांख्यलोग पहली प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं और उसहीसे दूसरी महत्, महत्से तृतीय अहङ्कार और अहङ्कारसे सूक्ष्म तन्मात्रको उत्पत्ति होती है,—ऐसा ही कहा करते हैं। अव्यक्तसे पञ्चतन्मात्र पर्य्यन्त इन आठोंको प्रकृति और अन्तःकरणके सहित एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च स्थूलभूत, इन सोलहोंको बिकार करते हैं। इनमेसे विषयादि पञ्चभूत विशेष रूपसे और शेष ग्यारहों निज निज विषयोंके प्रकाशक होनेसे इन्द्रिय रूपसे वर्णित हुए हैं। सदा सांख्य मार्गमें रत मनीषी विधि विधानवित् पण्डितोंने सांख्यके बीच चौबीस तत्वोंको यहां-तक ही विचार किया है। हे नृपसत्तम! जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, वह उसहीमें लीन हुआ करती है। सृष्टि कालमें सब प्राणि अन्तरात्मासे अनुलोम क्रमसे उत्पन्न होकर प्रतिलोममें लीन होते हैं। इस ही प्रकार सब गुण समुद्रसे उत्पन्न हुई लहरकी भांति सदा गुणसे ही उत्पन्न होके उसीमें लीन हुआ करते हैं। हे राजेन्द्र! सर्ग प्रलय केवल एक ही नहीं है, प्रकृति आदिकी उत्पत्ति और प्रलय हुआ करती

है। प्रलयकालमें पुरुषका एकत्व और सृष्टि कालमें उसका अनेकत्व होता है; ज्ञानवान् पण्डित लोग ऐसा ही जानते हैं। अव्यक्त प्रकृति ही इस एकत्व और अनेकत्वका निदर्शन है, इसलिये जो लोग प्रकृतिके अर्थको यथार्थ रीतिसे जानते हैं, वे ही एकत्व और अनेकत्वके कारणको समझ सकते हैं।

हे राजेन्द्र! चिदात्मा प्रसवात्मिका प्रकृतिको अनेक प्रकार विभक्त किया करता है वह प्रकृति ही क्षेत्ररूपसे वर्णित हुई है, महात्मा पञ्चविंशति तमपुरुष उसमें ही अधिष्ठान करता है, इसीसे योगी लोग पुरुषको अधिष्ठाता कहा करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि क्षेत्रोंके अधिष्ठान निबन्धनसे पुरुष अधिष्ठाता होता है और वह अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र जानता है, इस ही सबबसे क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित हुआ करता है; शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि जब पुरुष प्रकृतिक पुर्य्यष्टक क्षेत्रमें प्रविष्ट होता है, तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ये दोनों पृथक् रूपसे कहे जाते हैं। अव्यक्त क्षेत्र है, पञ्चविंशतितम पुरुष ज्ञाता है, इसलिये ज्ञान और ज्ञेय परस्पर पृथक् हैं। इनमेंसे अव्यक्तज्ञान और पचीसवां पुरुष ज्ञेयरूपसे वर्णित हुआ है। शास्त्र अव्यक्तको क्षेत्र, सत्त्व, अर्थात् बुद्धि वा ईश्वर कहा करता है। हे राजन्! सांख्य दर्शन इतना ही है। इस दर्शनके अनुसार सांख्य लोग स्थूल सूक्ष्म क्रमसे चिदात्मामें जो जगत्प्रपञ्च लीन होता है, उसे देखते हैं और प्रकृतिको जगत्का कारण कहते हैं। तथा वे लोग प्रकृतिके सहित चौबीसों तत्वोंकी यथावत् गिनती करके पचीसवें पुरुषको निस्तत्त्व कहा करते हैं। पचीसवां बुधप्रमान जीव अप्रबुद्ध प्रकृतिको परित्याग करके आत्मदर्शन कर सकनेसे वह केवल शुद्ध चैतन्यरूपसे निवास करता है।

हे राजन्! मैं तुम्हारे समीप यहां पर्य्यन्त सम्यक्‌दर्शन यथावत् वर्णन किया, लोग इसे विशेषरूपसे जाननेसे ही अवश्य ही ब्रह्मत्त्व लाभ करते हैं। परब्रह्मके साक्षात्कारको ही सम्यक् दर्शन कहते हैं; इसहीमें सर्पको भांति अब्रह्मदर्शन भ्रान्तिदर्शन है, वह सम्यक् दर्शन नहीं है; जैसे निर्गुण पुरुषसे विभिन्नमहदादि व्यवहारिक प्रथाके अनुसार इस्वस्त्व निबन्धन प्रत्यक्षरूपसे गिना जाता है, वैसे ही निर्गुण पुरुषका भी दर्शन हुआ करता है। इस ही भांति आत्मदर्शी विदेहमुक्त पुरुषोंको पुनरावृत्ति निवारित होती है और सदेहमुक्त पुरुषके अक्षरत्व निबन्धनसे सत्य काम और सत्यसङ्कल्प आदि ऐश्वर्य्य समाधिकालका निरुपाधिक सुख और अव्यय भाव हुआ करता है। हे अरिदमन! जो लोग एक मात्र परमात्मदर्शनके अतिरिक्त अनेक वस्तुओंका दर्शन करते हैं, वे पूर्णदर्शी नहीं हो सकते; बल्कि वे बार बार जन्म लेके इस लोकमें शरीर धारण किया करते हैं; और जो लोग अर्थके सहित इन वाक्योंको विशेष रूपसे जानेंगे, वे लोग सर्व्वज्ञताके कारण शरीरके वशवर्त्ती न होंगे। हे राजन्! अव्यक्त सर्व्व और पचीसवां पुरुष असर्व्वरूपसे कहा गया है, इसलिये जो लोग इस असर्व्व पचीसवें पुरुषको सब भांतिसे जान सकते हैं, उन्हें फिर संसारके दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता।

३०६ अध्याय समाप्त।

वसिष्ठ बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपके समीप यहांतक ही सांख्यदर्शन वर्णन किया अब फिर विद्या और अविद्याके विषयको विस्तारपूर्व्वक कहता हूं सुनो। पण्डित लोग सर्ग और प्रलय धर्म्मयुक्त अव्यक्तको अविद्या तथा सर्ग वा प्रलयधर्म्मरहित पचीसवें पुरुषको विद्या कहा करते हैं। हे तात! ऋषियोंने सोखर शास्त्रको सम्यक् निदर्शनस्वरूप परस्परको विद्या जिस